प्राकृतवाणी

भाग–5

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती

आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

कृति : प्राकृतवाणी भाग-5

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत
आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

कृतिकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2026)

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : सदुपयोग

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.)

ISBN : 978-81-943505-4-5

प्राप्ति स्थल : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति कार्यालय
मो. 9971548889, 880009125

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

© सम्पादक एवं प्रकाशक के पास सर्वाधिकार सुरक्षित

PRAKRIT VANI PART-5

Writer : Acharya Shri 108 Vasunandi Ji Muniraj
Editing : Aaryika Vardhasvanandini
Edition : First / 1000 Copies (Year 2025)
Published by : Nirgranth Granthmala Samiti

आचार्य श्री वसुनंदी मुनिराज: व्यक्तित्व की पुण्य-प्रभा

आचार्यश्री वसुनंदी जी मुनिराज का नाम लेते ही मन में एक अद्भुत, आकाश-दीप्त छवि उभरती है-ऐसी छवि जिसमें तप का तेज भी है, करुणा की कोमलता भी, ज्ञान का ऊर्ध्व प्रकाश भी है और वीतरागता की सुमधुर शांति भी। उनका व्यक्तित्व उस प्राचीन जैन परंपरा का दीप-स्तम्भ है, जो युगों से मानव-चेतना को धर्म, संयम और शुद्धता की ओर आमंत्रित करता आया है। वे उन विरले महामानवों में है, जिनका संन्यास केवल वस्त्र, गृह, वाहनादि त्याग का नहीं बल्कि अहंकार, आसक्ति और अपेक्षा के परम विसर्जन का आरम्भिक उत्सव है। उनकी उपस्थिति स्वयं एक तीर्थ है, और उनके वचन उस निर्मल जलधारा के समान हैं, जो अंतरात्मा का ताप हर लेती है।

अनुभूत साधना की जीवित प्रतिमूर्ति

आचार्यश्री का जीवन साधना का वह प्रखर दीपक है, जिसकी लौ समय के झंझावातों से कभी डिगी नहीं। उनकी साधना केवल नियमों के पालन तक सीमित नहीं; वह तो शुद्धता का ऐसा अनुभूत प्रवाह है, जो स्वभाव से वैसे ही बहता रहता है-जैसे हिमालय के गर्भ से नदियाँ स्वयं उद्भूत होती हैं; आचार्यश्री का संयम उसी सहजता का प्रतीक है।

उनका जीवन कल्पवृक्ष की भाँति है-वे चलते हैं तो जैसे मौन मन्त्रों की ध्वनि फैलती है; वे रुकते हैं तो स्थिरता में भी

आध्यात्मिक अनुग्रह बरसता है; वे बोलते हैं तो शब्दों से अधिक उनकी दृष्टि शिक्षा देती है। उनकी दिनचर्या साधारण मानव की कल्पना से परे है–कठोर तप, अनवरत श्रुत–सेवा, तीर्थयात्रा, उपदेश, ग्रंथ–लेखन, आत्मचिंतन और अखंड स्वाध्याय–इन सबके मध्य भी उनका हृदय सदा निर्मल और निस्पृह बना रहता है।

प्राकृत भाषा में अद्भुत प्रवीणता–सहज दिव्य गुण

आचार्यश्री की विशेषता केवल उनके संयम में ही नहीं, उनके अद्भुत भाषाज्ञान में भी है–बहुभाषाविद् आचार्य गुरुवर की प्राकृत पर ऐसी पकड़ है जो आधुनिक युग में किसी चमत्कार से कम नहीं लगती। यह ज्ञान उन्होंने कहीं से सीखा नहीं; यह विद्या मानो उनके अत:करण से स्वयं प्रकट हुई है। जैसे पर्वत के मध्य से एक निर्झर स्वयमेव फूट पड़ता है, वैसे ही उनके हृदय से प्राकृत–ज्ञान अविरल प्रवाहित होता है।

उनकी प्राकृत–वाणी में प्रामाणिकता भी है, प्राचीनता भी, और एक ऐसी आध्यात्मिक गरिमा भी, जो केवल अध्ययन से नहीं–अनुभूति से, साधना से, पूर्वाग्रह–रहित शुद्ध दृष्टि से जन्म लेती है। वे प्राकृत को केवल भाषा नहीं अपितु साधक का प्राण मानते हैं, और उनके लिखे ग्रंथ उसी दिव्य स्पंदन का प्रभाव देते हैं।

वाङ्मय–निर्माण की अविरत धारा–75+प्राकृत ग्रंथों के रचयिता

आचार्यश्री की लेखनी आज के युग की एक जीवित चमत्कृति है। वे अब तक प्राकृत के 75 से अधिक मौलिक ग्रंथों की रचना कर चुके हैं–वे भी पूर्णत: प्रामाणिक, शास्त्रीय स्वरूप में, आध्यात्मिक शुचिता और विद्वत्तापूर्ण दृष्टि के साथ। विशेष यह

कि अनेक ग्रंथ ऐसे भी हैं जिनकी रचना वे पूर्ण कर चुके हैं, केवल संपादन की आहट प्रतीक्षारत है–जैसे कि ज्ञान–लोक से उतरकर शब्दों का रूप लिए हुए वे पांडुलिपियाँ अपनी सुगंध फैलाने को तैयार खड़ी हैं।

और यह सब तब, जब उनकी दिनचर्या अत्यंत व्यस्त, और तपपूर्ण है। इतने कर्मयुक्त जीवन में भी ग्रंथ–लेखन की यह निरंतरता इस बात का प्रमाण है कि उनकी लेखनी मानवीय प्रयास नहीं, आध्यात्मिक प्रेरणा से संचालित होती है। वे लिखते नहीं–ज्ञान स्वयं उनके माध्यम से अवतरित होता है।

करुणा और कठोरता का संतुलन

उनके व्यक्तित्व में एक ओर है–संयम की कठोरता, अनुशासनशीलता; और दूसरी ओर है–अत्यंत कोमल करुणा, मधुरता और शुद्ध आत्मीयता। वे अपने शिष्यों से गंभीरता और अनुशासन के साथ वही अपेक्षा रखते हैं, जो प्राचीन गुरुओं की परम्परा थी; परन्तु उसी क्षण उनका चेहरा ऐसी कृपा से दमक उठता है कि शिष्य स्वयं को उनके हृदय में समाहित अनुभव करता है।

उनकी वाणी शिक्षण नहीं, शोधन करती है; उनकी दृष्टि प्रेरणा नहीं, जागरण करती है; और उनका मौन गहनतम प्रश्नों के उत्तर समेटे हुए प्रतीत होता है।

सम्प्रदाय–दीपक : परम्परा के प्रखर संवाहक

आचार्यश्री वसुनंदी जी केवल एक मुनिराज नहीं–वे परम्परा के संवाहक और जैन श्रुत–संस्कृति के पुनर्जागरण के आधारस्तम्भ

हैं। उनके गुरुवर आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज की आज्ञा, शिक्षा और प्रेरणा उनके जीवन का दिशा-सूत्र है। वे अपने गुरु के आदेशों को न केवल पालन करते हैं, बल्कि स्वयं की प्रत्येक श्वाँस उस गुरुस्मृति को अर्पित करते हैं।

उनके द्वारा लिखित सभी ग्रंथ, सभी वचनों में उनके गुरुवर की छाया तथा शास्त्रों की गरिमा समान रूप से उपस्थित रहती है। उनके वचनों में परम्परा की सुगन्ध है, शास्त्रीयता का तेज है, और आधुनिकता हेतु उपयुक्त सरलता भी।

शिष्य-सम्पदा के प्रेरक स्तंभ

जिन्हें उनका सान्निध्य प्राप्त है, वे कहते हैं कि आचार्यश्री के पास बैठना भी साधना का अनुभव करना है। उनका व्यक्तित्व शिष्यों को अनुशासन, तर्क, विनय और आत्मबल-चारों दिशाओं में विकसित कर देता है। वे केवल ग्रंथ नहीं लिखते, चरित्र भी गढ़ते हैं। वे अपने शिष्यों को केवल ज्ञान नहीं देते, दृष्टि भी प्रदान करते हैं।

धार्मिक विश्व में एक युग-पुरुष

आचार्यश्री वसुनंदी जी गुरुदेव का कार्य केवल लेखन, तप और उपदेश तक सीमित नहीं है; वे आधुनिक युग में जैन संस्कृति के जीवित प्रहरी, धर्म के मार्गदर्शक और श्रमण परम्परा के उज्ज्वल प्रतीक हैं। उनका जीवन स्वयं यह संकेत देता है कि संयम आज भी संभव है, साधना आज भी प्रासंगिक है और धर्म आज भी जीवन की दिशा बदल सकता है।

वे एक ऐसे युग-पुरुष हैं, जिनकी उपस्थिति मात्र से साधक के भीतर की धूल झड़ने लगती है।

उपसंहार : ज्ञान, तप और करुणा का उज्ज्वल संगम

आचार्यश्री वसुनंदी जी मुनिराज का व्यक्तित्व जितना विराट है, उतना ही विनम्र भी। वे तप के दीपक हैं, पर करुणा के शीतल चन्द्रमा भी। वे शास्त्रों के प्रखर ज्ञाता हैं, पर हृदय की सरलता भी उनमें प्रचुर है।

संप्रति काल में परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्यश्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज एक ऐसे दिव्य पुरुष हैं जिन्हें देखकर विश्वास होता है कि श्रमण परंपरा का यह अलौकिक दीप अभी भी पूर्णरूप से प्रज्ज्वलित है। उनकी साधना प्रेरणा है, उनकी वाणी ज्ञान है, उनकी दृष्टि करुणा है और उनका जीवन एक जीवंत शास्त्र है। उन्हें देखकर सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज जैसे आचार्य उपस्थित हैं, वहाँ धर्म का प्रकाश कभी क्षीण नहीं होता।

परम पूज्य आचार्य गुरुदेव के श्री चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित नमोस्तु करते हुए भावना भाता हूँ कि उनका स्वास्थ्य सदैव तप्त स्वर्ण सा दमकता रहे, संयम-सुगंध और साधना-प्रभा यूँ ही विश्व को आलोकित करती रहे-इसी भावना में मेरा प्रणत मन निमग्न है।

-उपाध्याय प्रज्ञानन्द

श्री पार्श्वनाथ दिगंबर जैन मंदिर

एटा

सम्पादकीय

1. प्राकृत भाषा की अविनाशी महिमा–भारत की सांस्कृतिक धरोहर में भाषाएँ केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन की गूढ़ संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हैं। प्रत्येक भाषा के हृदय में कोई विशेष भाव निहित होता है।

संस्कृत की गंभीरता, अपभ्रंश की सहजता और आधुनिक भाषाओं की प्रगति–ये सब अपनी–अपनी दिशाओं में समाज को समृद्ध करते हैं। परंतु प्राकृत भाषा का स्थान इन सबमें विशिष्ट और विलक्षण है। यह भाषा सर्व भाषाओं की जननी है।

प्राकृत वह पावन धारा है जो सीधे हृदय से निकलकर आत्मा तक पहुँचती है। इसके शब्दों में सरलता है, परंतु उस सरलता में असीम गहराई छिपी है।

यही वह भाषा है जिसमें जैन आगमों का लेखन हुआ, जिसमें साधकों ने अपने आत्मानुभव के अनमोल रत्नों को शब्दों का रूप दिया। यही वह भाषा है जिसमें आत्मा की गहराइयों से निकले विचार समाज का पथप्रदर्शन करते हैं।

प्राकृत का सौंदर्य इसकी सहजता में है। यह भाषा किसी भी वर्ग, किसी भी युग, किसी भी स्थान के लिए कठिन नहीं, अपितु सर्वसुलभ है। यह न केवल विद्वानों की बौद्धिक जिज्ञासाओं को संतुष्ट करती है, बल्कि इसकी मिष्टता चित्त को आह्लाद भी प्रदान करती है। प्राकृत गाथाओं में वह मिठास है जो सीधे मन की गहराइयों में उतर जाती है। प्रत्येक शब्द जैसे साधना की गंध में स्नान करके पाठक के समक्ष आता है।

आज के समय में जब भाषाओं की भीड़ बढ़ रही है और शब्दों का मूल्य कहीं-कहीं लुप्त होता जा रहा है, तब प्राकृत का संरक्षण और संवर्धन अनिवार्य हो गया है।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज प्राकृत साहित्य को पुनर्जीवित करने की उस मशाल को लेकर आगे बढ़ रहे हैं जिसको उनके गुरु सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्र संत, क्षपकराज शिरोमणि आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज ने प्रज्ज्वलित किया था। उनका प्रयास केवल साहित्य संवर्द्धन ही नहीं बल्कि एक आध्यात्मिक पुनर्जागरण है। उनकी वाणी और लेखनी में वह शक्ति है जो आत्मा का झकझोर देती है और अध्येता के हृदय में एक नया उत्साह, एक नई प्रेरणा उत्पन्न करती है।

2. प्राकृत वाणी श्रृंखला का इतिहास और यात्रा-प्राकृत वाणी श्रृंखला का आरंभ एक साधक के मौन संकल्प से हुआ था। जो बीज प्रारंभ में छोटा-सा लगा, आज एक विशाल वटवृक्ष के रूप में फल-फूल रहा है। भाग 1 से लेकर भाग 4 तक इस श्रृंखला ने समाज को अनेक अमूल्य ग्रंथ प्रदान किए हैं। इनमें राष्ट्रप्रेम, तप, त्याग, संयम, योग और संस्कृति के विविध आयामों का विस्तार हुआ है।

प्रत्येक भाग अपने भीतर एक जगत समेटे हुए है-वह जगत जहाँ राष्ट्र का उत्थान, संस्कृति का संरक्षण, आत्मा का विज्ञान, धर्म-दर्शन और जीवन का संतुलन एक साथ विद्यमान है।

प्राकृत साहित्य की सुदीर्घ परंपरा, भारतीय चिंतन के मध्य स्थित एवं धर्ममार्ग के अप्रतिम आलोक से अनुप्लावित रही है। इसी दीर्घ परंपरा में एक और दिव्य पुष्प के समान अवतरित हुआ

यह ''प्राकृत वाणी-भाग पाँच'' जिसकी सुरभि से मन श्रद्धा से भर उठता है और जीवन सदाचार से महक जाता है।

जैन धर्म के आदर्शों से अभिसिंचित, इस कृति का अवतरण केवल ग्रंथ-रचना नहीं, वरन् संस्कृति, साधना और सम्यग्ज्ञान का दिग्दर्शन है। इसकी प्रत्येक गाथा, प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक भाव-सदियों से साधकों द्वारा अवभासित आध्यात्मिक अनुभव का साक्षात् दस्तावेज है।

इस पाँचवें खंड में समाहित पाँच विशिष्ट ग्रंथ-

1. **आयंस-सिक्खाविही** (आदर्श शिक्षाविधि)
2. **समण-भावो** (श्रमण भाव)
3. **उववासो** (उपवास)
4. **महाणुभावो** (महानुभाव)
5. **खवगराय-सिरोमणी** (क्षपकराज शिरोमणि)

प्रत्येक ग्रंथ अपने भीतर एक स्वतंत्र शास्त्र-परंपरा को धारण किए हुए है। विषय भिन्न होते हुए भी-इन सभी का मूल एक ही है-आत्मोन्नति, सदाचार और साधना की ओर अनवरत अग्रसर होना।

इस पञ्च ग्रंथमाला में कहीं शिक्षा का शाश्वत आदर्श दिखाई देता है। कहीं संयमित मुनि-जीवन का मधुर मौन, कहीं उपवास की सूक्ष्म आध्यात्मिक विज्ञानशीलता कहीं भाषा की पवित्रता से निर्मित संस्कार और कहीं गुरु-चरित का तेजोमय प्रकाश दिखाई देता है।

1. आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षा विधि)-शिक्षा का सच्चा स्वरूप-आदर्श शिक्षा विधि ग्रंथ शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करता है। आज जब शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार तक सीमित होता जा रहा है, तब यह ग्रंथ हमें स्मरण कराता है कि शिक्षा का वास्तविक कार्य व्यक्तित्व निर्माण है। शिक्षा मनुष्य को गुरुत्व प्रदान करने वाली तत्त्व संहिता है। 126 गाथाओं के माध्यम से इस ग्रंथ में इस बात का विस्तार है कि शिक्षक केवल ज्ञान देने वाला नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण करने वाला होना चाहिए। शिष्य केवल जानकारी का पात्र नहीं, बल्कि ज्ञान का साधक होना चाहिए। जब दोनों का यह संबंध पवित्र होता है, तभी शिक्षा का प्रकाश समाज को आलोकित कर सकता है।

इस ग्रंथ में शिक्षा केंद्रों का भी आदर्श स्वरूप वर्णित है। वे केवल भवन नहीं, बल्कि ज्ञान के मंदिर हैं, जहाँ प्रत्येक दीवार साधना की सुगंध से सुवासित होती है और प्रत्येक कक्षा में चरित्र निर्माण की ध्वनि गूँजती है।

2. समण-भावो (श्रमण भाव)-साधु जीवन का अंतरंग संगीत यह ग्रंथ समण-भावो, साधु जीवन के अंतरंग को प्रकट करता है। ''समण'' (श्रमण) अर्थात् मुनिराज और ''भाव'' अर्थात् उनके हृदय की गहराइयाँ, उनके त्याग और उनकी अनुभूतियाँ। 228 गाथाओं के माध्यम से इस ग्रंथ में मुनिराजों के जीवन का ऐसा चित्रण है, जो बाहरी जगत की दृष्टि से परे उनके आंतरिक लोक को उजागर करता है। वे अपने त्याग का पालन किस दृढ़ता और किन भावों से करते हैं, यह इस ग्रंथ में स्पष्ट होता है। मुनिराज के संयम परिपालन का स्वर्ण चित्र इसमें प्रकट होता है। गृहस्थ जब इसे पढ़ते हैं, तो उन्हें संयम

का मूल्य समझ में आता है; साधक जब इसे पढ़ते हैं, तो उन्हें अपने मार्ग का साक्षात् दर्शन होता है।

3. उववासो (उपवास)–आत्मशुद्धि का अनुष्ठान यह ग्रंथ उपवास, उपवास के आध्यात्मिक रहस्यों को प्रकट करता है। उपवास केवल आहार का त्याग नहीं है, यह आत्मा के समीप पहुँचने का माध्यम है, शरीर और मन को संयमित करने का साधन है। इस ग्रंथ में 111 गाथाओं के माध्यम से उपवास के महत्व को दर्शाया गया है। जब साधक उपवास करता है, तो वह केवल भोजन का त्याग नहीं करता, बल्कि अपनी इच्छाओं, वासनाओं और आसक्तिओं का भी परित्याग करता है। उपवास के माध्यम से व्यक्ति कई रोगों का निराकरण भी कर सकता है। इसका विस्तृत व विशिष्ट वर्णन भी ग्रंथ में किया गया है।

4. महाणुभावो (महानुभाव)–भाषा की पवित्रता महाणुभावो, ग्रंथ भाषा और संवाद की गरिमा का संदेश देता है। समाज का स्वरूप शब्दों से निर्मित होता है। जब शब्द शुद्ध होते हैं, तो समाज भी शुद्ध होता है। जब सम्बोधन आदरपूर्ण होता है, तो संबंध भी मधुर होते हैं। इस ग्रंथ में 111 गाथाओं के माध्यम से यह बताया गया है कि किसी को संबोधित करते समय किस प्रकार के शब्द प्रयोग करने चाहिए।

"महानुभाव" स्वयं एक ऐसा सम्बोधन है, जो सम्मान, शिष्टता, सौजन्य और करुणा का अद्वितीय संगम है। यह ग्रंथ हमें यह सिखाता है कि बोधन शब्द केवल बुलाने या संबोधने का माध्यम नहीं, बल्कि हृदयों को जोड़ने की कला है, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा को देने वाला साधन है।

5. **खवगराय-सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)-गुरु का तेजस्वी प्रतिरूप** खवगराय सिरोमणी गुरु की जीवंत साधना का दर्पण है। यह आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के जीवन का वह चित्रण है जिसमें त्याग, संयम और करुणा की व्यापकता समाहित है।

इस ग्रंथ को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो साधना स्वयं उनके चरणों में बैठी हो, और उनके जीवन के प्रसंग गाथाओं के रूप में पाठक की आत्मा में प्रवाहित हो रहे हों। यह ग्रंथ बताता है कि गुरु केवल मार्गदर्शक नहीं होते, बल्कि वे स्वयं वह पथ होते हैं, जिस पर चलकर शिष्य मुक्ति के शिखर तक पहुँच सकता है।

गुरु का जीवन एक ऐसा दीपक है, जिसकी ज्योति अनंत पीढ़ियों को आलोकित करती रहती है। 1317 गाथाओं में निबद्ध खवगराय सिरोमणी उसी ज्योति का साहित्यिक रूप है। ग्रंथ में आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज का गौरवशाली जीवन गाथाओं में ध्वनित होकर पाठक को गुरु-चरित के दिव्य वैभव के समक्ष नतमस्तक कर देता है।

ग्रंथकार

परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज दिगंबर श्रमण परम्परा के तेजोस्तम्भ, संयम-रत्न और प्राकृत भाषा के महामेरु हैं। आचार्य गुरुवर संयम का चलता-फिरता अजस्र प्रवाह हैं। उनका जीवन ऐसा प्रतीत होता है मानो आत्मा-साधना ने देह धारण कर ली हो। उनकी दृष्टि उज्ज्वल सरिता की भाँति निर्मल, शान्त, शीतल व स्थिर है और उनका आचरण अहिंसा और शुचिता की सुगंध से परिपूर्ण है। उनकी समीपता से ही वातावरण में एक दुर्लभ सौम्यता उतर

आती है–जैसे कुछ कहने की आवश्यकता ही न रह जाए, केवल आत्मानुभव पर्याप्त हो।

आचार्य श्री के जीवन में संयम किसी कठोर अनुशासन की तरह नहीं बल्कि स्वाभाविक श्वांस की तरह प्रवाहित है। उनके ज्ञान, संयम, साधना, तप, चर्यादि सबमें एक अप्रतिम सन्तुलन है। वे न्यूनतम में जीवन का सर्वोत्तम रस प्राप्त करते हैं। उनका जीवन बताता है कि ''यदि आत्मा जागृत हो तो संयम कठिन नहीं अपितु स्वाभाविक है।''

आचार्यश्री तप, त्याग व ज्ञान के अप्रतिम संगम है। उनका जीवन एकान्तप्रिय है, पर उनकी दृष्टि विश्व–मंगल से ओतप्रोत है। उनका व्यवहार सीमित पर संस्कार व ज्ञान असीमित है।

आचार्य श्री का प्राकृत–ज्ञान वास्तव में प्राकृत रूप ही है। क्योंकि उनका प्राकृत भाषा का ज्ञान किसी भाषाध्ययन का परिणाम नहीं, वरन् आत्मा की अन्तर्यात्रा से फूटी वह स्वयंसिद्ध धारा है जो पर्वत के हृदय में पलते स्रोत की भाँति स्वतः प्रवाहमान हो उठती है। उन्होंने यह भाषा सीखी नहीं–यह तो उनके भीतर प्राचीन संस्कारों की शिला–गर्भित गूंज बनकर स्वयं उदित हुई है। जैसे निर्झर अपने मार्ग को स्वयं तलाशता है, पर्वत से नदी स्वयं फूटती है वैसे ही प्राकृत भाषा उनके मधुर उच्चारण व श्रेष्ठ लेखन में बिना प्रयास के झरती है, जो शास्त्र–शिरोमणियों को भी विस्मित करने वाली होती है।

आचार्य श्री वर्तमान युग में उन दुर्लभ दिव्य–प्रज्ञा–संपन्न साहित्य–सम्राटों में प्रतिष्ठित हैं जिनकी लेखनी प्रायः किसी साधारण मानव के प्रयास से नहीं अपितु ज्ञानमयी साधना–तेज से संचालित प्रतीत होती है। उनके द्वारा सृजित ग्रन्थों का आकाश इतना

विस्तीर्ण है कि अब तक पचहत्तर से अधिक शास्त्र-रत्न उसमें दमक रहे हैं और अनेक ऐसे भी हैं जिनका लेखन पूर्ण होकर मात्र संपादन की अंतिम सुरभि प्रतीक्षारत है।

आश्चर्य यह है कि जो जीवन प्रत्येक क्षण तप, स्वाध्याय, साधना, तीर्थयात्रा, संघानुशासन, समाज को निर्देशन, जिनशासन प्रभावक पंचकल्याणक महोत्सव आदि कार्यक्रमों की व्यस्तता से तना रहता है, उसी जीवन के अन्तर्मन में से ग्रन्थ-निर्झरों का यह अविरत प्रवाह स्वयमेव फूटता है। और इसलिए ही यह प्रश्न सभी विद्वानों के मुख से एक बार तो सहज निकल पड़ता है-"आचार्य श्री आखिर लिखते कब हैं।" आचार्य श्री का यह साहित्य प्रयास से नहीं, वरन् साधना से उपजा दिव्य-प्रसूत प्रकाश है। दिन-रात की सीमाओं से परे उनका लेखन ऐसे प्रतीत होता है जैसे कोई अदृश्य शक्ति उनकी अंगुलियों में समाकर सम्पूर्ण विश्व में युगों के लिए उजाला कर रही हों।

उनकी इस असाधारण सृजन-लीला में एक विस्मयकारी सामर्थ्य छिपा है कि जहाँ सामान्य मनुष्यों को एक पृष्ठ लिखने में भी अथक परिश्रम लगे वहाँ आचार्य श्री का हर शब्द तप-तेज का प्रस्फुटित कण बनकर स्वतः उतर जाता है। यही कारण है कि उनके ग्रंथ केवल लिखित पंक्तियाँ नहीं, बल्कि साधना की सुगंध से सुवासित शास्त्रीय पुष्प हैं जो पाठकों के अंतःकरण को चिरंजीवी प्रेरणा एवं ज्ञान से सुरभित कर देते हैं।

उपसंहार-इन पाँचों ग्रंथों को यदि एक साथ देखा जाए, तो वे जीवन के पाँच स्तंभों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिक्षा का आदर्श, साधु का संयम, उपवास का रहस्य, संवाद की पवित्रता और गुरु का तेज ये पाँचों मिलकर साधना और समाज का संपूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

'प्राकृत वाणी भाग पाँच' की प्रत्येक गाथा साधक को अपने भीतर झाँकने का अवसर देती है।

जो भी अध्येता इसे मनोयोगपूर्वक पढ़ेगा, उसके जीवन में ज्ञान का प्रकाश और साधना का आनंद अवश्य प्रकट होगा। ''यह प्राकृत वाणी केवल शब्दों का समूह नहीं, अपितु जीवंत साधना स्वरूप है। इसे पढ़ना मात्र नहीं, इसे जीना ही इसका सच्चा उद्देश्य है।''

पूज्य आचार्य गुरुवर की कृपा से ही हमारे द्वारा इस ग्रन्थ का संपादन हो सका है। यदि इस पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ही इसका अध्ययन करें। इस ग्रन्थ के संपादन में आर्यिका श्री वर्चस्व नंदिनी माता जी का श्लाघनीय सहयोग प्राप्त हुआ है।

ग्रन्थ के मुद्रण व प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही जनों को पूज्य गुरुदेव का मंगलमय शुभाशीष। परम पूज्य आचार्य गुरुवर के उत्तम स्वास्थ्य की अमृत वर्षा, संयम की अक्षय तेजस्विता और तप-साधना की अजस्र महिमा हम सबके जीवन पथ को सदैव आलोकित करती रहे। ऐसी शुभभावना के साथ परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के पावन चरणांबुजों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित त्रयबार नमोस्तु।

जैनम् जयतु शासनम्

श्री शुभमिति पौष शुक्ल 15 — ॐ अर्हं नमः

श्री वीर निर्वाण संवत् 2552 — **आर्यिका वर्धस्वनंदिनी**

3 जनवरी, 2026

प्राकृतवाणी भाग-5 में समाहित ग्रंथ

1. आयंस-सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)

शिक्षा-मानव-जीवन का वह अमृत स्रोत है, जो अज्ञान के अंधकार को चीरकर ज्ञानत्व का अद्भुत प्रकाश बहाता है। प्राचीन भारत की पावन वसुंधरा से उत्पन्न गुरुकुल परंपरा की सुगंध आज भी हमारी संस्कृति में व्याप्त है। इसी पवित्र सुरभि को शैली, सुषमा और साधना के साथ प्रस्तुत करता है आदर्श-शिक्षा-विधि नामक यह अनुपम ग्रंथ।

वास्तव में शिक्षा का लक्ष्य, संसार के कौशल भरना नहीं-आत्मा के दिव्यत्व को जाग्रत करना है। जानकारी के क्षणभंगुर पुष्प किसी भी युग में सिंचित हो सकते हैं, परतु मूल्य, विवेक और संस्कारों के वटवृक्ष उन हृदयों में जागरण करते हैं जो उचित शिक्षा के आलोक से आलोकित हों। यही इस ग्रंथ का दिव्य-भाव है; यही इसकी धुरी है और यही इसकी चेतना।

"आदर्श-शिक्षा-विधि" शिक्षा-तत्त्व की वह संहिता है, जिसमें शिक्षक और शिष्य के परस्पर संबंधों की सूक्ष्म मर्यादाएँ सुसज्जित हैं।

सुद-जणग-संबंधोव्व, णिस्सत्थो हवेज्ज गुरु-सिस्साणं।
सवर-हिदयरो णिच्चं, पहूदु वरो गुरू सिस्सस्स।।93।।

गुरु व शिष्य का सम्बन्ध नित्य निःस्वार्थ, स्वपर हितकारी एवं पिता व पुत्र के सम्बन्ध के समान होना चाहिए। शिष्य के लिए गुरु प्रभु से भी श्रेष्ठ होते हैं।

सत्थ-भावणा णेव दु, कयावि संबंधे गुरु-सिस्साणं।
णो कोहाइ-वियारा, मित्ति-वच्छलाइ-भावणा हि।।94।।

गुरु व शिष्य के सम्बन्ध में कभी भी स्वार्थ भावना नहीं होनी चाहिए, क्रोधादि विकारी भाव नहीं होने चाहिए, मात्र मैत्री, वात्सल्यादि भावना ही होनी चाहिए।

कहीं यह ग्रंथ शिक्षा के केंद्रों की रचना का विवेचन करता है-कि वे केवल भवन नहीं चेतन-मंदिर हों; कहीं यह शिक्षा की आवश्यकता का झंकृत स्वरूप उद्घाटित करता है-कि वह व्यक्तित्व को नहीं, आत्मा को गढ़ती है; कहीं यह ज्ञान-तृष्णा के समुंदर में डुबकी लगाकर अध्येता को बताता है-कि उद्देश्य केवल जानना नहीं, हो जाना है।

प्राकृतभाषा की पावनता इसकी शैली को और भी निष्कलुष बनाती है। सहजता, सरलता और स्फुट माधुर्य प्राकृत का मूल है-उसमें कठोरता नहीं, ओज है; उसमें चंचलता नहीं, गंभीरता है; उसमें पांडित्य नहीं, प्रकाश है। प्राकृत की धीर धारा में यह सम्पूर्ण ग्रंथ अमृत-स्नान करता हुआ प्रतीत होता है। जो शिष्य इसे पढ़ता है, वह शिक्षा का स्वरूप समझने से पहले उसके हृदय को अनुभव करता है-यही इस ग्रंथ का परम वैभव है।

शिक्षा, यदि केवल बाह्य में सिमट जाए तो ज्ञानाभिमान बढ़ाती है; यदि अंतर्मुख हो जाए तो अस्तित्व को निर्मल करती है। यह ग्रंथ शिक्षा को अंतर्मुख करता है-जहाँ शब्द, मौन में परिवर्तित हो जाते हैं; जहाँ प्रश्न, समाधि बनकर शांत हो जाते हैं; जहाँ उत्तर, आत्मा में उतारने योग्य हो जाते हैं।

शिक्षा का अर्थ यदि केवल शिक्षण होता, तो वह साधारण होती; परंतु शिक्षा का लक्ष्य जब विवेक व अनुशासन युक्त सर्वहित एवं आत्मकल्याण हो जाए-तभी वह आदर्श कहलाती है। यही इस ग्रंथ का शाश्वत संदेश है कि गुरु केवल

ज्ञान का प्रदान नहीं, अनुभव का प्रसाद देते हैं; और शिष्य केवल सुनने नहीं, आत्मा से ग्रहण करने का अभ्यास करता है।

इस ग्रंथ की 126 गाथाएँ, शब्दों का संग्रह नहीं-संस्कारों का दीप-संचय है।

शिक्षा, मनुष्य को बड़ा नहीं बनाती, वह उसे शुद्ध बनाती है। बड़ापन तो चंचल है; जबकि शुद्धता शाश्वत।

यही शाश्वतता इस ग्रंथ की आत्मा है। इस ग्रंथ का अध्ययन करने वाला ही इसे समझ पाएगा, समझने वाला ही सम्यक् व संयमित आदर्श जीवन जी पाएगा और वही संसार से मुक्त हो पाएगा।

2. समण-भावो (श्रमण भाव)

समस्त संसार का पथ नश्वरता की धूल से ढका हुआ है, और उसी धूलाकीर्ण पथ पर, जब कोई आत्मा अपने भीतर की दिव्यता का प्रथम जागरण सुनती है, तब उसका एक ही लक्ष्य होता है-समत्व का दीर्घ प्रकाश। इसी समत्व की साधना, इसी निर्वाणमार्ग की अनुभूति और इसी निष्कंप पवित्रता की दिशा को आलोकित करता है "समण-भावो" नामक यह पावन ग्रंथ।

श्रमण होना मात्र वस्त्र का त्याग नहीं, अपितु अंतरग के संस्कारों की नवीन परिणति है। जहाँ मनुष्य जीवन की क्षुद्र आकांक्षाएँ विलीन हो जाती है; जहाँ आत्मा का संगीत, मौन का महामंत्र बनकर प्रतिध्वनित होता है; जहाँ "मेरा-तेरा" की खाई मिटकर तटस्थता का एकमात्र सेतु बनता है-वही श्रमणत्व है। यही भाव इस ग्रंथ का हृदय भी है और श्वांस भी।

जगद्गुरुओं की वाणी से दीक्षित, साधना की कोख से जन्मा यह ग्रंथ, न केवल श्रमण-संस्कृति के तत्त्वों का वर्णन करता है, बल्कि साधक के हृदय को तपाकर, अमृत-मंथन के लिए समर्थ भी बनाता है। समण-भावो में अंकित 228 गाथाएँ किसी शब्द-समूह का संग्रह मात्र नहीं, वे संकल्प-दीपक हैं, जो मार्ग को प्रकाशित करती है, जिस पर चलकर अनगिन साधकों ने अपने भीतर वीतरागता का समुद्र पाया है।

इस ग्रंथ में स्पष्ट है-युगों से साधक अपने मूल स्वरूप को पहचानने के लिए अलौकिक तप करते आए हैं। वे अपने अनादि सत्य की खोज में, लोक कृत विषम पथों से गुजरते हुए, अंत में आत्मानुभूति के शिखर पर विराजित होते हैं। श्रमणों का मार्ग प्रवृत्ति नहीं निवृत्ति प्रधान है। उनका ध्येय, संसार को परित्यागना नहीं, अपितु निज परमात्म तत्त्व को उद्घाटित करना है।

प्राकृत भाषा की सरल मधुर वाणी इस ग्रंथ को और अमूल्य बनाती है। प्राकृत केवल शब्द नहीं, संस्कृति है। यह लोकभाषा के पवित्रतम स्वरूप में साधना की सूक्ष्म अनुभूतियों को सहजता से वहन करती है। प्राकृत की ध्वनि में स्वाभावतः शांति है; उसकी व्यंजना में करुणा है; उसके उच्चार में आंतरिक पवित्रता और निष्कलुषता है। जैसे चंद्रमा की शीतलता अंधकार को दूर करती है, वैसे ही प्राकृत की स्वच्छता, आत्मा से मलिनताओं का आवरण हटाती है।

यह ग्रन्थ श्रमण के मूलगुण व उत्तरगुणों का वर्णन करता हुआ अपने जिन पवित्र व समस्त भावों से श्रमण उनका परिपालन करते हैं उनका सरस विवेचन कर अपने नाम 'श्रमण भाव' की सार्थकता प्रदर्शित करता है। जैसे अनशन व उपवास करते हुए श्रमण चिंतन करते हैं-

खज्ज-सज्ज-लेह-पेय-गहणं कयावि कस्सवि याले णो।
सस्सद-सुद्ध-सहावो, मे सिद्धोव्व अणसणरूवो॥111॥

खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय ग्रहण करना किसी भी काल में कदापि मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा शाश्वत शुद्ध स्वभाव अनशन रूप व सिद्धों के समान है।

3. उववासो (उपवास)

उपवास-यह केवल आहार-विरति का नियम नहीं, आत्मा की अनंत यात्रा का सुभग उपक्रम है। उपवास का अर्थ भूखा रहना नहीं, अपितु चेतना का अभ्युदय है। उपवास को प्रथम तप इसलिए कहा गया है कि वह मनुष्य को अस्थि-माँस की जड़ता से ऊपर उठाकर आत्मस्वरूप के उज्ज्वल आलोक में प्रतिष्ठित करता है। जहाँ इच्छाएँ वा आकांक्षाएँ मंद पड़ जाती हैं, वहाँ आत्मा का सूर्य दीप्त हो उठता है; उपवास उस ही क्षण का स्वर्णिम नाम है।

उपवास का शास्त्रीय अर्थ है-उप+वास, अर्थात् आत्मा के समीप रहना आचार्यश्री ने ग्रंथ में कहा है-

समीववासो णेयो, वुप्पत्ति-अत्थो खलु उववासस्स।
सगसुद्धप्पसमीवे, वासिदु-मुववासो सुहेदू॥18॥

उपवासका व्युत्पत्ति अर्थ 'समीपमें निवास करना' जानना चाहिए। अपनी शुद्धात्माके समीपमें निवास करनेके लिए उपवास सम्यक् हेतु है।

चउविहाहार-उज्झण-मणसणं खज्ज-सज्ज-लेह-पेयाण।
विसयकसायेहिं सह, सव्वअसुहभावेहि सह वा॥19॥

विषयकषायों के साथ अथवा सर्व अशुभभावों के साथ खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन है।

आहार की विरति तो केवल मुख पर होती है, परंतु उपवास की पूर्णता मन की विरति में निहित है। यदि मुख उपवास करे और मन मोह में अटका रहे, तो साधना केवल नामकी रह जाती है; किंतु जब मन भी अपने समस्त संकल्प-विकल्पों को त्यागकर इच्छा रहित हो जाए, तब उपवास साधना नहीं, समत्व हो जाता है। ऐसे समत्व की सुगंध इस ग्रंथ की प्रत्येक गाथा में व्याप्त है।

उपवास मनुष्य के भीतर देह से परे एक नई शक्ति का स्रोत प्रवाहित करता है। आचार्यश्री ने 'उपवास' मात्र इस शीर्षक पर 111 गाथाओं में इस ग्रन्थ का प्रणयन कर ही उपवास की व्यापकता को प्रदर्शित कर दिया है। ग्रंथ में उपवास के लक्षण एवं उसकी महत्ता को पढ़कर ही रोमांच हो उठता है। कर्मों का संवर, निर्जरा वा आत्मिक शान्ति के साथ आचार्य भगवन् ने रोगों के निराकरण में उपवास व अनुपवास का महत्व दर्शाया है, वह वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जो इस ग्रंथ को पढ़ता है वह उपवास की महिमा जानता है; जो समझता है वह आत्मा की महिमा पहचानता है; और जो इसे जीता है-वह देह से परे, इच्छा से परे, कर्म से परे, स्वरूप-स्थित हो जाता है।

उपवास की परिणति-मुक्ति की चाह नहीं, मुक्ति का स्वाद है। वह साधक को चित्तनदी के तट पर बैठाकर कहता है-"अब तू भीतर देख; तेरा सत्य तेरे ही भीतर है।" यही इस ग्रंथ का परम संदेश है।

4. **महाणुभावो** (महानुभाव)

जैन आध्यात्मिक साहित्य के विशद गगन में, संबोधन-परंपरा एक विशिष्ट ज्योति-पुंज है, जो साधक को वाणी-शुद्धि और भाव-शुद्धि का अद्वितीय उपदेश देती है। महानुभाव इसी पवित्र परंपरा का अनुपम प्रस्तार है, जो शब्दों की गरिमा और संबोधन के मर्यादित सार का सूक्ष्म विवेचन करता है।

इस ग्रंथ का प्राण-''शब्द''-सिर्फ संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि औपचारिकता से परे, भावनाओं का मर्म है। संबोधन मात्र अभिवादन नहीं, आत्मा का आत्मा से संवाद है। जो शब्द वीतरागों की परंपरा में, संयमशील हृदयों में, साधना-पथ के चरणों में अर्पित होते हैं-वे विशिष्ट हो जाते हैं, महान हो जाते हैं, पावन हो जाते हैं। यही भाव महानुभाव के नाम में निहित है-महान के प्रति भावमय समर्पण।

एक-एक गाथा चेतना के द्वार खोलती है। शब्द की गरिमा कब, कहाँ किसके प्रति, कैसे अभिव्यक्त हो-यह विवेक ही व्यक्ति का संस्कार है और साधना का श्रृंगार भी। संबोधन में केवल बाह्य सम्मान नहीं होता; उसमें अंतःकरण की नम्रता, भाव की पवित्रता और आत्मा की निर्मलता प्रकट होती है।

इस ग्रंथ में प्राकृत भाषा के सरल, निर्द्वन्द और कोमल शब्दों के माध्यम से ऐसी गहनता आती है कि मन आलोकित हो उठता है। प्राकृत का स्वर-प्रकृति का स्वर है; वह अनहद का संगीत है, जिसमें भाव सहज खिलते हैं। इस भाषा में भक्ति, चिन्तन, संस्कृति और आध्यात्मिकता का राग एक साथ बजता है। शब्द न हों तो भी, उसका भाव मन में उतर जाए-यही इसकी विशेषता है।

एक बार मुनि श्री शिवानन्द जी मुनिराज ने पूज्य आचार्य गुरुदेव से पूछा–आचार्यश्री! आप प्रवचनों में 'महानुभाव' संबोधन का प्रयोग करते हैं, दादा गुरु भी करते थे और आपको देखकर हम भी करते हैं, तो कई बार लोग पूछते हैं कि इसका अर्थ क्या है? तब पूज्य गुरुदेव ने उनको समझाया। मुनिश्री ने पुनः निवेदन किया कि गुरुदेव यदि ग्रन्थ रूप में इसका प्रणयन किया जाए तो अन्य लोग भी इसको समझ सकेंगे। तब गर्मी में विहार के समय आचार्य गुरुवर ने इन ग्रंथ का लेखन किया और झांझीरामपुरा (राज.) में इस ग्रन्थ को पूर्णता प्रदान की।

'महानुभाव' इस संबोधन शब्द का अर्थ, माहात्म्य व किनके लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है, इस सबका विस्तृत वर्णन ग्रन्थ के अन्तर्गत किया गया है। यथा–

जस्स ण मदो मच्छरो, मायारूवकुडिलभावा कया वि।
सो महाणुभावो जं, भावा महाणरूवा तस्स ।।22।।

जिसके अहङ्कार, मात्सर्य एवं मायारूप कुटिलभाव कदापि नहीं हैं, वह महानुभाव है क्योंकि उसके भाव महान् रूप होते हैं।

5. **खवगराय-सिरोमणी** (क्षपकराज शिरोमणि)

प्राकृत साहित्य की सुरभित पुष्पांजलि में समाहित यह अद्वितीय ग्रंथ–खवगराय–सिरोमणी, अपने नाम की ही भाँति, जैन–जगत् के उन विरल पुरुषार्थ–रत्नों की सुशोभित गाथा है, जिन्होंने आत्मनिष्ठ साधना, शील–शुचिता और व्रत युक्त जीवन की दीप्ति से समस्त प्राणिजगत को उजागर किया। यह ग्रंथ केवल जीवनचरित्र का आख्या–वर्णन नहीं, अपितु साधक के आंतरिक आरोह का उसकी साधना और अक्षय आध्यात्मिक तेज का प्रदर्शक है।

प्राकृत भाषा का माधुर्य, उसकी पवित्रता तथा सहज अभिव्यक्ति इस ग्रंथ के प्रत्येक पद में सुव्यक्त है। प्राकृत केवल भाषा नहीं–चैतन्य की अनुगूँज है; मन की उष्मा और आत्मा की शांति का सहज प्रवाह है। वह न संस्कारों की दुर्गमता से ग्रस्त है, न अर्थों के बोझ से; वह स्फटिक–सा निर्मल, सरिता–सा सरल और समहृत भावों से ओत–प्रोत है। ऐसे स्वानुभूत सत्य को, ऐसा स्फुट जीवन का रस, इसी भाषा में सहजतः रूपायित किया जा सकता है।

इस ग्रंथ में वर्णित आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के पावन जीवन का आलौकित वैभव साधना–पथ के आदि से अंत तक दीपशिखा बनकर चलता है। उनका संयम–कनकप्रभा से दीप्त व्यक्तित्व, जिनशासन–प्रभावना की अनुगूँज और आचरण की रश्मियाँ अध्येता के हृदय में ऐसी स्थिर श्रद्धा का प्रसाद छोड़ जाती हैं, जिसमें उपलब्धि का अहंकार नहीं केवल साधना का संतोष है। भौतिक आकर्षणों से विमुख वे आत्मचिन्तन के जितेंद्र वीर थे। वे मन, वचन, काय को समीचीन संकल्पों में बाँधकर, समत्व भाव से युगों को दिशा देने का सामर्थ्य रखने वाले थे।

1317 गाथाओं में प्रणीत इस ग्रंथ की गाथाएँ एक ओर जहाँ उनके आदर्श जीवन का चित्रण करती हैं, वहीं दूसरी ओर साधना–पथ के विशिष्ट संस्कारों का परिचय भी देती हैं। यह केवल उनका जीवन नहीं, बल्कि समस्त साधक के लिए मार्गदर्शन दीप है, जो साधना का सम्यक् स्वरूप और जिनशासन की समीचीन प्रभावना के उपाय को उद्घाटित करता है।

इस ग्रंथ के माध्यम से केवल ऐतिहासिक या जीवनी-परक आख्यान का विन्यास नहीं किया गया है; अपितु यह दिगंबरत्व की उज्ज्वलता और आत्मीयता का मधुर निनाद है। यह कृति साधक को केवल बताती नहीं, भीतर तक जगाती है; वह केवल जानकारी नहीं देती, अनुभव को उकसाती है; वह केवल पढ़ने के लिए नहीं, साधना के लिए है। यही इसकी सार्थकता है-यही इसकी उपलब्धि।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त आचार्य भगवन् ने अनेक ग्रंथों की रचना की। आचार्य गुरुवर की भावनाओं में गुरुभक्ति और साधना-गरिमा का अपूर्व सामंजस्य है। उनके वचन, शब्द नहीं अभ्यास हैं, वाक्य नहीं-साधना की सुवास हैं। इस प्राकृत वाणी-5 की सरससंवेदना, सुगठित भाषा, सुगंधित विचार और आत्मप्रेरित भावधारा-पाठक को केवल पढ़ने का नहीं बल्कि अन्तर्यात्रा का अनुभव प्रदान करती है।

प्राकृत वाणी का यह पंचम खंड धर्म के मर्मस्थल तक पहुँचने की चाबी है और आत्मा को अपने स्वरूप की पहचान कराने का निमंत्रण भी।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज 21वीं सदी में जो अमूल्य धरोहर सम्पूर्ण विश्व को सौंप रहें हैं उसके लिए यह समूचा विश्व उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा। जो मार्गदर्शन आचार्य भगवन् के इन ग्रंथों से आज प्रबुद्ध वर्ग ग्रहण कर रहा है उसके लिए वे सभी आचार्यश्री के चरणों में सदैव नतमस्तक रहेंगे।

आचार्य गुरुवर की उज्ज्वल स्वास्थ्य की प्रभा, संयम-दीक्षा का निर्मल गौरव और तप साधना का दिव्य आलोक युगों-युगों तक समूचे विश्व के लिए मार्गदर्शक दीप बन निरंतर प्रज्ज्वलित रहे।

परम पूज्य आचार्य भगवन् गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु.... नमोस्तु.... नमोस्तु....।

आर्यिका वर्चस्वनंदिनी

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर

एटा

प्राकृत भाषा की आवश्यकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

भारत की प्राचीन भाषाओं में प्राकृत भाषा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह भाषा न केवल जैन, बौद्ध साहित्य की प्रमुख वाहक रही, अपितु भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के कई महत्वपूर्ण अध्यायों का माध्यम भी बनी। विभिन्न दर्शनों, धर्मों के पूर्व आचार्यों, संस्थापकों, ऋषियों, वैयाकरणों ने भी प्राकृत भाषा को प्राचीन, शुभ और प्रशस्त स्वीकार किया है। **ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, 5** में लिखा है-**संस्कृत-प्रकृताभ्यां यद् भाषाभ्यामन्वितं शुभम्।**

प्राकृत भाषा के संवर्धन और संरक्षण के उद्देश्य से 3 अक्टूबर 2024 को, भारत सरकार के केंद्रीय मंत्रिपरिषद की बैठक में प्राकृत भाषा को भी "शास्त्रीय भाषा" (Classical Language) के रूप में मान्यता दी गई। इस निर्णय के साथ प्राकृत की ऐतिहासिक, साहित्यिक और भाषाई पहचान को उच्च-स्तर पर पुष्टि मिली।

प्राकृत-भाषा मात्र ऐतिहासिक विषय नहीं है बल्कि अपने **सरलीकरण और संक्षिप्तिकरण गुणों** के कारण आधुनिक-तकीनीकी युग के लिए भी अति उपयोगी एवं प्रासंगिक है।

वर्तमान समय में प्राकृत की शैक्षिक आवश्यकता-

जैन-आचार्यों, विद्वानों की अनुकंपा से प्राकृत भाषा का विशाल साहित्य उपलब्ध है। जैन आगमों से लेकर प्राकृत महाकाव्य,

मुक्तक-काव्य, नाट्य-सट्टक, व्याकरण और कोश-रचना तक-अन्वेषण के लिए अनंत संभावनाएँ उपलब्ध हैं। वर्तमान समय में अंतःशास्त्रीय शोध (Interdisciplinary Research) की दिशाएँ बढ़ रही हैं; ऐसे में प्राकृत का ज्ञान शोधार्थियों के लिए आवश्यक हो गया है। इतिहास, समाजशास्त्र, भाषा-विज्ञान, दर्शन, पुरातत्व, तुलनात्मक भाषाशास्त्र-इन सभी क्षेत्रों में प्राकृत का अध्ययन नए आयाम खोलता है।

सरकारी पहलः पांडुलिपि संरक्षण एवं डिजिटलीकरण-

सितंबर 2025 को अयोजित ('Gyan Bharatam International Conference') में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश की पांडुलिपि विरासत को संरक्षित करने और उसे आधुनिक युग के अनुरूप डिजिटल रूप देने के उद्देश्य से Gyan Bharatam Portal का शुभारंभ किया। इन पाण्डुलिपियों के पाठालोचन, पाठ प्रामाणिकता का कार्य करने के लिए प्राकृत भाषा का ज्ञान ही मुख्य है क्योंकि इन पाण्डुलिपियों की भाषा प्रायः प्राकृत ही है।

आधुनिक भाषाविज्ञान में प्राकृत भाषा की भूमिका-

यह भाषा भारतीय आर्यभाषाओं के विकास क्रम का केंद्रबिंदु है। प्राकृत भाषा से ही अन्य भाषाओं का विकास हुआ है-यह भारतीय भाषाविज्ञान की रीढ़ है। शब्दों का ध्वन्यात्मक परिवर्तन (Phonetic Shifts), रूप-परिवर्तन (Morphological Changes), वाक्यरचना (Syntax) आदि विश्लेषण करने से हिन्दी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, बंगाली, राजस्थानी जैसी भाषाओं की जड़ों तक पहुँचने में सहायता करता है। यहाँ तक कि हिन्दी भाषा में आज भी प्राकृत भाषा के अनेक शब्द प्रचलित हैं। जैसे-लवण, चल, पत्थर, दया, धीर, बाला आदि।

कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स में प्राकृत की महत्ता-

भारत में प्राचीन भाषाओं पर आधारित AI (Artificial Intelligence) और NLP (Natural Language Processing) मॉडल तेजी से विकसित हो रहे हैं। प्राकृत जैसी प्राचीन भाषाओं के लिए-कॉर्पस निर्माण, भाषा-मॉडल आदि तैयार करना अत्यंत चुनौतीपूर्ण है। लेकिन यह कार्य आधुनिक शोध में अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे भारत की प्राचीन ग्रंथ-परंपरा डिजिटल रूप में समझी और संरक्षित की जा सकती है।

दर्शन, नैतिकता और जीवन-दृष्टि में प्राकृत की प्रासंगिकता-

प्राकृत साहित्य केवल भाषा का खजाना नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का भी आधार है। जैन आगमों में-अहिंसा, अपरिग्रह, बहु-परस्पर सहयोग, आत्मनिग्रह, संयम, चारित्र जैसी अवधारणाएँ अत्यंत सरल तरीके से प्राकृत भाषा में रचित ग्रंथों में वर्णित हैं। आज का समाज जहाँ हिंसा, असहिष्णुता, भौतिकवाद और मानसिक तनाव से जूझ रहा है, वहाँ प्राकृत साहित्य के सिद्धांत जीवन में संतुलन लाने में सहायक हो सकते हैं।

प्राकृत और वैश्विक अकादमिक जगत-

विदेशों में-जर्मनी, अमेरिका, फ्रांस, रूस, जापान जैसे देशों में प्राकृत और जैन अध्ययन एक बड़ा शोध-विषय है। यह आश्चर्यजनक है कि प्राकृत का अध्ययन विदेशों में अनेक विश्वविद्यालयों में किया जा रहा है, साथ ही अनेक शोध पत्रिकाएँ भी प्रकाशित की जाती हैं। यह वैश्विक रुचि बताती है कि इस भाषा में शोध की अपार संभावनाएँ विद्यमान हैं।

21वीं सदी के दिगम्बर जैन-आचार्य, परम पूज्य प्राकृतभाषा चक्रवर्ती आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने प्राकृत भाषा के संरक्षण, व्याख्या और जन-जन तक प्रसार में अमूल्य योगदान प्रदान किया है। उनके द्वारा रचित प्राकृत-ग्रंथों, प्रवचनों और व्याख्यानों में जैन-आगम और समाज-कल्याण जैसे विषयों को सरल रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्राकृत के व्याकरण और गाथा-परंपरा को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आधुनिक युग में प्राकृत अध्ययन को नई दिशा प्रदान की। अनेक ग्रन्थों का लेखन कर आचार्यश्री ने इस युग को प्राकृत स्वर्णिम युग के रूप में स्थापित कर दिया है। उनके कार्यों के कारण आज अनेक शोधार्थी प्राकृत को भाषा-विज्ञान और आध्यात्मिक अध्ययन का प्रामाणिक स्रोत मानते हुए आगे बढ़ रहे हैं।

-अर्चा जैन

(शामली)

अनुक्रमणिका

विषय **पृष्ठ संख्या**

(i) आयंस-सिक्खाविही **1-29**

*मङ्गलाचरण *शिक्षा का लक्षण *शिक्षा की आवश्यकता *स्त्री शिक्षा *शिक्षा के भेद *शारीरिक शिक्षा *व्यवहारिक शिक्षा *मानसिक शिक्षा *आध्यात्मिक शिक्षा *शिक्षा कैसी हो *शिक्षाविधि *शिक्षा केन्द्र *शिक्षक *आदर्श शिष्य *शिष्य-गुरु सम्बन्ध *शिक्षा कैसे दें *शिक्षा का समय *सदुपयोग *योग्यजनों की ही पद नियुक्ति *अन्तिम मङ्गलाचरण व प्रशस्ति

(ii) समण-भावो **33-83**

*मंगलाचरण *अहिंसा महाव्रत व चिंतन *सत्य महाव्रत व चिंतन *अचौर्य महाव्रत व चिंतन *ब्रह्मचर्य महाव्रत व चिंतन *अपरिग्रह महाव्रत व चिंतन *ईर्या समिति व चिंतन *भाषा समिति व चिंतन *एषणा समिति व चिंतन *आदान-निक्षेपण समिति व चिंतन *प्रतिष्ठापन समिति व चिंतन *शुद्ध स्वभाव की भावना * स्पर्शनेन्द्रिय जय व चिंतन *रसनेन्द्रियजय व चिंतन *घ्राणेन्द्रियजय व चिंतन *चक्षुइंद्रियजय व चिंतन *कर्णेन्द्रिय जय व चिंतन *इंद्रियविषय रत की दुर्गति *विषयों में माध्यस्थ भाव *समता व चिंतन *स्तुति व चिंतन *वंदना व चिंतन *प्रतिक्रमण व चिंतन *प्रत्याख्यान व चिंतन *कायोत्सर्ग व चिंतन *अचेलकत्व गुण व चिंतन *एकभुक्ति गुण व चिंतन *स्थितिभोजन गुण व चिंतन *क्षितिशयन गुण व चिंतन *अस्नान गुण व चिंतन *अदंतधावनगुण व चिंतन *केशलोंच गुण व चिंतन *चौंतीस उत्तर गुण *तप का स्वरूप *तप के भेद *बाह्य तप *अनशन तप व चिंतन *ऊनोदर तप व चिंतन *वृत्तिपरिसंख्यान तप व चिंतन *रसपरित्याग

तप व चिंतन ✷विविक्त शैय्यासन तप व चिंतन ✷कायक्लेश तप व चिंतन ✷अंतरंग तप ✷प्रायश्चित्त तप व चिंतन ✷विनय तप व चिंतन ✷वैय्यावृत्ति तप व चिंतन ✷स्वाध्याय तप व चिंतन ✷कायोत्सर्ग तप व चिंतन ✷ध्यान तप व चिंतन ✷ क्षुधा परीषहजय व चिंतन ✷तृषा परीषहजय व चिंतन ✷शीत परीषहजय व चिंतन ✷ऊष्ण परीषहजय व चिंतन ✷दंसमसक परीषहजय व चिंतन ✷नग्न परीषहजय व चिंतन ✷अरति-रति-परीषहजय व चिंतन ✷स्त्री परीषहजय व चिंतन ✷चर्या-निषद्या-शैय्या परीषहजय व चिंतन ✷क्रोध परीषहजय व चिंतन ✷वध परीषहजय व चिंतन ✷याचना-अलाभ-परीषहजय व चिंतन ✷रोग परीषहजय व चिंतन ✷तृणस्पर्श परीषहजय व चिंतन ✷मलपरीषहजय व चिंतन ✷सत्कारपुरस्कार परीषहजय व चिंतन ✷प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शन परीषहजय व चिंतन ✷अनित्यानुप्रेक्षा चिंतन ✷अशरणानुप्रेक्षा चिंतन ✷संसारानुप्रेक्षा चिंतन ✷एकत्वानुप्रेक्षा चिंतन ✷अन्यत्वानुप्रेक्षा चिंतन ✷अशुचि अनुप्रेक्षा चिंतन ✷आस्रवानुप्रेक्षा चिंतन ✷संवरानुप्रेक्षा चिंतन ✷निर्जरानुप्रेक्षा चिंतन ✷लोकानुप्रेक्षा चिंतन ✷बोधि-दुर्लभानुप्रेक्षा चिंतन ✷धर्मानुप्रेक्षा चिंतन ✷संक्लिष्टासंक्लिष्ट भावना ✷सोलहकारण भावना ✷ग्रंथ पठन फल ✷ग्रंथ लेखन उद्देश्य ✷ग्रंथकार की लघुता ✷अंतिम मंगलाचरण ✷प्रशस्ति

(iii) उववासो **87–115**

✷मङ्गलाचरण ✷तप का स्वरूप ✷तप माहात्म्य ✷तप भेद ✷बाह्य तप भेद ✷अन्तरङ्ग तप भेद ✷बहिरङ्ग तप व्याख्यान क्यों? ✷त्रियोग प्रवृत्ति का भोजन पर प्रभाव ✷उपवास का स्वरूप ✷प्रोषधोपवास ✷लंघन उपवास नहीं ✷उपवास के भेद व स्वरूप ✷उपवास के दिन क्या करें ✷उपवास क्यों व कैसे ✷उपवास का फल ✷उपवास से अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति ✷उपवास से विशुद्ध भाव ✷उपवास से कर्मनाश ✷शक्तिपूर्वक कृत उपवास भी फलदायक ✷उपवास-आत्मगुण-विकासक ✷नियम व यम सल्लेखना में उपवास

✷उपवास–सावद्यप्रवृत्ति नाशक ✷उपवास से आत्मसुख ✷पापी के उपवास–चिन्तन भी नहीं ✷उपवास से ज्ञानवृद्धि ✷उपवास सेस्वस्थता ✷निःकाङ्क्ष उपवास से निःकाङ्क्ष पुण्य ✷उपवास कर्त्ता–विरक्त ✷उपवास कर्त्ता–भावी सिद्ध✷उपवास से मोक्ष ✷उपवास से शुभ शक्तियाँ सहायी ✷उपवास से यश, गुणादि की वृद्धि ✷उपवास से अशुभ कर्म नष्ट ✷उपवास से सुख ✷उपवास–पापनाशक ✷उपवास से परमानन्द प्राप्ति ✷संयमादि दायक उपवास ✷उपवास से कामवेग नष्ट ✷उपवास से आत्मरक्षा ✷उपवास से अध्यात्म विद्या ✷उपवास से भवभ्रमण क्षय ✷समतापूर्वक उपवास से तपादि की वृद्धि ✷उपवास से तीर्थङ्करादि उत्कृष्ट पद ✷उपवास से श्रेण्यारोहण ✷प्रमादोत्पादक आहार ज्ञानादि का हेतु नहीं ✷रोगादि का कारण–अशुभ भोजन ✷कुभाव कृत उपवास–सङ्क्लेशतावर्द्धक ✷सम्यक् व मिथ्या उपवास से सम्यक् व मिथ्या फल ✷स्वास्थ्यवर्द्धक अनशन ✷अजीर्ण भोजन–रोगमूल ✷उपवास से रोग नाश ✷अनुपवास स्वरूप ✷अनुपवास लाभदायक ✷ज्वरादि हारक–अनुपवास✷लंघन वा ऊनोदर से रोग नष्ट ✷उपवास व अनुपवास–रोगनिरोध क्षमता वर्द्धक✷उपवास व अनुपवास से वैराग्यादि परिपक्व ✷उपवास व अनुपवास से विषाक्त पदार्थ नष्ट ✷स्थूलता शमन का साधन–उपवास ✷विशिष्ट चिकित्सा ✷मधुमेहनाशक ✷उदरशोधक ✷ कार्यक्षमता वर्द्धक ✷दीर्घायुकारक ✷देहाङ्ग विश्रामदायक ✷सूजन में लाभ ✷वातादि का सन्तुलन ✷विष–नियन्त्रक वा नाशक ✷सहज श्वासोच्छ्वास–कारक ✷मानसिक सुख कारक ✷हार्मोन्स सन्तुलन ✷स्त्रीरोग–शामक ✷शुष्क खांसी निवारक ✷महारोग–शामक ✷धातु व उपधातु का सन्तुलन ✷नव ऊर्जा दायक ✷उत्साह व परमानन्द–कारक ✷त्रियोग शुद्धि ✷सर्व हितकर उपवास ✷उपवास से असंख्यात गुणित निर्जरा ✷असंख्यात गुणित पुण्य सञ्चय ✷शक्तिपूर्वक उपवास की प्रेरणा ✷रोहिणी आदि व्रत से महापुण्यफल ✷उद्यापन आवश्यक✷सिद्धक्षेत्र

वन्दना से उपवास सुफल ✷मौनपूर्वक उपवास✷चक्रवर्ती भरत व नारायण कृष्ण ✷महोपसर्ग नष्ट ✷तीर्थङ्कर पद प्राप्त जीव ✷उपवास से उभयसुख ✷अन्तिम मङ्गलाचरण ✷ग्रन्थ रचना हेतु ✷प्रशस्ति

(iv) महाणुभावो 119–146

(v) खवगराय-सिरोमणी 149–146

✷मंगलाचरण ✷शैशवकाल ✷वैराग्य की फलश्रुति ✷यथाजात दिगंबर ✷आदर्श पाठक ✷20वीं शताब्दी के प्रथम एलाचार्य ✷पंचाचार परायण ✷जिनशासन प्रभावना ✷चेतन व अचेतन कृतियाँ ✷आत्मसुखकारी शिक्षाएँ ✷सल्लेखना ✷ग्रंथ प्रशस्ति

जिणवाणी-थुदी

महुरं विसदं पिय-गंभीरं
हिदयरं मिदं सिरिजिणवाणिं।

अणेगंतमयं सिआवायमयं
णिरुवमं समं सिरिजिणवाणिं।

जिणसव्वंगादो णिस्सरिदं
भविचित्तहरं सिरिजिणवाणिं।

बारस-अंगेहिं संजुत्तं
लोएपुज्जं सिरिजिणवाणिं।

कंठादिवचोकारणरहिदं
तयरोयहरं सिरिजिणवाणिं।

जगमंगल्लं जगकल्लाणिं
पणमामि सया सिरिजिणवाणिं।

आयंस-सिक्खाविही
(आदर्श शिक्षाविधि)

ज्ञान वह दीप है, जो अज्ञान के सघन तम को विदीर्ण करता है। यह ग्रंथ गुरु-शिष्य के पवित्र बंधन को आध्यात्मिकता से पुष्ट करता है, और बताता है कि शिक्षा का अर्थ मात्र शब्दज्ञान वा अर्थोपार्जन की विद्या नहीं अपितु वह है जिसमें परिवार, समाज व राष्ट्र गौरव के आत्मिक उन्नति भी मूल रूप से निहित है।

आयंससिक्खाविही

Āyaṁsa Sikkhā Vihī

(आदर्श शिक्षा विधि)

- आचार्य वसुनंदी मुनि

आचार्य वसुनंदी मुनिराज विरचित

आयंस-सिक्खाविही

(आदर्श शिक्षा विधि)

मङ्गलाचरण

सम्म-संपुण्ण-सिक्खा-सहिदा सिद्धा सुद्धसहावेणं।
सगसासयसंपत्तिं, लहिदुं णमामि विसुद्धीए।।1।।

सम्यक् सम्पूर्ण-शिक्षा व शुद्ध-स्वभाव से सहित सभी सिद्धों को निज शाश्वत सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए विशुद्धिपूर्वक सदैव नमस्कार करता हूँ।

सव्वलहुमहाभासाजुद-सरस्सदिं णाणमुत्तिरूवं।
अण्णाणतमणासगं, सण्णाणपयासगं वंदे।।2।।

ज्ञान की मूर्ति स्वरूप, अज्ञान रूपी अन्धकार को नाश करने वाली, सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करने वाली, सभी लघुभाषा व महाभाषाओं से युक्त सरस्वती की मैं वन्दना करता हूँ।

सिद्धादी णवदेवा, सगसव्वुक्किट्ठ-कज्जसिद्धीए।
सूरी संति-आइ-विज्जाणंदंतं परियंदामि।।3।।

सिद्ध आदि नवदेवताओं को एवं चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी से आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज तक सभी आचार्यों को अपने सर्वोत्कृष्ट कार्य की सिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।

कारणं सिट्ठदाए, संतिकारगा पसत्था लोयम्मि।
हिदकारगा अहिद-हारगा मुत्तिदायगा सिक्खा।।4।।

जो लोक में शिष्टता का कारण है, प्रशस्त व शान्तिकारक है, हितकारक है, अहितहारक है एवं मुक्ति प्रदान करने वाली है, वही शिक्षा है।

सगवरहिदे समत्था, सव्वुण्णदिकारगा दुहणासगा।
भवसिवसुह-कारगा य, सम्म-सिक्खा संविदिदव्वा।।5।।

जो स्वपर हित में समर्थ है, सभी के लिए उन्नतिकारक है, दुःख की नाशक है, संसार व मोक्ष सुख की कारक है, वह सम्यक् शिक्षा जाननी चाहिए।

सगकुलकित्तिवड्ढगा, आयंस-णीदि-रीदि-संवड्ढगा।
देसुण्णदि-सुत्थ-संति-सुहाणं कारगा सुसिक्खा।।6।।

जो अपने कुल की कीर्ति को बढ़ाने वाली है, आदर्श नीति व रीति की सम्वर्द्धक है, देश की उन्नति, स्वास्थ्य, शान्ति व सुख की कारक है, वह सुशिक्षा है।

अप्पसत्तीण गुणाण, विआसगा बहिकज्ज-सामच्छस्स।
ववहार-णेउण्णस्स, सुसक्कारवड्ढगा सिक्खा।।7।।

जो आत्मशक्ति, आत्मगुण व बाह्यकार्यों के सामर्थ्य की विकासक, व्यवहार की निपुणता व सुसंस्कारों की सम्वर्द्धक होती है, वही शिक्षा है।

जागरुओ सुकत्तव्व-पालणे अहियार-सदुवजोगो य।
तणु-मण-वयण-सत्तीइ, विआसो जाए सिक्खा सा।।8।।

जिससे मनुष्य अपने कर्त्तव्यों के पालन में जागरुक हो, अधिकार का सदुपयोग हो एवं मन, वचन, काय की शक्ति का विकास हो, वह शिक्षा है।

सुकज्जपवत्ती पाव-णिवत्ती कसायसमणं सिक्खाइ।
अप्पभूद-लक्खणं च, विहव-कित्ति-पदादी इदरं।।9।।

सुकार्यों में प्रवृत्ति, पापों से निवृत्ति, कषायों का शमन, ये शिक्षा के आत्मभूत लक्षण हैं; जबकि वैभव, कीर्ति व पद इत्यादि इतर अर्थात् शिक्षा के अनात्मभूत लक्षण हैं।

जा सिक्खा णिम्माणदि, सुवत्तित्तं ववहार-णेउण्णं।
जणदे चित्ते संतिं, सक्किदि-रक्खगा सुइं मणे।।10।।
भासिदा सव्वसेट्ठा, सा जिणवरेहिं मणीसीहिं वा।
इमाए विवरीदा दु, अहिसावोव्व जगपाणीण।।11।। (जुम्मं)

जो शिक्षा अच्छे व्यक्तित्व व व्यवहार-कुशलता का निर्माण करती है, चित्त में शान्ति उत्पन्न करती है, मन में पवित्रता उत्पन्न करती है, संस्कृति की संरक्षक है, वह शिक्षा जिनवरों वा मनीषियों के द्वारा सर्वश्रेष्ठ कही गई है। इससे विपरीत शिक्षा जगत् के प्राणियों के लिए अभिशाप के समान ही है।

जा सम्मपरिवट्टणं, जीवणस्स कुणदि सिक्खा सा।
इयरा णेव सुसिक्खा, पमाणपत्त-गहणं मेत्तं।।12।।

जो जीवन का सम्यक् परिवर्तन करती है वह शिक्षा है। इससे इतर अर्थात् जो जीवन में सम्यक् परिवर्तन नहीं लाती वह सुशिक्षा नहीं है, वह प्रमाणपत्र ग्रहण करना मात्र है।

शिक्षा की आवश्यकता

सुहलक्ख-संपत्तीइ, पहाण-हेदू जीवणे सुसिक्खा।
सक्कारजुदजीवणं, असंभवो विणा सुसिक्खाइ॥13॥

जीवन में शुभ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्यक् शिक्षा प्रधान कारण है। सम्यक् शिक्षा के बिना सुसंस्कार युक्त जीवन असम्भव है।

सुसिक्खा सम्मणाणं, सम्मसद्धं कुव्वेदि दिढिभूदं।
संवेगं वेरग्गं, थिरं संजमं सयायारं॥14॥

सुशिक्षा सम्यक् ज्ञान, सम्यक् श्रद्धा, सम्वेग व वैराग्य को दृढ़ीभूत करती है। सम्यक् शिक्षा संयम व सदाचार को स्थिर करती है।

दुच्चिंतण-विणासगा, दुव्वयणहारी दुक्कम्मघादी।
कुसक्कार-णिरोहगा, सव्वगुणुप्पायगा सिक्खा॥15॥

शिक्षा दुष्चिन्तन का नाश करने वाली, दुर्वचनों का परिहार करने वाली, दुष्कर्म का घात करने वाली, कुसंस्कारों का निरोध करने वाली एवं सभी सुगुणों की उत्पादक होती है।

सव्वत्थाणं समुइद-मुल्लाणं णाण-दायगा सिक्खा।
जाइ णरो उवजोगी, गेह-समाय-देस-विस्साण॥16॥

शिक्षा सभी पदार्थों के समुचित मूल्यों के ज्ञान को प्रदान करती है, जिससे मनुष्य घर, समाज, देश व विश्व के लिए उपयोगी होता है।

णिम्माणदि णरं वरं, दव्वखेत्त-याल-भावणुसारेण।
कुसल-कुलालोव्व णाण-गुण-सुक्कद-खेत्तेसु सिक्खा॥17॥

शिक्षा कुशल कुम्भकार के समान मनुष्य को द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के अनुसार ज्ञान, गुण, सुकृत व क्षेत्रों में श्रेष्ठ बनाती है।

वड्ढगा तक्कजुदणिण्णयसत्ति-सक्किदि-विज्जज्झप्पाण।
सम्मसिक्खा जीवस्स, सव्वंगीण-विआसगा सय॥18॥

सम्यक् शिक्षा सदैव तर्क युक्त निर्णय शक्ति, संस्कृति, विद्या, अध्यात्म एवं जीव का सर्वाङ्गीण विकास करने वाली होती है।

धम्म-अट्ठ-काम-मोक्ख-पुरिसट्ठ-कारगा सम्मसिक्खा दु।
सुजुग-णिम्माणआ सा, संचालगा सुफलदायगा॥19॥

सम्यक् शिक्षा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष पुरुषार्थ का कारण होती है। वह शिक्षा सुयुग की निर्माता, सञ्चालिका व सुफलदायक है।

सिक्खाए सम्मिलिदं, णिच्च-णइमित्तिग-पूयाकम्मं च।
सहावत्ति-कम्मं अवि, सव्वयालम्मि तह खेत्तम्मि॥20॥

शिक्षा में सर्वकाल व क्षेत्र में नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, पूजाकर्म और स्वभावाप्ति कर्म भी सम्मिलित हैं।

तरु-संवड्ढण-हेदू, सलिल-उव्वरग-अक्कपयासादी।
सुसिक्खा एगमेत्तं, उवायो जीवण-वड्ढणस्स॥21॥

जिस प्रकार जल, खाद, सूर्यप्रकाशादि वृक्ष सम्वर्द्धन का हेतु हैं, उसी प्रकार एकमात्र सम्यक् शिक्षा ही जीवन के सम्वर्द्धन का उपाय है।

सिक्खाइ विणा विणयो, कत्तव्वसुपालणं सयायारो॥
सगवरउण्णदी तवो, संजमो य सव्वा असक्का॥22॥

शिक्षा के बिना विनय, कर्तव्यपालन, सदाचार, स्वपर की उन्नति, तप व संयम सभी अशक्य हैं।

स्त्री शिक्षा

पुप्फजुत्ता रुक्खोव्व, सोहंते सुसिक्खाजुदा इत्थी।
सफलतरुव्व सिक्खिदो, उववणोव्व सिक्खिद-कुडुंबो॥23॥

सम्यक् शिक्षा से युक्त स्त्री पुष्प युक्त वृक्ष के समान, शिक्षित नर फल युक्त वृक्ष के समान एवं शिक्षित परिवार उपवन के समान सुशोभित होते हैं।

जस्सिं कुले सिक्खिदा, णारी सक्कार-जुदा तो णिच्चं।
कुलो णंददि सग्गोव्व, सुह-संती पडिक्खणे तत्थ॥24॥

जिस कुल में नारी सुशिक्षित व संस्कारयुक्त होती है, तो वह कुल आनन्दित होता है, वहाँ प्रतिक्षण स्वर्ग के समान सुख-शान्ति होती है।

चुण्णद्देण रोडिगा, संभवो खिल्लणं अद्दमिदिगाइ।
जह तह बालवत्थाइ, सुसक्कारारोवणं तहा॥25॥

जैसे गीले आटे से रोटी और गीली मिट्टी से खिलौना बनाना सम्भव है, उसी प्रकार बाल्य अवस्था में ही सुसंस्कारों का आरोपण सम्भव है।

बंभी-सुंदरीण सग-पुत्तीण दायिदा उसहदेवेण।
सिक्खा त-मादि-सिक्खा-दायगो त्थी-समुद्धारगो॥26॥

तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी व सुन्दरी के लिए शिक्षा प्रदान की थी। इसलिए वे आदि शिक्षा प्रदाता नारी के समुद्धारक कहे जाते हैं।

वट्टि-णेहेहिं विणा, दीवपज्जलण-मसंभवो लोए।
इत्थी-सिक्खाइ विणा, सुसक्कार-संति-मज्जादा॥27॥

जैसे लोक में तेल व बाती के बिना दीप-प्रज्वलन असम्भव है; उसी प्रकार स्त्री शिक्षा के बिना संस्कार, शान्ति व मर्यादा असम्भव है।

कण्णादो वुड्ढंतं, णारी सुसक्कारिदा कुले जम्मि।
सो कुलो वि सुरपुज्जो, कुल-देस-समिद्धिकारगा य॥28॥

जिस कुल में कन्या से लेकर वृद्धा तक सभी नारियाँ सुसंस्कारित होती हैं, वह कुल देवों के द्वारा भी पूज्य होता है। सुसंस्कारित नारियाँ कुल व देश की समृद्धिकारक होती हैं।

शिक्षा के भेद

चदुहा सिक्खा देहिग-ववहार-माणसज्झप्प-भेयादु।
ताहि विणा णो सफलीभूदा मासविहीणतुसोव्व॥29॥

दैहिक (शारीरिक), व्यवहारिक, मानसिक व अध्यात्मिक शिक्षा के भेद से शिक्षा चार प्रकार की होती है। उनके बिना शिक्षा वैसे ही सफलीभूत नहीं होती जैसे दाल से विहीन छिलका।

शारीरिक शिक्षा

वत्तस्स देह-सुदिढं, करिदुं कामवासणं संजमिदुं।
जोग-वायामादीण, सिक्खा देहिग-सिक्खा जाण॥30॥

आरोग्य के लिए, देह सुदृढ़ करने के लिए एवं कामवासना को संयमित करने के लिए योग-व्यायाम आदि की शिक्षा दैहिक शिक्षा जाननी चाहिए।

सुकिड्डाहारो ताइ, अत्थ-सत्थ-संचालणं रक्खिदुं।
उइदसमं स-देससक्किदि-मज्जादं सिक्खावेज्ज॥31॥

सम्यक् क्रीड़ा उस दैहिक शिक्षा का आधार है। जीवों की रक्षा के लिए, अपने देश, संस्कृति व मर्यादा की रक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्र का सञ्चालन एवं उचित श्रम भी सिखाना चाहिए।

गुरुकुलं व करेज्ज सग-करेहि किसिं पसुपालणं सेवं।
अण्ण-सुकज्जाणि लोय-पसंसणीयाणि विज्जत्थी।।32।।

जिस प्रकार पूर्व में गुरुकुल में विद्यार्थी सर्व कार्य स्वयं करते थे, उसी प्रकार आज भी विद्यार्थियों को कृषि, पशुपालन, सेवा एवं लोक में प्रशंसनीय अन्य श्रेष्ठ कार्य भी अपने हाथों से करने चाहिए।

णिरोयी तेजवंतो, लावण्णजुत्तो देहसिक्खाए।
सुकम्मं करिदुं खमो, बंभुवासणाइ सिक्खत्थी।।33।।

शारीरिक शिक्षा से शिक्षार्थी निरोगी, तेजवान् व लावण्य से युक्त होता है तथा ब्रह्म की उपासना से सुकर्म करने में समर्थ होता है।

देहसिक्खाए जणदि, सहणसत्ती पडिऊलठिदीसुं पि।
कुणिदुं तवं खमो सो, बालवत्थाइ गहिदा जेण।।34।।

शारीरिक शिक्षा से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सहनशक्ति उत्पन्न होती है। जिसने बाल्यावस्था से शारीरिक शिक्षा ग्रहण की है, वह तप करने में भी समर्थ होता है।

व्यवहारिक शिक्षा

विणय-भत्ति-सक्कारा, सुपुज्जाणं ववहारणेउण्णं।
लहिदुं कुणह सुसंगदि-मसक्का तेण विणा सिक्खा।।35।।

व्यवहार कुशलता प्राप्त करने के लिए पूज्य पुरुषों की विनय, भक्ति व सत्कार तथा अच्छी संगति करनी चाहिए। चूंकि उसके बिना शिक्षा अशक्य है।

विणय-भत्ति-सक्कारा, सुपुज्जाणं ववहारणेउण्णं।
लहिदुं कुणह सुसंगदि-मसक्का तेण विणा सिक्खा॥35॥

व्यवहार कुशलता प्राप्त करने के लिए पूज्य पुरुषों की विनय, भक्ति व सत्कार तथा अच्छी संगति करनी चाहिए। चूंकि उसके बिना शिक्षा अशक्य है।

पढेज्ज जीवणचरियं, पुराणं गहिदुं ववहारसिक्खं।
महाणराण पस्सेज्ज, सुहदिस्सं चलचित्त-माहो॥36॥

व्यवहार शिक्षा ग्रहण करने के लिए महापुरुषों का जीवनचरित्र व पुराण पढ़ना चाहिए अथवा उनके जीवन सम्बन्धित शुभ दृश्य वा चलचित्र देखने चाहिए।

गुणीणं गुणचिंतणं, सेवं करेज्ज सुगुणं पप्पोदुं।
ववहारसिक्खं विणा, जीवणं घिदरहिदखीरं व॥37॥

सुगुणों को प्राप्त करने के लिए गुणीजनों के गुणों का चिंतन व सेवा करनी चाहिए। व्यवहारशिक्षा के बिना जीवन वैसे ही है, जैसे घृत के बिना दुग्ध।

ववहारसिक्खाइ वच्छल्लं सच्चं मित्तिं दयं लहदि।
सहिण्हुत्त-मुवयारं, सुइं तह संजमं सोहदं॥38॥

व्यवहारशिक्षा से जीव वात्सल्य, सत्य, मैत्री, दया, सहिष्णुता, उपकार, शुचिता, संयम और सौहार्द को प्राप्त करता है।

फुडदि उवयारभावो, विणय-चागेहि ववहारसिक्खाइ।
तच्चचिंतणं पूया, अज्झप्प-विज्जाइ सुभावा॥39॥

व्यवहारशिक्षा से विनय व त्याग के साथ उपकार भाव प्रकट होता है एवं अध्यात्म विद्या से तत्त्वचिन्तन व पूजादि शुभ भाव प्रकट होते हैं।

ववहारसिक्खाइ साहिमाणो धीरं वीरत्तं फुडदि।
उप्पज्जेदि सहजोग-भावं अण्णाणं करुणाइ॥40॥

व्यवहारशिक्षा से स्वाभिमान, धीरता व वीरता प्रकट होती है। (व्यवहार शिक्षा से समुत्पन्न) करुणा भाव से अन्यों के लिए सहयोग का भाव उत्पन्न होता है।

समुइद-णीदिं रीदिं, पालिदुं खमो ववहारसिक्खाइ।
संवेगं जणेदुं च, समिदुं आवेग-मुव्वेगं॥41॥

व्यवहारशिक्षा से जीव समुचित नीति व रीतियों का पालन करने में समर्थ होता है। वह सम्वेग उत्पन्न करने में एवं आवेग व उद्वेग का शमन करने में भी समर्थ होता है।

सुवियार-चिंतणेणं, विगासो मणोसत्तीए पुण पुण।
जलरुहाइ-पुप्फाणं, दिवायर-किरणेहिं जह तह॥42॥

जिस प्रकार सूर्य की किरणों से कमलादि पुष्पों का विकास होता है, उसी प्रकार पुनः पुनः सुविचारों के चिन्तन से मनःशक्ति का विकास होता है।

सव्वरीणाहुदयेण, जह विहसेदि कइरविणी लोयम्मि।
तह कसाय-समणेणं, मणोसत्ती अवि जीवाणं॥43॥

जिस प्रकार लोक में चन्द्रमा के उदय से कुमुदनी खिलती है, उसी प्रकार कषायों के शमन से जीवों की मनःशक्ति भी विकसित होती है।

पावकज्जचागेणं, विसयविरत्तीइ खमाइभावादु।
सुबुद्धि-हेदू वड्ढदि, णाणावरण-खओवसमं च॥44॥

पापकार्यों के त्याग, विषयविरक्ति और क्षमादि भावों से ज्ञानावरण का क्षयोपशम वृद्धिङ्गत होता है और वही श्रेष्ठ बुद्धि का कारण है।

णाणुवयरणं णाणं, गुरुं सत्थं पडि अविणयभावेण।
दुहदं णाणावरणं, बंधेदि य दुग्गदिं पावं।।45।।

ज्ञान के उपकरण, ज्ञान, गुरु व शास्त्र के प्रति अविनय भाव से दुखद ज्ञानावरण कर्म का बन्ध होता है, दुर्गति व पाप का बन्ध भी होता है।

सगणाण-लोवणादो, णाणिं पडि तह मच्छरभावेणं।
सत्थं पडि कुभावेहि, उहट्टेदि खलु सम्मबुद्धी।।46।।

अपने ज्ञान को छिपाने से, ज्ञानी के प्रति ईर्ष्याभाव से, शास्त्र के प्रति कुभावों से सम्यक् बुद्धि निश्चय से नष्ट होती है।

जह जह जीव-विरत्तो, उज्झदि पमादं इंदिय-विसयादु।
तह तह सुकला सुगुणा, णाण-मिच्चादी वड्ढंते।।47।।

जैसे जैसे इन्द्रिय विषयों से विरक्त जीव प्रमाद का त्याग करता है वैसे-वैसे उसके सम्यक् कला, गुण व ज्ञान इत्यादि वृद्धिङ्गत होते

छप्पया आवडंते, पुप्फ-सुगंधीए णियडे ताणं।
तहेव णाणं णरेसु, आयार-संजम-तव-बलेण।।48।।

जैसे पुष्पों की सुगन्धि से उनके निकट भ्रमर आते हैं उसी प्रकार आचरण, संयम व तप के बल से मनुष्यों में ज्ञान उत्पन्न होता है।

संघस्से णो छड्डदि, धीरं सगसत्तिं णेव गोवेज्ज।
सम्मं समं करेज्जा, माणससत्ति-संविड्ढीए।।49।।

संघर्ष के समय व्यक्ति को अपना धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए, अपनी शक्ति कभी नहीं छिपानी चाहिए। मानसिक शक्ति की वृद्धि के लिए सम्यक् श्रम करना चाहिए।

तप्परो साहसेणं, णाणी सय पडिऊल-परिट्ठिदीइ।
माणससत्तिबलेणं, पगड-साहसो विजय-हेदू॥50॥

ज्ञानीजनों को प्रतिकूल परिस्थिति में सदैव साहस के साथ तत्पर रहना चाहिए। मानसिक शक्ति के बल से जो साहस प्रकट होता है वही विजय का कारण है।

रोवो खयदे गेहे, णीराभावे विसेसतावेणं।
किण्णु काणण-रुक्खो ण, णस्सेदि णीराभावम्मि वि॥51॥

पानी के अभाव में विशेष सन्ताप से घर में लगे गमले के पौधे नष्ट हो जाते हैं किन्तु उस नीर के अभाव में भी जंगल का पेड़ नाश को प्राप्त नहीं होता।

गंभीरो य सहिण्हू, धीरो वीरो तहेव विज्जत्थी।
सगणिंदापसंसासु, समो मदो पडण-मग्गो जं॥52॥

विद्यार्थी को गम्भीर, सहनशील, धीर, वीर एवं अपनी निंदा व प्रशंसा में समान होना चाहिए क्योंकि अहङ्कार पतन का मार्ग है।

विज्जत्थी मणोबली, कया वि कुव्वंति अप्पघादं णो।
णेव अहिसावकज्जं, कुलकलंकिदकज्जं पि णेव॥53॥

विद्यार्थियों को मनोबली होना चाहिए, जिससे वे कभी आत्मघात नहीं करते। मनोबली होने से वे कोई अभिशाप रूप कार्य या कुल को कलङ्कित करने वाले कार्य कभी नहीं करते।

जलेण सुज्झदि वत्थं, रत्ताइ-कलंक-जुत्तं मलिणं च।
विज्जत्थीण माणसं, आयरेणं सुवियारेणं॥54॥

जैसे जल से रक्तादि दाग से युक्त वस्त्र व मलिन वस्त्र शुद्ध होता है उसी प्रकार सदाचरण व सुविचार से विद्यार्थियों का मानस शुद्ध होता है।

णव-णव-उज्जा-सत्तिं, गहदि विज्जुदेण विज्जुदुवयरणं।
जह तह सज्झाणेणं, माणससत्तिं दु विज्जत्थी।।55।।

जिस प्रकार विद्युत उपकरण विद्युत से नव-नव ऊर्जा शक्ति ग्रहण करता है उसी प्रकार विद्यार्थी समीचीन ध्यान से मानसिक शक्ति प्राप्त करता है।

सगचित्त-णिरोहस्स दु, पणिहीइ सिमरण-सत्ति-विड्ढीए।
धारणा-दिढं करिदुं, विज्जत्थी कुणदु सज्झाणं।।56।।

अपने चित्त के निरोध के लिए, एकाग्रता के लिए, स्मरण शक्ति की वृद्धि के लिए, धारणा (memory) दृढ़ करने के लिए विद्यार्थी को सद्ध्यान करना चाहिए।

ओमपणवबीयक्खर-मासयेज्ज णहं सज्झाण-विसया।
आणपाणेण सहिदा, सहजावत्था झाण-हेदू।।57।।

विद्यार्थियों को प्रणव बीजाक्षर ॐ, नभ (शून्य) आदि सद्ध्यान के विषयों का आश्रय लेना चाहिए। श्वासोच्छ्वास से सहित सहज अवस्था ध्यान का हेतु है।

देहो जुदिम-णिरोयी, झाणेणं माणसविगासेण सह।
पहावि-वयणं कित्ती, जसो उण्णदी विज्जत्थीण।।58।।

ध्यान से विद्यार्थियों के मानसिक विकास के साथ-साथ देह कान्तिवान् व निरोगी होती है, प्रभावी वचन, कीर्ति, यश व उन्नति भी होती है।

पज्जलिदेग-दीवेण, पजलंति अप्पज्जलिद-बहुदीवा।
जह तह विणद-णाणिणा, लहंति णाणं बहु-अण्णाणी।।59।।

जिस प्रकार एक जले हुए दीपक से बहुत सारे अप्रज्ज्वलित दीपक जल जाते हैं, उसी प्रकार अहङ्कार से रहित विनयी ज्ञानी पुरुष से अनेक अज्ञानी ज्ञान प्राप्त करते हैं।

तिल्ल-पेल्लणेण रत्त-गब्भणिवहणेण कणग-तावणेण।
ताण मुल्लं व वड्ढदि, विज्जत्थीण संघस्सेणं॥60॥

जिस प्रकार तिलों को पेलने से, मेहन्दी को पीसने से व स्वर्ण को ताप देने से उनका मूल्य वृद्धिङ्गत होता है उसी प्रकार सङ्घर्ष से विद्यार्थियों का मूल्य वृद्धिङ्गत होता है।

जेसुं विज्जत्थीसुं, मादु-पिदु-भादु-सिक्खगादीणं च।
बहुभारो अवेक्खा वि, हवेज्जा ते माणसरोयी॥61॥

जिन विद्यार्थियों पर माता, पिता, भाई व शिक्षक आदि का बहुत भार होता है और अपेक्षा भी होती है, वे मानसिक रोगी होते हैं।

माणस-आरोग्गत्थं, विज्जत्थीण दाएज्ज सातंतं।
पडणप्पमुहदारं व, किण्णु सच्छंद-पवत्ती सय॥62॥

मानसिक आरोग्य के लिए विद्यार्थियों को (अध्ययनादि की) स्वतंत्रता देनी चाहिए किन्तु (स्वच्छन्दता कभी नहीं होने देनी चाहिए क्योंकि) स्वच्छन्द प्रवृत्ति सदैव ही पतन के मुख द्वार के समान है।

जह वट्टो पासाणो, खुल्ल-खलेण पडदि गिरि-सिहरादो।
विज्जत्थी अह-पडणं, णिच्छिदो जह तह गव्वेणं॥63॥

जिस प्रकार एक गोल पत्थर छोटी सी ठोकर से गिरि- शिखर से नीचे गिर जाता है उसी प्रकार अहङ्कार से विद्यार्थी का अधोपतन निश्चित है।

सुसब्भदा-सक्किदीण, मज्जादाइ विज्जेज्ज विज्जत्थी।
सव्वुण्णदि-विगासाण, खीरपत्ते खीरं व सया।।64।।

सर्वोन्नति व विकास के लिए विद्यार्थियों को सदैव सभ्यता व संस्कृति की मर्यादा में उसी प्रकार रहना चाहिए जैसे दूध के पात्र में दूध।

अहंकार-छिद्दादो, संपुण्ण-गुणा विज्जत्थीणं तह।
छिद्द-जुत्त-पत्तादो, संपुण्ण-जलं जह णिस्सरदि।।65।।

जिस प्रकार छिद्र युक्त पात्र से सम्पूर्ण जल निकल जाता है उसी प्रकार अहङ्कार के छिद्र से विद्यार्थियों के सम्पूर्ण गुण निःसृत हो जाते हैं।

खयंति विज्जत्थि-गुणा, तह कदायार-अविणय-पमादेहि।
जह झंझा णिव्वावदि, पज्जलिदं दीवं खणेगे।।66।।

जिस प्रकार आंधी एक क्षण में प्रज्ज्वलित दीप को बुझा देती है उसी प्रकार कदाचार, अविनय व प्रमाद से विद्यार्थी के सभी गुण नष्ट हो जाते हैं।

तड-माविदुं असक्को, कद्दमे णिमग्गो गयरायो जह।
पणक्खविसयासत्तो, तह सगलक्खं पप्पोदुं पि।।67।।

जिस प्रकार कीचड़ में फँसा हाथी तट पर आने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय विषयों में आसक्त जीव अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में भी असमर्थ होता है।

माणस-सिक्खा रुंधदि, दुव्वसण-पाव-दुह-मग्गं ताणं।
णिम्मेर-कज्जं धम्म-कुडुंब-समायाण दोहं पि।।68।।

मानसिक शिक्षा दुर्व्यसन, पाप व दुःख के मार्ग का, उनके मर्यादा रहित वा निर्लज्ज कार्यों का एवं धर्म, परिवार व समाज के प्रति द्रोह का भी निरोध करती है।

आध्यात्मिक शिक्षा

भवदुहाणि णस्संते, अज्झप्पविज्जाबलेण णियमेण।
दुह-कारग-कम्माणं, णासगा अज्झप्पविज्जा दु॥69॥

आध्यात्मविद्या के बल से नियम से संसार के दुःखों का नाश होता है। आध्यात्मविद्या दुःखकारक कर्मों की नाशक है।

सामण्णो जीवो अवि, सत्तीए सिद्ध-सुद्ध-परमप्पा।
पत्तेयं विज्जत्थी, मण्णेज्ज एरिसो विणयेण॥70॥

प्रत्येक विद्यार्थी को विनयपूर्वक ऐसा मानना चाहिए कि सामान्य जीव भी शक्ति से सिद्ध शुद्ध परमात्मा हैं।

रुक्खरूवे फलदाण-मत्त-णियदी पत्तेयं बीयस्स।
जह तह भव्वजीवस्स, सुद्धप्पजुद-सिद्धावत्था॥71॥

जैसे वृक्ष के रूप में फल देने मात्र की नियति प्रत्येक बीज की है, वैसी ही भव्य जीव की नियति शुद्धात्मा से युक्त सिद्धावस्था है।

णाण-पयासो दु अप्प-पदेसे अज्झप्प-मिहिरुदयेणं।
अक्कुदयेण पयासो, लोए गगणंगणे जह तह॥72॥

जैसे गगनाङ्गन में सूर्य के उदय से लोक में प्रकाश होता है, उसी प्रकार अध्यात्म रूपी सूर्य के उदय से आत्मा के प्रदेश में ज्ञान का प्रकाश होता है।

अज्झप्पक्को सोसदि, पावपंकं विअसदि पुण्णकमलं।
कामं विसय-कसायं, विणस्सेदि अज्झप्प-विज्जा॥73॥

आध्यात्म का सूर्य पाप रूपी पङ्क का अवशोषण करता है एवं पुण्य रूपी कमल विकसित होता है। आध्यात्मविद्या कामवासना एवं विषय-कषाय का नाश करती है।

पत्तपरमसत्तीए, अज्झप्पणाणेण पावदि विजयं।
आगद-पडिऊलदासु, जीवणे विसमपरिट्ठिदीसु॥74॥

आध्यात्मज्ञान से प्राप्त परम शक्ति से जीव जीवन में आने वाली प्रतिकूलताओं व विषम-परिस्थितियों में भी विजय प्राप्त करता है।

अज्झप्पणाणबलेण, णिस्सीम-णाणं दंसणं सत्तिं।
परमाणंदेण जुदं, अणुवमं बलं तह पप्पोदि॥75॥

अध्यात्मज्ञान के बल से जीव निःसीम (अनन्त) ज्ञान, दर्शन, शक्ति व परमानन्द से युक्त अनुपम बल को प्राप्त करता है।

अज्झप्पजलजुदहिअय-जलासये परमाणंद-कमलाणि।
अज्झप्पणाणहीणा, चित्ते अंकिद-रुक्खादीव॥76॥

अध्यात्म जल से युक्त हृदय रूपी जलाशय में परमानन्द के कमल खिलते हैं। अध्यात्मज्ञान से हीन जीव चित्र में बने वृक्ष आदि के समान है।

लद्धविस्सगुरुगोरव-भारद-मज्झप्पणाणधारगादु।
तस्स बलेणुसह-राम-वीरादी होज्ज परमप्पा॥77॥

आध्यात्मविद्या का धारक होने से भारत विश्वगुरु के गौरव को प्राप्त है। उस आध्यात्मज्ञान के बल से ही ऋषभदेव, राम, महावीर इत्यादि परमात्मा हुए।

शिक्षा कैसी हो

सुसिक्खा णेव कयावि, संकिलेस-कारगा भारभूदा।
जीवणाहारभूदा, सव्वाहिय-पिय-सारभूदा।।78।।

सुशिक्षा कदापि सङ्क्लेशकारक व भारभूत नहीं होनी चाहिए। वह जीवन के लिए आधारभूत, सारभूत एवं सबसे अधिक प्रिय होनी चाहिए।

सिस्साण इट्ठरूवा, पिया व जीवण-सत्थग-कारिगा य।
सुसिक्खा वरदाणं व, देस-कुल-जादि-उण्णदियरा।।79।।

सुशिक्षा शिष्यों के लिए प्रेयसी के समान इष्ट रूप होती है। सुशिक्षा जीवन को सार्थक करने वाली, देश, कुल व जाति की उन्नति करने वाली एवं वरदान के समान होती है।

शिक्षाविधि

सिक्खा-उक्किट्ठविही, सा जाए णेव चिंता विसादो।
कसायुव्वेगो भोग-अहिलासा खोहो चित्ते ण।।80।।

जिस विधि से चिन्ता (Tension), विषाद (Depression) न हो, कषायों का उद्वेग, भोगाभिलाषा व चित्त में क्षोभ न हो, वह ही शिक्षा की उत्कृष्ट विधि है।

सुहद-णिम्मल-भावणं, किंचिवि चिय मणरंजगा सुसिक्खा।
सुसक्कारं च गहणं, कुव्वेदु-मुप्पज्जेज्ज रुइं।।81।।

शिक्षा किञ्चित् मनोरञ्जन रूप भी होनी चाहिए। वह समीचीन शिक्षा भावना को सुखद व निर्मल करने एवं सुसंस्कार को ग्रहण करने की रुचि उत्पन्न करती हो।

शिक्षा केन्द्र

सुद्ध-पवण-संजुत्तो, पागदिगो होज्ज सिक्खाकेंदो।
णो होज्ज अइसीयलो, णेव अइउण्हो वरिसा वा॥82॥

शिक्षा का केन्द्र शुद्ध पवन से युक्त व प्राकृतिक होना चाहिए। अति गर्मी, अति शीत अथवा अति वर्षा वाला नहीं होना चाहिए।

सव्व-पदूसण-रहिदो, सुहद-अणुभूदि-कारगो सुकेंदो।
सुद्धभावुप्पायगो, सुणाणपिवासा-वड्ढगा॥83॥

शिक्षा केन्द्र सभी प्रकार के प्रदूषण से रहित, सुखद अनुभूति कारक, शुद्ध भावों का उत्पादक एवं सम्यग्ज्ञान की पिपासा का सम्वर्द्धक होना चाहिए।

वसण-पाव-विमुत्तम्मि, सिक्खागेहे पारब्भो अंतो।
सिक्खाइ पहुभत्तीइ, तदा खलु सिद्धिदायगा, सा॥84॥

शिक्षा केन्द्र व्यसन व पाप से विमुक्त हों। ऐसे शिक्षागृह में शिक्षा का प्रारम्भ व अन्त प्रभु भक्ति से होना चाहिए, तब ही वह शिक्षा सिद्धिदायक होती है।

शिक्षक

सिट्ठो कत्तव्वपरायणो, खमासील-गमगो सिक्खगो।
अज्झप्पणाणजुत्तो, पवित्तो सय सुहकम्मरदो॥85॥

जो शिष्ट है, कर्त्तव्यपरायण है, क्षमाशील है, गमक (ज्ञानी) है, अध्यात्मज्ञान से युक्त है, पवित्र है, सदा शुभ कर्मों में रत है, वह शिक्षक है।

सिस्साणं च पिदरं व, धीरो वीरो गंभीर-सहिण्हू।
सरलो सहजो णेही, सक्किदि-सब्भदा-रक्खगो य॥86॥

शिक्षक शिष्यों के लिए माता-पिता के समान होता है, वह सहनशील, धीर, वीर, गम्भीर, सरल, सहज, स्नेही एवं संस्कृति व सभ्यता का संरक्षक होता है।

अप्पणुसासगो सयायारी तिजोगसंजमी दयालू।
बहुपडिहा-जुदसिक्खग-विण्णाणी ववहारकुसलो॥87॥

शिक्षक आत्मानुशासक, सदाचारी, त्रियोग संयमी, दयालु, बहुत प्रतिभा से युक्त, विज्ञानी एवं व्यवहारकुशल होता है।

पहावगप्पवयणवत्ता हिद-मिद-पिय-भासगो विणदो य।
दूरदंसी सुभविस्स-णिम्मावगो देसभत्तो वि॥88॥

शिक्षक हित-मित-प्रियभाषी, विनयी, प्रभावक व अल्प- वचन बोलने वाला, दूरदर्शी, अच्छे भविष्य का निर्माता एवं देशभक्त भी होता है।

सुगुरु-मणोविण्णाणी, पवीणो दु सिस्स-चित्तं पढेदुं।
देहरोयं हरेदुं, पाणायाम-जोगाइ-जुदो॥89॥

श्रेष्ठ गुरु शिष्य के चित्त को पढ़ने में प्रवीण, मनोवैज्ञानिक होते हैं। वे शारीरिक रोग को हरने के लिए प्राणायाम व योगादि से युक्त होते हैं।

आदर्श शिष्य

सिट्ठो दमी य सन्तो, मंदकसायजुदो सेवाभावी।
उज्जमी विणयसीलो, भव-देह-भोय-विरत्तो जो॥90॥
सो आयंसोसिस्सो, सयायारी तहा गुरुपदसेवी।
सण्णाणपिवासगो य, एगग्गो ववहारणिउणो॥91॥

जो शिष्ट, इन्द्रियों का दमन करने वाला, शान्त, मन्दकषाय से युक्त, सेवाभावी, उद्यमी, विनयशील, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त, सदाचारी, गुरु चरणों का सेवक, ज्ञानपिपासु, एकाग्र मन वाला और व्यवहार-निपुण होता है, वह आदर्श शिष्य है।

सत्तिगभोयी णिद्दाविजयी जागरुओ एगग्गमणो।
अज्झयण-अज्झावणे, वइरिस्साइ-भावविहीणो॥92॥

एक आदर्श शिष्य सात्विक भोजन करने वाला, निद्रा विजयी, जागरुक, अध्ययन व अध्यापन में एकाग्र मन वाला तथा बैर, ईर्ष्यादि भावों से रहित होता है।

शिष्य-गुरु सम्बन्ध

सुद-जणग-संबंधोव्व, णिस्सत्थो हवेज्ज गुरु-सिस्साणं।
सवर-हिदयरो णिच्चं, पहूदु वरो गुरू सिस्सस्स॥93॥

गुरु व शिष्य का सम्बन्ध नित्य निःस्वार्थ, स्वपर हितकारी एवं पिता व पुत्र के सम्बन्ध के समान होना चाहिए। शिष्य के लिए गुरु प्रभु से भी श्रेष्ठ होते हैं।

सत्थ-भावणा णेव दु, कयावि संबंधे गुरु-सिस्साणं।
णो कोहाइ-वियारा, मित्ति-वच्छलाइ-भावणा हि॥94॥

गुरु व शिष्य के सम्बन्ध में कभी भी स्वार्थ भावना नहीं होनी चाहिए, क्रोधादि विकारी भाव नहीं होने चाहिए, मात्र मैत्री, वात्सल्यादि भावना ही होनी चाहिए।

जह जह वड्ढदि वडूण, णिस्सत्थ-समप्पिद-भावो गुरुस्स।
तह तह गुरु-वच्छल्लं, सिस्सा विज्जा-पारंगदा य॥95॥

जैसे जैसे शिष्यों का गुरु के लिए निःस्वार्थ समर्पित भाव वृद्धिङ्गत होता है वैसे-वैसे गुरु का वात्सल्य भी वृद्धिङ्गत होता है और शिष्य विद्या में पारङ्गत होता है।

जह धेणु-वच्छल्लेण, वच्छं पडि खीरं वड्ढदि णियमा।
तहा सुसिक्खा विज्जा, विणद-सिस्साण गुरुणेहेण॥96॥

जैसे बछड़े के प्रति गाय के वात्सल्य से उसका दुग्ध वृद्धिङ्गत होता है, उसी प्रकार गुरु के स्नेह से विनयी शिष्यों की सुशिक्षा व विद्या वृद्धिङ्गत होती है।

गुरू-अदिसय-पसण्णो, तदा जदा सुसिस्सो महाणिउणो।
सिस्सो णिय गुरुचरणं, सेवंतो तसिद-चायगोव्व॥97॥

जब एक शिष्य महाकुशल होता है, तब एक अच्छे गुरु अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। और शिष्य तब प्रसन्न होता है, जब वह प्यासे चातक के समान अपने गुरु के चरणों की सेवा करता है।

शिक्षा कैसे दें

ण मेत्तं पोत्थ-सिक्खा, ववहारिगं पायोगिग-सिक्खं पि।
देज्ज सरल-भावेहिं, विज्जत्थीण सुहिजीवणस्स॥98॥

विद्यार्थियों के सुखी जीवन के लिए उन्हें मात्र पुस्तकीय शिक्षा ही नहीं अपितु व्यावहारिक व प्रायोगिक शिक्षा भी सरल भावों से देनी चाहिए।

सग-सग-वय-अणुभव-पज्जावरणाणं तह अणुसारेणं।
होज्ज सुहंकर-सिक्खा, पत्तेयं खेत्ते यालम्मि॥99॥

प्रत्येक क्षेत्र व काल में अपनी-अपनी आयु, अनुभव व पर्यावरण के अनुसार शिक्षा सुखकर होती है।

गुरुकुलं व सुहसिक्खा, ण ववसायोव्व णो कय-विक्कयोव्व।
मादुपदत्तभोयणं, जह पुट्ठिमं ण कीद-अदणं॥100॥

सुशिक्षा गुरुकुल के समान होनी चाहिए, व्यापार के समान क्रय-विक्रय रूप नहीं होनी चाहिए। जिस प्रकार माता के द्वारा दिया गया भोजन पौष्टिक होता है खरीदा हुआ भोजन नहीं। (उसी प्रकार गुरु द्वारा निर्लोभ भाव से दी गयी शिक्षा श्रेयस्कर होती है, बेची गई नहीं।)

सिक्खगो णो विक्केज्ज, सगसद्दणाणं वत्थु-विक्कयोव्व।
ण वरा सा अप्पकेर-भावेण विणा सत्थगा णो॥101॥

शिक्षक को वस्तु विनिमय के समान अपने शब्दज्ञान को बेचना नहीं चाहिए। आत्मीय भाव के बिना वह शिक्षा कभी श्रेष्ठ नहीं होती और सार्थक भी नहीं।

माणस-सत्ति-विआसग-विसया तह भोदिगाइ-विण्णाणं।
खगोलं भूगोलं च, गणिदं णायं च वागरणं॥102॥
पागद-सक्किदाइ-भासा जोदिसं वत्थुं जंतसंबंधिं।
मंत-तक्क-सत्थं पि, संगणग-जंतं इच्चाइं॥103॥
पढावेज्ज सुसिक्खगा, जहजोग्गं सक्कारं दायंता।
रक्खगं वड्ढगं कुलधम्म-सब्भदा-सक्किदीणं॥104॥ (तिगं)

सुशिक्षकों को कुलधर्म, सभ्यता व संस्कृति के रक्षक, सम्वर्द्धक, यथायोग्य संस्कारों को देते हुए मानसिक शक्ति के विकास करने वाले विषय भौतिक विज्ञानादि अन्य विज्ञान, खगोल, भूगोल, गणित, न्याय, व्याकरण, प्राकृत व संस्कृतादि भाषा, ज्योतिष, वास्तु, यंत्र सम्बन्धित (तकनीकी) शास्त्र, मन्त्र व तर्क शास्त्र तथा कम्प्यूटर इत्यादि को भी पढ़ाना चाहिए।

णारीणं चउसट्ठी, तहा बाहत्तरि-कला पुरिसाणं।
जोग्गदाणुसारेणं, पढावेज्ज सया विवेगेण॥105॥

विवेकपूर्वक योग्यतानुसार नारियों को चौसठ एवं पुरुषों को बाहत्तर कला पढ़ानी चाहिए।

जदि सत्थ-वाहण-जंत-संचालण-सिक्खा ससदुवओगो।
हिदयरा जदि इदरा, अणत्थगा अवि परमविज्जा॥106॥

यदि शस्त्र, वाहन व यंत्र संचालन की शिक्षा सदुपयोग से युक्त हो तो वह हितकारी होती है, इससे इतर अर्थात् शिक्षा दुरुपयोग से युक्त हो तो वह परमविद्या भी अनर्थकारी होती है।

तिल्लेण विणा दीवो, पजलदि णो चिरं णिव्ववदि अइरं।
जह तह कीड-सिक्खा वि, इंदधणूव जहट्ठं णेव॥107॥

जैसे तेल के बिना दीपक अधिक समय तक नहीं जलता, वह शीघ्र ही बुझ जाता है। जैसे इन्द्रधनुष यथार्थ नहीं होता उसी प्रकार खरीदी हुई शिक्षा भी शीघ्र नष्ट हो जाती है, वह यथार्थ नहीं होती।

मरीइगा व सिक्खा ण, सक्का सिस्स-समाय-हिदं करिदुं।
मरीइगा णो सलिलं, जं तं तुट्ठिकारगं णेव॥108॥

जो शिक्षा मरीचिका के समान होती है, वह शिष्य-समाज का हित करने में शक्य नहीं है, क्योंकि मरीचिका जल नहीं है इसलिए वह किसी के लिए तुष्टिकारक नहीं है।

लोए बहुप्पयारा, विज्जा सुकला भासा विण्णाणं।
जा जीवणं सफलेदि, तं सिक्खं गहेज्ज हंसोव्व॥109॥

लोक में बहुत प्रकार की विद्या, सम्यक् कला, भाषा व विज्ञान है। जो शिक्षा जीवन को सफलीभूत करे वह शिक्षा हंस के समान ग्रहण करनी चाहिए।

सक्किदि-सब्भदा-धम्म-कत्तव्व-मज्जादा-विघादगा य।
ण होज्ज सिक्खा कया वि, सुमरदु विज्जमिदं गहंतो॥110॥

विद्या को ग्रहण करते हुए यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि शिक्षा कदापि संस्कृति, सभ्यता, धर्म, कर्तव्य व मर्यादा की विघातक नहीं होनी चाहिए।

णाय-धम्म-पवट्टगा, कारगा सुह-संति-देसुण्णदीण।
सिक्खा हु सफला पवट्टिदा णिग्गंथ-अप्पणाणी॥111॥

जो शिक्षा न्याय व धर्म की प्रवर्तक है, सुख-शान्ति व देशोन्नति की कारक है वह शिक्षा सफल है, वह निर्ग्रन्थ व आत्मज्ञानियों के द्वारा प्रवर्तित है।

णिरंकुस-गयोव्व जिण्णतडसंजुद-मंदाकिणी व णेया।
विणासगा सगवराण, सुसक्कारविहीणा सिक्खा॥112॥

सुसंस्कार से रहित शिक्षा निरंकुश हाथी एवं जीर्ण तट से संयुक्त नदी के समान स्वपर की विनाशिका जाननी चाहिए।

शिक्षा का समय

गहिय सेसवे सम्मं, सिक्खं जोव्वणे कामं सेवेज्ज।
सुहं कुणंतो बुड्ढावत्थाइ साहदु परमट्ठं॥113॥

बाल्यावस्था में सम्यक् शिक्षा को ग्रहण करके यौवनावस्था में काम का सेवन करना चाहिए। पुनः शुभ अर्थात् पुण्य करते हुए वृद्धावस्था में परमार्थ को साधना चाहिए।

ण कंखदि अत्थ-कामं, जदि णेव चित्ते धणविसय-लोहो।
तो सण्णाणं लहिय, गहेज्जा संजमं हिदत्थं॥114॥

यदि कोई युवा अर्थ व काम की आकांक्षा नहीं करता, उसके चित्त में धन व विषयों का लोभ नहीं है तो सम्यग्ज्ञान को प्राप्तकर हित के लिए संयम ग्रहण करना चाहिए।

भवसिवसोक्खकारणं, भव्वुल्लाणं सण्णाणं णियमा।
सुणाणं विणा संती, ण जलं विणा अग्गिसमणं व॥115॥

भव्यजनों के लिए सम्यग्ज्ञान नियम से संसार-सुख व मोक्षसुख का कारण है। सम्यग्ज्ञान के बिना शान्ति वैसे ही नहीं मिलती जैसे जल के बिना अग्नि का शमन नहीं होता।

इक्खू मिट्ठं सीयल-जलं सुमं सुगंधिदं सहावेण।
जह तह सण्णाणं सुह-संवेग-संजमाइ-हेदू॥116॥

जिस प्रकार स्वभावतः गन्ना मीठा, जल शीतल व पुष्प सुगन्धित होता है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान स्वभावतः सुख, संवेग व संयमादि का हेतु होता है।

सण्णाणेण छक्काय-जीवा रक्खदि मण-मक्खाणि।
तह जह चक्की जयदे, चक्केणं हंदि छक्खंडं॥117॥

जिस प्रकार चक्रवर्ती चक्र से षट्खण्ड पर विजय करता है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान से जीव मन व पाँच इन्द्रियों रूपी षट्खंड पर विजय प्राप्त करता है एवं षट्कायिक जीवों की रक्षा करता है।

सदुपयोग

सुपुण्णकारगो वरो, धण- साहण-सदुवजोगो भव्वाण।
जह तह सुहदो णिच्चं, सुविज्जा-कला-सदुवजोगो॥118॥

जिस प्रकार धन व साधन का सदुपयोग भव्यों के लिए श्रेष्ठ व पुण्य का कारक है उसी प्रकार श्रेष्ठ विद्या व कला का सदुपयोग नित्य ही सुखद है।

योग्यजनों की ही पद नियुक्ति

जोग्गदाणुसारेणं, दाएज्ज सेवापदं सासणं दु।
णरत्त-णासो सक्को, जं गहिद-पदेण अजोग्गेण॥119॥

शासन को योग्यतानुसार ही सेवा का पद देना चाहिए, क्योंकि अयोग्य व्यक्ति के ग्रहण किये गए पद से मानवता का नाश शक्य है।

णाण-विज्जा-कलाणं, अवमाणोव्व उवेक्खा सुजोग्गाण।
विण्णाणीहि णिण्णयं, करिदव्वं विचिंतित्ता तं॥120॥

सुयोग्य जनों की उपेक्षा ज्ञान, विद्या व कला के अपमान के समान है, अतः विशेष ज्ञानियों को चिन्तन करके ही निर्णय करना चाहिए।

खे चंदक्को जावदु, पवाहिद-सरिदा ठिदो सुमेरू य।
सलिलं सीयल-मणलो, उण्हो वसुंधरा सहिण्हू॥121॥

सुमे गंधं इक्खुदंडेसु महुरिमा सिंधुम्मि रयणाणि।
तावदु गंथो विज्जदु, पवट्टदु सया सम्मसिक्खा॥122॥

जब तक आकाश में सूर्य-चन्द्रमा हैं, नदी बह रही है, सुमेरु स्थिर है, जल शीतल है, अग्नि ऊष्ण है, पृथ्वी सहनशील है, पुष्प में गन्ध है, गन्नों में मधुरता है, सागर में रत्न हैं, तब तक यह ग्रन्थ रहे एवं सम्यक् शिक्षा सदैव प्रवर्तमान रहे।

जिणसासणे सुसिक्खा, विहि-पमाणरूवेण विणिद्दिट्ठा।
तस्सणुसारेण मए, रइदो इमो अप्पबुद्धीइ॥123॥

जिनशासन में विधि व प्रमाण रूप से सम्यक् शिक्षा कही गई है, उसी के अनुसार मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

अन्तिम मङ्गलाचरण व प्रशस्ति

चरियचक्किं च सूरिं, संतिसायरं तहा पायसिंधुं।
जयकित्तिं सिरीदेस-भूसणं विज्जाणंद-गुरुं॥124॥
णमंसामि भत्तीए, जाण किवाए गंथिमो विरइदो।
वसुणंदि-सूरिणा मइ, अप्पबुद्धीइ सव्वहिदाय॥125॥ (जुम्मं)
णह-गुरु-गव्व-चेयणा-वीरब्दे वइसाह-असिदपक्खे।
तिदियाइ गंथ-पुण्णो, इमो पुण्णाहे सुहजोगे॥126॥

वैशाख कृष्ण तृतीया, नभ (0), गुरु (5), गव्य (5), चेतना (2) "अङ्कानां वामतो गतिः" से 2550 वीर निर्वाण सम्वत् शुभ योग, शुभ दिन में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

समण-भावो

(श्रमण भाव)

वैराग्य की मंदाकिनी जब हृदय में उतरती है, तब श्रमणत्व अपने तेज से जीवन को तपोमय कर देता है। श्रमण अपने मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन कितने पवित्र व समत्व भावों से करते हैं, वे कुछ भाव इस 'श्रमण-भाव' में निहित हैं।

समणभावो

(श्रमण भाव)

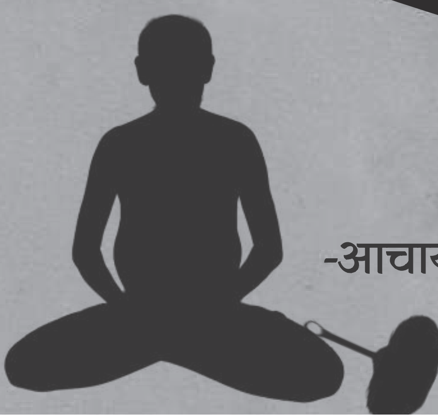

-आचार्य वसुनंदी मुनि

आचार्य वसुनंदी मुनि विरचित

समण-भावो

(श्रमण भाव)

मंगलाचरण

अरिहा सव्वा सिद्धा, समणा जिणसमयं णमिय वोच्छामि।
समणभावं च कसाय-समस्स य समत्त-विड्ढीए॥1॥

सर्व अरिहंत, सिद्ध, श्रमणों (आचार्य, उपाध्याय व साधुओं) एवं जिनशासन को नमस्कार कर कषायों के शमन व समता भाव की वृद्धि के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) समण-भावो (श्रमण-भाव) नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

अहिंसा महाव्रत व चिंतन

तसथावराण हिंसा-आमिल्लणं सया णवकोडीहिं।
जीवमेत्तं पडि दयाभावो महव्वदं अहिंसा॥2॥

नव कोटि (मन, वचन, काय × कृत, कारित, अनुमोदन) से त्रस व स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग करना एवं जीव मात्र के प्रति दयाभाव अहिंसा महाव्रत है।

देहेण हिंसकज्जं, वयणेण सावज्ज-भासणं णेव।
मणेण असुहचिंतणं, णेव करेज्ज सुव्वद-सुद्धस्स॥3॥

इस अहिंसा महाव्रत की निर्मलता के लिए शरीर से हिंसक कार्य, वचन से सावद्य भाषण व मन से अशुभ चिंतन नहीं करना चाहिए।

सत्य महाव्रत व चिंतन

चउविह-मोसवयणं ण, वदिदव्वं जोगीहि तिकरणेहिं।
तिलोए तियाले तं, उज्झेज्ज सच्चवदं लहिदुं॥4॥

योगियों को तीनों करणों (मन, वचन, काय) से चार प्रकार के असत्य वचन नहीं बोलने चाहिए। सत्य महाव्रत की प्राप्ति के लिए त्रिकाल व त्रिलोक में उन असत्य वचनों का त्याग करना चाहिए।

विसमट्ठिदीए वि सय, वदेज्जा जिणवयणाणुसारेणं।
सवरहिदकारगं मिद-पिय कम्मक्खयस्स जोगी॥5॥

योगीजन कर्मों के क्षय के लिए विषम स्थिति में भी जिनवचनानुसार स्वपर हितकारक, मित व प्रिय वचन बोलते हैं।

अचौर्य महाव्रत व चिंतन

आणं विणा ण गहणं, चेयणाचेयणवत्थूण पराण।
णवकोडीए कया वि, अचोरिय-महव्वदं णेयं॥6॥

स्वामी की आज्ञा के बिना दूसरों की चेतन व अचेतन वस्तुओं का नवकोटि से ग्रहण नहीं करना अचौर्य महाव्रत जानना चाहिए।

परवत्थुं परभावं, पदं जसं पर-सिस्सा सिस्साओ।
णो गहेज्ज कसायेण, चिंतेज्जा बारसणुवेक्खं॥7॥

कषायपूर्वक परवस्तु, परभाव, पद, यश, दूसरों के शिष्य व शिष्याओं को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए एवं द्वादशानुप्रेक्षा का चिंतन करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य महाव्रत व चिंतन

चउविह-इत्थीओ पडि, अबंभभाव-चयणं णवकोडीइ।
बंभचेर-महव्वदं, तिलोयपुज्जं मोक्खहेदू॥8॥

नवकोटिपूर्वक चार प्रकार की स्त्रियों (तिर्यंचनी, मनुष्यिनी, देवी व काठ की स्त्री) के प्रति अब्रह्म भाव का त्याग करना ब्रह्मचर्य

महाव्रत जानना चाहिए। यह ब्रह्मचर्य महाव्रत तीनों लोकों में पूज्य व मोक्ष का हेतु है।

कायस्स कुचेट्ठं तह, रायवड्ढगवयणं मणवियारं।
पजहिय णवकोडीए, चिंतेज्ज सुद्धप्पसरूवं।।9।।

नवकोटिपूर्वक काय की कुचेष्टा, रागवर्द्धक वचन, चित्त के विकार का त्याग कर शुद्धात्म स्वरूप का चिंतन करना चाहिए।

अपरिग्रह महाव्रत व चिंतन

चेयण-मचेयणं बहिरंतरं इट्ठमणिट्ठं संगं च।
उज्झिय णवकोडीए, असंगमहव्वदं पालेदि।।10।।

योगी नवकोटिपूर्वक चेतन-अचेतन परिग्रह, बाह्य व अंतरंग परिग्रह, इष्ट व अनिष्ट परिग्रह का त्यागकर अपरिग्रह महाव्रत का पालन करते हैं।

सगसुद्धप्पसरूवे, वसिदुं तच्चचिंतणं जवं तवं।
झाणं करेज्ज पस्सिय, परवत्थुं ण रायं दोसं।।11।।

योगी को निज शुद्धात्म स्वरूप में निवास करने के लिए तत्त्वचिंतन, जप, तप व ध्यान करना चाहिए एवं परवस्तु को देखकर राग व द्वेष नहीं करना चाहिए।

ईर्या समिति व चिंतन

चउकरभूमिं पस्सिय, जिणगुरुतित्थवंदणाय जदणेण।
अक्कपयासे गमणं, इरियासमिदी मुणेदव्वा।।12।।

जिनेन्द्र प्रभु, निर्ग्रन्थ गुरु व जिनतीर्थों की वंदना के लिए चार हाथ भूमि को देखकर सूर्य के प्रकाश में यत्नपूर्वक गमन करना ईर्यासमिति जाननी चाहिए।

सगरूवम्मि ठवंतो, सवरहिदरद-किवालू पुण्णत्थं।
करेज्जा गमणागमण-पवत्तिं च कम्मक्खयेदुं।।13।।

स्वपर हित में रत, कृपालु, साधुओं को पुण्य हेतु निजात्म स्वरूप में स्थित रहते हुए कर्मक्षय के लिए गमनागमन की प्रवृत्ति करना चाहिए।

भाषा समिति व चिंतन

सवरहिदाय सुदाणुअ-हिद-मिद-पिय-वयणाणं भासणं च।
भासासमिदी य मोक्ख-हेदू मणसंति-विसुद्धीण।।14।।

स्वपर हित के लिए श्रुत के अनुसार, हित-मित-प्रिय वचनों का बोलना भाषा समिति है। वह भाषा समिति मन की शांति, विशुद्धि व मोक्ष का हेतु है।

सावज्जवयणेगं वि, णेव वदमु णिंदं परुस-मकत्थं।
चिंतेज्ज सया जोगी, सया सव्वत्थ सुदाणुगं च।।15।।

''मैं सावद्य, निंद्य, कठोर वा नहीं कहने योग्य एक भी वचन ना बोलूँ। मैं सदैव सर्वत्र श्रुत के अनुसार ही बोलूँ, योगी को सदैव ऐसा चिंतन करना चाहिए।

एषणा समिति व चिंतन

बत्तीस-अंतरायं, छादालदोसं परिहरित्तु दिणे।
सुद्धाहार-गहणं दु, सुयालम्मि एसणा-समिदी।।16।।

बत्तीस अंतराय व छ्यालीस दोषों का परिहार करके दिन में, सुकाल में शुद्ध आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।

कुलीण-गिहत्थेहिं, पदत्ताहारं पइडि-अणुऊलं।
णिरवज्जं गहेज्ज तव-संजम-सज्झाय-विड्ढीए।।17।।

योगीजनों को तप, संयम व स्वाध्याय की वृद्धि के लिए कुलीन गृहस्थों के द्वारा दिया गया प्रकृति के अनुकूल, निरवद्य आहार ही ग्रहण करना चाहिए।

पमादं विकहादिं ण, करेज्ज कसायपोसण-मारंभं।
उज्झिय समणो गहेज्ज, आहारं मणित्तु अमियं व॥18॥

योगी को प्रमाद, विकथा व कषायों का पोषण नहीं करना चाहिए। श्रमण को आरंभ का त्यागकर आहार को अमृत के समान मानकर ग्रहण करना चाहिए।

सावयो णेव भिच्चो, समत्तेण सय णिरवज्जाहारं।
भत्तिजुदसावगेहिं, ओग्गहेज्ज विणा कोहादिं॥19॥

श्रावक भृत्य वा सेवक नहीं है अतः भक्ति युक्त श्रावकों से क्रोध इत्यादि के बिना समत्व भाव के साथ सदैव निरवद्य, (निर्दोष) आहार ग्रहण करना चाहिए।

सावयदत्ताहारं, गहिय रिणिओ जदि दुरुवओगं तो।
कुणदि आवसियं ण तं, पालेदि कुणदु सदुवओगं॥20॥

श्रावक द्वारा दिए गए आहार को ग्रहण कर साधु यदि उसका दुरुपयोग करता है, आवश्यकों का पालन नहीं करता तो वह ऋणी हो जाता है अतः उसका सदुपयोग करना चाहिए।

आदान-निक्षेपण समिति व चिंतन

पिच्छि-कमंडलु-पोत्थअ-संथारासणादीणि सोहित्ता।
गहणं णिक्खेवणं च, आदाणणिक्खेवण-समिदी॥21॥

पिच्छी, कमंडलु, पुस्तक, संस्तर, आसन आदि का शोधन कर ग्रहण करना व रखना आदान-निक्षेपण समिति कहलाती है।

हरिय पमादं जीवा, रक्खिदुं विसुद्धीए वत्थूणं।
गहणे णिक्खेवणे य, जागरिओ वद-विसुद्धीए।।22।।

जीवों की रक्षा के लिए और व्रत की विशुद्धि के लिए प्रमाद को दूरकर वस्तुओं के ग्रहण करने व रखने में जागृत रहना चाहिए।

प्रतिष्ठापन समिति व चिंतन

उच्चार-पस्सवणाण, खेल-सिंहाणादीण विसज्जणं।
णिज्जंतुग-ठाणम्मि दु, पदिट्ठावण-समिदी णेया।।23।।

मल, मूत्र, कफ, नासिका मल आदि का विसर्जन निर्जंतुक (जंतु आदि से रहित) स्थान पर करना प्रतिष्ठापन समिति जाननी चाहिए।

पस्सिय फासुग-भूमिं, विणा वेगणिरोह-मारोग्गत्थं।
मलं उज्झेज्जा जीवरक्खणभावेणं दयाए।।24।।

जीवरक्षा के भाव से दयापूर्वक प्रासुक भूमि को देखकर मलादि के वेग को रोके बिना, आरोग्य हेतु मल का त्याग करना चाहिए।

शुद्ध स्वभाव की भावना

गमणागमणं वदणं, अदणं वत्थु-गहण-मुच्चारणं च।
णो मे सहावो होज्ज, हं सुद्धो विहावं हरित्तु।।25।।

गमनागमन करना, बोलना, भोजन करना, वस्तु ग्रहण करना, मल त्याग करना, ये मेरा स्वभाव नहीं है। हे प्रभु! विभाव को दूरकर मैं शुद्ध होऊँ।

जावदु पमत्तो अहं, तावदु किरियं कुणिदुं बद्धो हं।
तं पमादं वज्जित्तु, सगसुद्धसहावं चिंतेमि।।26।।

जब तक मैं प्रमत्त दशा में हूँ तब तक मैं क्रिया करने के लिए बद्ध हूँ। उस प्रमाद का त्याग कर मैं अपने शुद्ध स्वभाव का चिंतन करता हूँ।

णेव जीवो सक्केदि, विणा सगसुद्धसहावचिंतणेण।
सिद्ध-सुद्ध-परमप्पा, होदुं तच्चणाणेणं वा।।27।।

तत्त्व चिंतन अथवा अपने शुद्ध स्वभाव के चिंतन के बिना जीव सिद्ध-शुद्ध परमात्मा होने में समर्थ नहीं होता।

स्पर्शनेन्द्रिय जय व चिंतन

लहु-गुरू कक्कस-मिदू, लुक्खो णिद्धं तह उण्हो सीदो।
इमेसु अट्ठ-विसयेसु, समत्तं फासिंदिय-जयो य।।28।।

हल्का-भारी, कड़क-नरम, रूक्ष-स्निग्ध तथा ऊष्ण-शीत, इन आठ विषयों में समता भाव रखना स्पर्शनेन्द्रिय-जय है।

फासिंदियस्स इट्ठाणिट्ठ-अत्थेसु समत्तं धरंतो।
विसुद्धीइ पुरिसट्ठं, करेज्ज हु फासिदुं सगप्पं।।29।।

स्पर्शनेन्द्रिय के इष्टानिष्ट पदार्थों में समत्व भाव धारण करते हुए अपनी आत्मा को स्पर्श करने के लिए विशुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ करना चाहिए।

पोग्गल-सीलं दु णत्थि, कयावि कत्थवि किंचि वि सीलं मे।
फासं पोग्गलस्स हं, स-संवेदणजोग्गामुत्तो।।30।।

स्पर्श पुद्गल का स्वभाव है। पुद्गल का स्वभाव कदापि, कहीं भी, किंचित् भी मेरा स्वभाव नहीं है। मैं अमूर्त (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित) व स्वसंवेदन योग्य हूँ।

रसनेन्द्रियजय व चिंतन

रसणिंदियस्स दु मिट्ठ-तिक्खंब-कडुअ-खार-विसयेसुं।
समत्तं दु रसणिंदिय-जओ इग-मूलगुणो मुणिस्स॥31॥

रसनेन्द्रिय के मीठा, तीखा, खट्टा, कड़वा, चरपरा-इन विषयों में समता भाव रखना मुनिराज का रसनेन्द्रिय जय नामक एक मूलगुण है।

वसगं होच्चा भमिदो, रसणिंदियस्स संसारम्मि मए।
भुंजिदं घोरदुहं ण, लहिदं किंचिवि जहत्थसुहं॥32॥

रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर मेरे द्वारा संसार में अनादिकाल से भ्रमण किया गया। मैंने घोर दुःखों को भोगा, मैंने किंचित् भी यथार्थ सुख प्राप्त नहीं किया।

अविजिदरसणक्खं बहुदुहमूलं भववड्ढग-महबीयं।
तं अणुभवेमि अप्परसं आमुयिय पोग्गलियरसं॥33॥

रसनेन्द्रिय को नहीं जीतना अर्थात् अविजित रसनेन्द्रिय बहुत दुःखों का मूल एवं संसार की वृद्धि करने वाला महाबीज है। अतः पौद्गलिक रस का त्यागकर मैं आत्मरस का अनुभव करता हूँ।

मिट्ठिट्ठभोयणे पोग्गलियत्थेसु लोलिक्कस्स खणस्स।
किं कुव्वसि अइरायं, घाडीइ अह सव्वा मिऊव्व॥34॥

क्षणभर की लोलुपता के लिए मिष्ट व इष्ट भोजन में, पौद्गलिक पदार्थों में अत्यंत राग क्यों करते हो? अरे! घाटी नीचे सब माटी है। अर्थात् स्वाद मात्र तभी तक होता है जब तक खाद्य पदार्थ जिह्वा पर है उसके पश्चात् सब एक सा ही होता है।

घ्राणेन्द्रियजय व चिंतन

जगे विज्जंत-पोग्गल-पदत्थाण दुविह-गंधेसुं णेव।
कुव्वदि रायदोसं, घाणिंदिय-जयो खलु जो सो।।35।।

इस जगत् में विद्यमान पुद्गल पदार्थों की दोनों प्रकार की गंधों में जो रागद्वेष नहीं करता वह घ्राणेन्द्रिय विजयी कहलाता है।

णो मम अप्प-सहावो, रच्चणं इंदिय-विसयेसु कया वि।
णिव्विअप्प-झाणेणं, चिम्मयप्पगंधं गहमि तं।।36।।

इंद्रिय विषयों में रंजायमान होना कदापि मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है। अतः निर्विकल्प ध्यान के द्वारा मैं चिन्मय आत्मा की गंध ग्रहण करता हूँ।

सज्झायम्मि बाहगो, विअप्पो सुगंध-दुग्गंधाणं पि।
णिव्विअप्पो सहावो, मे तं परमझाणरदो हं।।37।।

सुगंध व दुर्गंध का विकल्प भी स्वाध्याय में बाधक है। मेरा स्वभाव निर्विकल्प है। अतः मैं परम ध्यान में रत होता हूँ।

चक्षुइंद्रियजय व चिंतन

ण कुणदि रायं दोसं, किण्ह-सिद-पीद-णील-रत्तेसुं च।
णेत्तक्ख-जई जो सो, असंखेज्जुत्तरवण्णेसुं।।38।।

जो कृष्ण, श्वेत, पीला, नीला व लाल वर्ण अथवा असंख्यात उत्तर वर्णों में राग-द्वेष नहीं करता, वह चक्षु इंद्रिय विजयी कहलाता है।

जावदु णेत्तिंदियं दु, तावदु पस्सेमि अणंत-पदत्था।
ताण पस्सणं णो मे, सहावो अप्पदंसणं खलु।।39।।

जब तक चक्षु इंद्रिय है तब तक मैं अनंत पदार्थों को देखता हूँ। उनको देखना मेरा स्वभाव नहीं है, आत्म दर्शन ही मेरा स्वभाव है।

सव्वदव्वाणि ताणं, सव्व-गुण-पज्जाया ववहारेण।
णिच्छयेण सगप्पं हि, केवली जाणंति पस्संति।।40।।

केवली भगवान् व्यवहार से सर्व द्रव्यों और उनकी सर्व गुण-पर्यायों को जानते व देखते हैं एवं निश्चय से अपनी आत्मा को ही जानते व देखते हैं।

अप्पदव्वं मुयित्ता, अण्णदव्व-जाणगो ववहारम्मि।
णिमग्गोत्थि णिव्विअप्प-झाणी णिच्छयणयासिदो दु।।41।।

जो आत्मद्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्यों को जानता है वह व्यवहार में निमग्न है। निर्विकल्प ध्यानी निश्चय नय के आश्रित है।

कर्णेन्द्रिय जय व चिंतन

सडज-उसह-गंधारा मज्झिम-पंचम-धेवद-णिसादा य।
सोदिंदियस्स विसया, इमा सत्त-सरा दु मूलम्मि।।42।।
उत्तरविसया दु असंखेज्जलोयपमाणं तेसुं णेव।
रायं दोसं कुव्वदि, सोदिंदिय-जयो खलु जो सो।।43।। (जुम्मं)

षडज, वृषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत व निषाद, ये मूल में सात स्वर कर्णेन्द्रिय के विषय हैं। उस कर्णेन्द्रिय के उत्तर विषय असंख्यात लोक प्रमाण हैं। उन विषयों में जो राग-द्वेष नहीं करते, वह श्रोत्रेन्द्रिय जयी कहलाते हैं।

जगे विज्जंत-सद्दा-सद्दरूवझुणी सव्वसद्दा मे।
सहावो ण पोग्गलिया, ण करेज्ज रायं दोसं तं।।44।।

जग में विद्यमान शब्द वा अशब्द रूप ध्वनि एवं सभी शब्द पौद्गलिक हैं। यह पुद्गल मेरा स्वभाव नहीं है। अतः उनमें राग-द्वेष नहीं करना चाहिए।

णिंद-पसंस-सद्देसु, उवसग्गरूवेसु वंदणादीण।
हस्सविसादभावं दु, णेव करेज्ज कम्मक्खयिदुं।।45।।

उपसर्ग रूप निंदा व वंदनादि के प्रशंस्य शब्दों में कर्म क्षय के लिए हर्ष व विषाद भाव नहीं करना चाहिए।

इंद्रियविषय रत की दुर्गति

फास-रसण-घाण-चक्खु-सोदिंदियाण विसयेसुं कमसो।
गय-झस-भमर-सलह-मिग-रदा लहंते दुहं मिच्चुं।।46।।

स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में हाथी, रसनेंद्रिय विषय में मछली, घ्राण ोन्द्रिय विषय में भ्रमर, चक्षु इंद्रिय विषय में पतंगा एवं कर्णेन्द्रिय विषय में हरिण रत होते हैं। वे सभी जीव दुःख एवं मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

पंचिंदिय-विसयेसुं, जदि परिलीदे हु को वि पुरिसो तो।
कहं ण बंधदि कम्मं, पावगतत्त-अयसपिंडोव्व।।47।।

यदि पंचेन्द्रिय के विषयों में कोई भी पुरुष लीन होता है तो अग्नि तप्त लौह पिंड के समान कर्म का बंध कैसे नहीं करता अर्थात् अवश्य करता है।

विषयों में माध्यस्थ भाव

विसयेसुं हु रदि-अरदि-करणं सया कम्मबंधणिमित्तं।
तं धारेमि मज्झत्थ-भावं समत्त-पगासणाइ।।48।।

विषयों में रति व अरति करना कर्म बंध का निमित्त है। समत्व भाव के प्रकटीकरण के लिए मैं उनमें माध्यस्थ भाव धारण करता हूँ।

समता व चिंतन

तियालिय-सव्वत्थेसु, विज्जंत-चेयणाचेयणेसुं च।
मज्झत्थभावधरणं, सक्खिभावसंजुदसमत्तं।।49।।

लोक में विद्यमान त्रैकालिक चेतन-अचेतन सभी पदार्थों में माध्यस्थ भाव धारण करना साक्षी भाव से युक्त समता भाव है।

दिढकवाडोव्व हु कम्म-संवरस्स कम्ममोअग-समत्तं।
मुत्तीइ सहीव सया, धारेमि सव्वदा सव्वत्थ।।50।।

समत्व भाव कर्म का विमोचन करने वाला है। यह समता कर्मों के संवर के लिए सदा दृढ़ कपाट के समान एवं मुक्ति की सखी के समान है। मैं सदा सर्वत्र उस समत्व भाव को धारण करता हूँ।

जीवे मरणे लाहालाहे इट्ठाणिट्ठ-संजोगम्मि।
विजोगे सुहे दुहे य, मज्झत्थभावो समत्तं दु।।51।।

जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, इष्ट-अनिष्ट, संयोग-वियोग, सुख व दु:ख में माध्यस्थ भाव ही समता है।

जावदु जोगी पस्सदि, इट्ठणिट्ठ-चेयणाचेयणत्था।
तं पस्सेमि सगप्पं, तावदु ण संभवो समत्तं।।52।।

जब तक योगी इष्ट- अनिष्ट वा चेतन-अचेतन पदार्थों को देखता है तब तक समत्व भाव संभव नहीं है। इसलिए मैं स्वात्मा को देखता हूँ।

कहण-मइसुलहं वरं, णो एगभावेण सुह-दुह-सहणं।
अप्पगुणं पागडिदुं, सहेज्जा अहं समत्तेणं॥53॥

यद्यपि कहना बहुत आसान है किन्तु एक ही भाव से सुख-दुःख सहन करना आसान नहीं है। आत्म गुणों के प्रकटीकरण के लिए मैं समता भाव से सहन करता हूँ।

भयवदरूवं दु मुत्तिबीअं व सग्गसेणीव समत्तं।
समत्तभावजुदजदी, पच्चक्खमोक्खमग्गोव्व खलु॥54॥

समत्व भाव भगवद् रूप है, वह समत्व भाव मुक्ति का बीज व स्वर्ग के सोपान के समान है। समता भाव से युक्त यति निश्चय से प्रत्यक्ष मोक्षमार्ग के समान है।

तिव्वपावकम्मुदये, जोगी धरेज्जा समत्तभावं दु।
एगकम्मफलं एगवारं भुंजेज्ज ण अण्णस्स॥55॥

तीव्र पापकर्म के उदय में योगी समत्व भाव धारण करते हैं। अहो! जीव अपने द्वारा बाँधे गए एक कर्म का फल एक ही बार भोगता है, अन्य किसी के कर्म का फल वह नहीं भोगता।

समत्तभावधारणं, अइदुल्लहं तिव्वपावोदये वि।
जह तह अइपुण्णुदये, णिद्धमट्टियाइ रीअणं व॥56॥

जिस प्रकार अत्यंत पापकर्म के उदय में समत्व भाव धारण करना दुर्लभ होता है उसी प्रकार पुण्य के उदय में भी समत्व भाव धारण करना चिकनी मिट्टी में चलने के समान अति दुर्लभ है।

समत्तं वड्ढदि तस्स, फलं चिंतित्तु जो वि महापुरिसो।
एगत्तभावणाए, अइर मुत्तिपदं लहेदि सो॥57॥

जो भी महापुरुष एकत्व भावना से समत्व भाव के फल का चिंतन कर समत्व भाव को वृद्धिगत करते हैं, वे शीघ्र मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं।

रस-रूव-गंधहीणो, अवत्तव्वो चेयणारूवो हं।
तच्चचिंतणेण विणा, णो समत्तं कम्मक्खओ वि।।58।।

मैं रस, रूप व गंध से हीन, अवक्तव्य व चेतना रूप हूँ। तत्त्वचिंतन के बिना समत्व भाव व कर्म का क्षय भी नहीं हो सकता।

स्तुति व चिंतन

सिरिजिणधम्म-पवट्टग-उसहाइ-वीरंत-तित्थयराणं।
गुणेसु तिव्वणुरायो, थुदी छिंदिदुं अट्ठ-कम्मं।।59।।

अष्टकर्मों के नाश के लिए जिनधर्म प्रवर्तक वृषभनाथ आदि से श्री महावीर स्वामी तक सभी तीर्थंकरों के गुणों में तीव्रानुराग स्तुति कहलाती है।

तित्थयरोव्व सरूवो, मे भावणा सवर-कल्लाणत्थं।
वड्ढदु मे चित्ते सय, हे णाहो! होज्ज थुदि-भावो।।60।।

मेरा स्वरूप तीर्थंकर देव के समान है। मेरे चित्त में सदैव स्वपर कल्याण की भावना वृद्धिगत होती है। हे नाथ! स्तुति का भाव मेरे चित्त में सदैव रहे।

कस्स वि णिंदा हेदू, पावबंधणस्स पुण्णणासगस्स।
तं णिंद-मुज्झिय थुदिं, कुणमु सय हविदुं थुदिजोग्गं।।61।।

किसी की भी निंदा पापबंध व पुण्य नाश का कारण होती है। अतः स्तुति योग्य (स्तुत्य) होने के लिए निंदा का त्यागकर मैं स्तुति करता हूँ।

वंदना व चिंतन

तित्थयरेग-गुणेसुं, करणं परमपीदिजुदभत्तीए।
पुण्णवड्ढग-वंदणा, णिमित्तं खलु कम्मक्खयस्स॥62॥

एक तीर्थंकर के गुणों में परम प्रीति युक्त भक्ति करना सुपुण्यवर्द्धक वंदना है। यह वंदना निश्चय से कर्मक्षय का निमित्त है।

लहिदुं सगप्पणंदं, जिणवंदणं सया करेज्ज जोगी।
दंदविणासगं सील-पयासगं आणंदखंधं॥63॥

जिनेन्द्र प्रभु की वंदना द्वंदनाशक, शीलप्रकाशक व आनंद स्कंध है। योगीजन ऐसी जिनवंदना को स्वात्मानंद की प्राप्ति के लिए सदैव करते हैं।

लोयसिहरे विज्जंत-मुत्ता जे वि जिणवंदणाए ते।
कंखेमि भो जिणवरो! वंदण-वंदणीय-भावं च॥64॥

लोक के शिखर पर जो भी मुक्त जीव विद्यमान हैं वे सभी जिनवंदना से ही मुक्त-सिद्ध हुए हैं। हे जिनवर! मैं वंदन व वंदनीय भाव की आकांक्षा करता हूँ।

प्रतिक्रमण व चिंतन

मूलुत्तरगुणेसु उप्पण्ण-सव्वदोसाणप्पणिंदाइ।
गरहाइ गुरुसक्खीइ, आलोयणं पडिक्कमणं दु॥65॥

गुरु की साक्षी में आत्मनिंदा व गर्हापूर्वक मूलगुण व उत्तरगुणों में उत्पन्न सभी दोषों की आलोचना करना प्रतिक्रमण कहलाता है।

पुव्वदोसा खालिदुं, सगदोसणिवेदणं सुगुरुहुत्ते।
भविस्से अकरणस्स दु, ताण पदिण्णा पडिक्कमणं॥66॥

पूर्व दोषों के प्रक्षालन के लिए गुरु के सम्मुख अपने दोषों का निवेदन करना एवं भविष्य में उनके नहीं करने की प्रतिज्ञा प्रतिक्रमण है।

पुव्वमग्गे मुंचिदं, रयणाइबहुमुल्लधणं गहेदुं।
जाण पच्छिमगमणं व, दोसहारगं पडिक्कमणं।।67।।

पूर्व मार्ग में छूटे रत्नादि बहुमूल्य धन को ग्रहण करने के लिए पीछे जाने के समान, दोष हारक प्रतिक्रमण जानना चाहिए अर्थात् जिस प्रकार पीछे मार्ग में छूटे हुए रत्नादि बहुमूल्य धन को ग्रहण करने व्यक्ति पीछे जाता है, उसी प्रकार कषाय, प्रमाद वा अज्ञान के कारण अपनी विशुद्धि से च्युत मुनिराज का पीछे लौटकर पुनः अपनी विशुद्धि में स्थित होना दोष-हारक प्रतिक्रमण है।

उवाणयाहिं जह तह, चरणाण रक्खा कंडगादीदो।
सेट्ठ-पडिक्कमणेणं, सुकल्लाणकारग-चरणस्स।।68।।

जिस प्रकार पादत्राणों से कंटक आदि से चरणों (पैरों) की रक्षा होती है उसी प्रकार श्रेष्ठ प्रतिक्रमण से कल्याण- कारक चरण अर्थात् आचरण-चरित्र की रक्षा होती है।

पडिक्कमणेणं विणा, सिवमग्गे गमणं संभवो णेव।
तं वियप्पवत्थाए, करेज्ज सोहिदुं अप्पवदं।।69।।

प्रतिक्रमण के बिना मोक्षमार्ग पर गमन संभव नहीं है। अतः विकल्प अवस्था में आत्मव्रतों के शोधन के लिए प्रतिक्रमण करना ही चाहिए।

जह सिरत्ताणत्थसत्थेहि विणा सत्तुं णिक्कंदेदुं।
ण समत्थो सूरो तह, पडिक्कमणेण विणा जोगी।।70।।

जिस प्रकार एक शूरवीर टोप, अस्त्र-शस्त्रों के बिना शत्रुओं का नाश करने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार प्रतिक्रमण के बिना योगी कर्म शत्रुओं के नाश में समर्थ नहीं होता।

प्रत्याख्यान व चिंतन

दोसाण भावियाले, मालिण्णादो णियवद-रक्खाए।
पच्चक्खाणं णेयं, सावज्जाइ-णिल्लुंछणं दु॥71॥

भविष्य में दोषों के मालिन्य से अपने व्रतों की रक्षा के लिए सावद्यादि का त्याग करना प्रत्याख्यान जानना चाहिए।

कम्मक्खयिदुं णियमा, पुव्वब्भासो खलु पच्चक्खाणं।
चेयणाए रक्खगं, जीवप्पसत्ति-विआसगं च॥72॥

कर्म क्षय के लिए नियमपूर्वक पूर्वाभ्यास प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान चेतना का रक्षक और जीवात्म शक्ति का विकासक है।

गुणो धम्मो सहावो, कत्तव्वं पच्चक्खाणं मज्झं।
सुव्वद-सुईए जाण, पुव्वपक्खालणं मग्गस्स॥73॥

प्रत्याख्यान मेरा गुण, धर्म, स्वभाव व कर्त्तव्य है। सम्यक् व्रतों की पवित्रता के लिए मार्ग का पूर्व में ही प्रक्षालन करना प्रत्याख्यान जानना चाहिए।

कायोत्सर्ग व चिंतन

ममत्त-आमिल्लणं दु, सिवमग्गे गच्छमाण-धम्मीहिं।
काउस्सग्गो सुगुणो, कम्मक्खयिदुं मुक्खो ताण॥74॥

मोक्षमार्ग पर चलते हुए धर्मियों के द्वारा ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग उन श्रमणों के कर्मक्षय के लिए मुख्य व श्रेष्ठ गुण है।

रायं दोसं जोगी, तह णिल्लुंछदे काउस्सग्गम्मि।
जह सुभडो रणखेत्ते, ममत्तं सदेह-जणादीदु।।75।।

जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में एक सुभट अपने शरीर व स्वजनों आदि से ममत्व का त्याग कर देता है उसी प्रकार योगी कायोत्सर्ग में राग व द्वेष का त्याग कर देता है।

को वि आसण्णभव्वो काउस्सग्गम्मि पवत्तमाणो य।
झामिदुं कम्मविविणं समत्थो दु सगविसुद्धीए।।76।।

कायोत्सर्ग में प्रवर्तमान कोई भी आसन्न भव्य जीव निज विशुद्धिपूर्वक कर्म रूपी वन को जलाने में समर्थ होता है।

अप्पं रक्खेदुं खलु, काउस्सग्गो दु महावाहिणीव।
काउस्सग्गेण विणा, णो सक्कदि कम्मक्खयेदुं।।77।।

आत्मा की रक्षा के लिए कायोत्सर्ग महासैन्य है। कायोत्सर्ग के बिना जीव कर्मक्षय करने में समर्थ नहीं होता।

अचेलकत्व गुण व चिंतन

मण-वय-कायेहिं किद-कारिदाणुमोदेहि सव्वविहाण।
वत्थ-णिहाणं जावज्जीव-मचेलगत्तं मुणीण।।78।।

मन, वचन, काय व कृत-कारित-अनुमोदना से सभी प्रकार के वस्त्रों का जीवनभर के लिए त्याग करना मुनियों का अचेलकत्व गुण है।

सुंदरिमा-विड्ढीए, स-वियारं थयिदुं णरा वत्थाणि।
धरंति णो दियंबरो, विरत्त-णिव्विआरत्तादो।।79।।

सौंदर्य की वृद्धि के लिए एवं अपने विकारों को आवृत करने के लिए मनुष्य वस्त्र धारण करते हैं। किन्तु संसार-शरीर-भोगों से विरक्त व निर्विकारी होने से दिगंबर संत वस्त्र धारण नहीं करते हैं।

जहाजाद-दियंबरो, हं बालोव्व आणंद-संजुत्तो।
वत्थाइ-धारणं मे, सहावो णो कया वि जम्हा॥80॥

मैं बालक के समान यथाजात दिगंबर व आनंद से युक्त हूँ। क्योंकि वस्त्रादि का धारण करना कदापि मेरा स्वभाव नहीं है।

संभवो पइडि-णियडे, ठाइत्ता लहणं सग-पइडीए।
दियंबरा णिल्लेवा, खं व पइडीव णिरावरणा॥81॥

प्रकृति के निकट रहकर अपनी प्रकृति को प्राप्त करना संभव है। दिगंबर मुनि आकाश के समान निर्लेप व प्रकृति के समान आवरण से रहित होते हैं।

एकभुक्ति गुण व चिंतन

णिरवज्ज-फासुगं वर-गेहेहि दत्ताहारं एक्कसि य।
दिणे गहंते समणा, इगभुत्ती-मूलगुणो ताण॥82॥

श्रेष्ठ गृहस्थों के द्वारा दिए गए निरवद्य व प्रासुक आहार को श्रमण दिन में एक ही बार ग्रहण करते हैं, वह उनका एकभुक्ति नामक मूलगुण है।

तित्थयरादी गहंति, फासुगमाहारं वर-सावगेहि।
देहट्ठिदी चिरं णो, संभवो आहारेण विणा॥83॥

तीर्थंकरादि मुनि भी श्रेष्ठ श्रावकों से प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं क्योंकि आहार के बिना देह की स्थिति अधिक समय तक संभव नहीं है।

जहवि आहार-गहणं, ण मे सहावो छ-कारणेहि तहवि।
गहमि सुद्धाहारं पि, तदा णिवत्तंतो असुहादु।।84।।

यद्यपि आहार ग्रहण करना मेरा स्वभाव नहीं है तथापि उस आहार के समय भी अशुभ से निवर्तन करता हुआ मैं छः कारणों से (क्षुधा वेदना नाश के लिए, वैय्यावृत्ति के लिए, छः आवश्यकों के पालन के लिए, संयम पालन के लिए, प्राणरक्षा के लिए एवं दस धर्मादि के चिंतन के लिए) आहार ग्रहण करता हूँ।

स्थितिभोजन गुण व चिंतन

जावदु जंघाबलेण, उट्ठित्तु सक्को गहिदु-माहारं।
तावदु आहार-गहण-मध उज्झणं ठिदि-भोयणं दु।।85।।

जब तक मुनिराज जंघाबल से खड़े होकर आहार ग्रहण करने में समर्थ हैं तब तक ही आहार ग्रहण करना अनंतर त्याग करना, श्रमणों का स्थितिभोजन नामक मूलगुण है।

संजमाइ-विड्ढीए, उहयवत्थासु गहेमि आहारं।
णिच्छयाहारो दु, सगसुद्धाणुभूदिरूवझाणं।।86।।

संयमादि की वृद्धि के लिए मैं दोनों ही अवस्थाओं में आहार ग्रहण करता हूँ। निज शुद्धानुभूति रूप ध्यान निश्चय आहार है। [एवं जल, अन्नादि का ग्रहण व्यवहार आहार है।]

क्षितिशयन गुण व चिंतन

भूमीए सिलातले, फलगे संथरे खेदणिवत्तीइ।
सयणं एयपक्खेण, खिदिसयणं गुणो जोगीणं।।87।।

भूमि, शिलातल, तख्त, संस्तर पर खेद (श्रमादि) की निवृत्ति के लिए एक कर्वट से शयन करना योगियों का क्षितिशयन नामक मूलगुण है।

सरीरस्स पसम-खेद-रोग-किलेसाइ-णिवत्तीए तह।
समणा अप्पयालस्स, सयंति परिणामविसुद्धीइ॥88॥

श्रमणराज शरीर के श्रम, खेद, रोग व क्लेशादि की निवृत्ति के लिए ही परिणामों की विशुद्धिपूर्वक अल्पकाल के लिए शयन करते हैं।

भो जिणदेवो! तवाइ-सत्तीए होमु णिद्दा-जयी हं।
अहण्णिसं सज्झाणं, कुणेमु पउमासणादीहिं॥89॥

हे जिनेंद्र देव! तप आदि की शक्ति से मैं निद्रा-विजयी होऊँ। मैं निरंतर पद्मासनादि से स्वाध्याय करूँ।

मए णो कयावि होज्ज, सयणम्मि अवि हिंसाइ-सावज्जं।
पस्समु णो दुस्सिविणं, णो होदु देहस्स कुचेट्ठा॥90॥

हे प्रभु! मेरे द्वारा निद्रा में भी कदापि हिंसादि सावद्य न हो। मैं कभी दुःस्वप्न न देखूँ और ना ही कभी देह की कुचेष्टा हो।

होज्ज विसुद्ध-तिजोगा, सयणे वि मम कसायमंदत्तादु।
कम्मणिज्जराइ पुण्ण-कारणं होदु मम सयणं वि॥91॥

कषायों के मंद होने से निद्रा में भी मेरे तीनों योग (मन, वचन व काय) विशुद्ध रहें। मेरा शयन भी कर्म निर्जरा व पुण्य का कारण होवे।

अस्नान गुण व चिंतन

सहावादो सरीरं, असुई जल्ल-मल-सेदेहि तहावि।
तस्स सहावं जाणिय, ण अब्भुत्तदि जोगी कया वि॥92॥

जल्ल (मैल), मल व पसीना आदि से शरीर स्वभावतः अपवित्र है। तथापि उस देह का स्वभाव जानकर योगी कदापि स्नान नहीं करते।

सम-संतोसजलेणं, पक्खालेमि सगचेयणं सददं।
वा ण्हामि संजम-सरे, तव-णदीइ झाणसायरम्मि॥93॥

कषायों के निग्रह रूप शम व संतोष के जल से मैं निरंतर अपनी चेतना का प्रक्षालन करता हूँ। अथवा संयम के सरोवर, तप की नदी व ध्यान के समुद्र में मैं स्नान करता हूँ।

अदंतधावनगुण व चिंतन

संसारी णियदंता, घसंति कंतीए चिय पडिदिवसे।
णिरवइक्खा वरं णो, अदंतधवणं सु मूलगुणो॥94॥

संसारी जीव कांति के लिए प्रतिदिन अपने दाँतों को घिसता है, मांजता है। किन्तु निःस्पृह मुनिराज अपने दांतों को नहीं मांजते। यह उनका अदंतधावन नामक मूलगुण है।

जिणधम्मपहावणाइ मम जीवहिदस्स अप्पसंतीए।
भावणा ण देहकंति-विड्ढीए देह-पोसणस्स॥95॥

मेरी भावना देह कांति की वृद्धि या देह के पोषण की नहीं है। मेरी भावना समस्त जीवों के हित, जिनधर्म प्रभावना व आत्मशांति की है।

तव पसादेण सक्कमु, सवरहिदं करिदुं जिणदेवो भो!।
सु धम्मम्मि विज्जमाण-पवंचणं णिल्लूरिदं हं॥96॥

हे जिनेंद्र देव! आपकी कृपा से मैं स्व-पर का हित करने में एवं समीचीन धर्म में विद्यमान प्रपंच (छलादि) को निर्मूल करने में समर्थ होऊँ।

दंतो अत्थिं तम्हा, दंत-धावणं ण विवेग-पदीगो।
हं विवित्तो हिदत्थी, दंत-मज्जणं अवहत्थेमि॥97॥

दाँत हड्डी होते हैं, अत: दाँतों का मांजना विवेक का प्रतीक नहीं है। मैं विवेकी व हितार्थी दंत मंजन का त्याग करता हूँ।

केशलोंच गुण व चिंतन

बे-ते-चउमासे वा उत्तम-मज्झम-जहण्ण-विहीए दु।
उववासेण सह मंसु-केस-लुंचणं च मूलगुणो।।98।।

उत्तम विधि से दो माह, मध्यम से तीन माह व जघन्य से चार माह में उपवास पूर्वक अपनी दाढ़ी-मूंछ व सिर के बालों का लोंच करना मुनियों का केशलोंच नामक मूलगुण है।

कुव्वंति केसलोअं सगसत्ति-वेरग्ग-परिक्खाए य।
समत्तं फुडिदुं मुणी, कत्तरी-आइ-उवेक्खाए।।99।।

अपनी शक्ति व वैराग्य की परीक्षा के लिए एवं कैंची आदि की उपेक्षा से समत्व भाव के प्रकटीकरण के लिए मुनिराज केशलोंच करते हैं।

भो तिलोयणाहो! हं, भावेमि कुव्वंतो केसलोअं।
केसलोअ-णिमित्तं दु, होज्ज मज्झ कम्मं खयेदुं।।100।।

हे तीन लोक के नाथ! केशलोंच करते हुए मैं भावना भाता हूँ कि यह केशलोंच मेरे कर्म क्षय के लिए निमित्त होवे।

पंचमुट्ठिं कुणेदुं, लोअं होमु खमो दु तित्थेसोव्व।
अणंतरं केवली य, णह-केस-विड्ढीए रहिदो।।101।।

हे प्रभु! तीर्थंकर जिनेंद्रदेव के समान मैं पंचमुष्टि केशलोंच करने में समर्थ होऊँ, अनंतर नख-केश की वृद्धि से रहित केवली होऊँ।

तित्थेसेहि पवट्टिद-णिव्वाणमग्गम्मि पवट्टेमि हं।
अहो! मज्झं सरिसो, तिलोएसुं पुण्णवंतो को?।।102।।

तीर्थंकरों के द्वारा प्रवर्तित मोक्षमार्ग पर मैं प्रवर्तन कर रहा हूँ। अहो! तीनों लोकों में मेरे समान पुण्यवान् और कौन हो सकता है? अर्थात् मोक्षमार्ग पर गमन करने वाला सर्वाधिक पुण्यात्मा समझना चाहिए।

चौंतीस उत्तर गुण

चउतीस-उत्तरगुणा, तित्थयरस्स अदिसयोव्व जोगीण।
परपुण्णणिमित्तं सग-कल्लाण-पच्चक्ख-हेदू य॥103॥

जैसे तीर्थंकर के चौंतीस अतिशय होते हैं वैसे ही योगियों के उत्तरगुण भी चौंतीस होते हैं। वे उत्तरगुण परपुण्य के निमित्त एवं स्वकल्याण के प्रत्यक्ष हेतु होते हैं।

बावीस-परिसहजओ, बारसतवो संवर-णिज्जराणं।
कमेणं मोक्ख-हेदू, सोसिदुं भवं मत्तंडोव्व॥104॥

बाईस परीषहजय व बारह तप ये 34 उत्तर गुण जानने चाहिए। ये क्रम से संवर, निर्जरा व मोक्ष के हेतु हैं। संसार रूपी सागर को सुखाने के लिए ये सूर्य के समान हैं।

तप का स्वरूप

इच्छाणिरोहो तवो, इंदियविजयो चित्तणिरोहो अवि।
कम्मकाणणं दहिदुं, सम्मतवो पचंड-अग्गीव॥105॥

इच्छाओं का निरोध, इंद्रियों पर विजय एवं चित्त निरोध को तप जानना चाहिए। कर्म रूपी वन को जलाने के लिए सम्यक् तप प्रचंड अग्नि के समान है।

तप के भेद

दुविह-तवो खओवसमसम्माइट्ठि-महव्वदीण तवो य।
खइय-सम्माइट्ठीण, खइय-सेणि-आरोहगाणं॥106॥

तप दो प्रकार का जानना चाहिए। प्रथम क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि महाव्रतियों का तप एवं द्वितीय क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले क्षायिक सम्यक्दृष्टि मुनिराजों का तप।

परंपराए दु मोक्ख-कारणं खओवसम-महव्वदीण।
खवगाण तवो णियमा, तादु भवादु हि मोक्ख-हेदू॥107॥

क्षयोपशम महाव्रतियों का तप परंपरा से मोक्ष का कारण है। जबकि क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने वाले क्षपकों का तप नियम से उसी भव से मोक्ष का हेतु होता है।

बहिरंतर-भेयादो, तवो बेविहो अण्णावेक्खाए।
अणसणादी बहिरा य, अंतरा पायच्छित्तादी॥108॥

अन्य अपेक्षा से बाह्य व अंतरंग के भेद से तप दो प्रकार का जानना चाहिए। अनशनादि (अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन व कायक्लेश) बाह्य तप हैं एवं प्रायश्चित्तादि (प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग व ध्यान) अंतरंग तप हैं।

बाह्य तप

बहिरंगतवं कयाइ, मिच्छाइट्ठी वि धरिदुं समत्थो।
बहिरिंदियेहिं दिट्ठि-गोयरो तं बहिरंगतवो॥109॥

मिथ्यादृष्टि भी कदाचित् बाह्य तप धारण करने में समर्थ होता है। क्योंकि यह तप बाह्य इंद्रियों के दृष्टिगोचर है इसलिए बहिरंग या बाह्यतप कहलाता है।

अनशन तप व चिंतन

उववासो दु चउव्विह-आहार-उज्झणं णवकोडीए।
तवो बहिरंग-पढमो, रोयविआरविहिणासगो य॥110॥

नवकोटि से चार प्रकार के आहार का त्याग उपवास कहलाता है। रोग, विकार व कर्मों को नाश करने वाला यह उपवास पहला बहिरंग तप है।

खज्ज-सज्ज-लेह-पेय-गहणं कयावि कस्सवि याले णो।
सस्सद-सुद्ध-सहावो, मे सिद्धोव्व अणाहारगो॥111॥

खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय ग्रहण करना किसी भी काल में कदापि मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा शाश्वत शुद्ध स्वभाव सिद्धों के समान अनाहारक है।

ऊनोदर तप व चिंतन

जे के वि णो समत्था, अणसणं करिदुं हीणसत्तीए।
ते करेज्ज णूणुदरं, संवर-णिज्जराण सिवत्थं॥112॥

जो कोई भी शक्ति की हीनता होने से उपवास करने में समर्थ नहीं होते उन्हें संवर, निर्जरा व मोक्ष के लिए ऊनोदर करना चाहिए।

पुण्णुदर-अदण-गहणं, वा ऊणोदरं मे सहावो णो।
लहिदुं ससुद्धसीलं, अब्भासेज्जा तहवि णिच्चं॥113॥

पेट भरके भोजन करना अथवा ऊनोदर करना भी मेरा स्वभाव नहीं है तथापि अपने शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के लिए नित्य अभ्यास करना चाहिए।

कसायविकहाणिद्दा-अक्खविसय-पणया हस्सेज्ज सया।
ऊणोदरेण तम्हा, मोहक्खयेदुं कुणेमि तं॥114॥

कषाय, विकथा, निद्रा, इंद्रिय विषय व प्रणय, ऊनोदर करने से नित्य ह्रासमान होते हैं। इसलिए मोह क्षय के लिए मैं ऊनोदर करता हूँ।

वृत्तिपरिसंख्यान तप व चिंतन

कट्टु मज्जादं गेह-वीहि-रच्छा-गाम-णयरादीणं।
गच्छण-माहारत्थं, सुह-वित्तिपरिसंखाण-तवो॥115॥

घर, गली, मुहल्ला, ग्राम व नगरादि की मर्यादा करके आहार के लिए जाना शुभ वृत्तिपरिसंख्यान तप है।

आहारवत्थूण अण्णदव्वादीण मज्जादं कट्टु।
आहार-ओग्गहणं दु, सुह-वित्ति-परिसंखाण-तवो॥116॥

आहार की वस्तुओं वा अन्य द्रव्यादि की मर्यादा करके आहार ग्रहण करना शुभ वृत्तिपरिसंख्यान तप है।

परत्थादो णिवत्तिं, कट्टु सुद्धप्पे वित्तिं कुणंतो।
अध पवत्ति-मुज्झित्ता, वसेमि सगसुद्धप्परूवे॥117॥

पर वस्तुओं से निवृत्ति करके फिर प्रवृत्ति का त्यागकर शुद्धात्मा में वृत्ति करता हुआ मैं निज शुद्धात्म स्वरूप में निवास करता हूँ।

रसपरित्याग तप व चिंतन

लवण-खीर-तिल्ल-सप्पि-गुड-दहीण छव्विह-रसाण अहवा।
महुरिमाइ-पणविह-रस-उज्झणं रस-परिचागतवो॥118॥

नमक, दुग्ध, तेल, घी, मीठा व दही इन छः प्रकार के रसों का अथवा मीठादि (खट्टा, मीठा, चरपरा, कड़वा, कसायला) पाँच प्रकार के रसों का त्याग करना रसपरित्याग तप कहलाता है।

रसचागेण उहट्टदि, पमादं अदणे आसत्तिभावं।
णीरसभोयणेणं दु, रायदोसो मोहो खयेज्ज॥119॥

रसत्याग से प्रमाद व भोजन में आसक्तिभाव नष्ट होता है। एवं नीरस भोजन से राग-द्वेष व मोह नष्ट होता है।

कुणमि सुद्धप्पझाणं, सत्तीइ कुणंतो रसचागतवं।
सयलकम्मं खयेदुं, अणुभवंतो सुद्धप्परसं॥120॥

समस्त कर्मों के क्षय के लिए शक्ति के अनुसार रसत्याग तप करता हुआ, शुद्धात्म रस का अनुभव करता हुआ मैं शुद्धात्मा का ध्यान करता हूँ।

विविक्त शैय्यासन तप व चिंतन

णिज्जणे कंतारादि-पदेसेसु चेइयालयेसु च।
सुझाणकेंद-देसणा-गेह-सज्झायसालादीसु॥121॥

सव्वत्थादो होच्चा, णिरीहो ठादि सगप्पम्मि जो सो।
पसत्थज्झाणलीणो, विवित्त-सेज्जासण-जुत्तो य॥122॥ (जुम्मं)

जो एकांत में, वनादि प्रदेश, चैत्यालय, ध्यानकेंद्र, देशना गृह व स्वाध्यायशाला आदि में सभी पदार्थों से विरक्त होकर निजात्मा में वास करता है वह प्रशस्त ध्यान में लीन योगी विविक्त शैय्यासन तप से युक्त जानना चाहिए।

अहो जिणो! एगंते, हं अणेगंत-आलंबणं कडुअ।
सगरूवं लहमु करे, गहिय सिआवाय-पदीवं दु॥123॥

हे जिनेन्द्र देव! एकांत में अनेकांत का आलंबन कर निज हाथ में स्याद्वाद रूपी दीपक को ग्रहण कर अपने स्वरूप को प्राप्त करूँ।

कायक्लेश तप व चिंतन

भवतणभोयविरत्तो तिरयणजुदो य धम्मज्झाणरदो।
समत्तेण परिसहमुवसग्गं जयदि कायकिलेसो॥124॥

संसार-शरीर-भोगों से विरक्त, रत्नत्रय से युक्त, धर्मध्यान में रत जो श्रमण समत्वभाव से उपसर्ग व परीषहों को जीतता है वह उनका कायक्लेश तप कहलाता है।

णाणसरीरी वा हं, सम्मत्ताइ-अणंतगुणपिंडो य।
अस्स देहस्स कट्ठं, ण मे रूवो कत्थ वि कयावि॥125॥

मैं ज्ञानशरीरी हूँ अथवा सम्यक्त्वादि अनंत गुणों का पिंड हूँ। इस देह का कष्ट कहीं भी कदापि मेरा स्वभाव नहीं है।

अंतरंग तप

अंतरतवो णियमादु, पहाण-कारणं सगप्पसुद्धीइ।
तेणं विणा णो को वि, होज्ज सुद्धो कयावि भव्वो॥126॥

अंतरंग तप नियम से स्वात्मशुद्धि का प्रधान कारण है। उसके बिना कोई भी भव्य जीव कदापि शुद्ध नहीं होता।

प्रायश्चित्त तप व चिंतन

पायच्छित्तं पढमो, दोस-पक्खालगो चित्त-सोहगो।
पायच्छित्तेण विणा, संभवा णो सगप्पसुद्धी॥127॥

प्रायश्चित्त नामक तप अंतरंग तप में प्रथम है। यह प्रायश्चित्त तप दोषों का प्रक्षालन करने वाला और चित्त का शोधक है। प्रायश्चित्त के बिना स्वात्मशुद्धि संभव नहीं है।

भो वीयरायदेवो! पमाद-अण्णाण-रायभावेहिं।
उप्पण्णदोस-सव्वा, होज्ज मिच्छा जिणभत्तीए॥128॥

हे वीतराग देव! प्रमाद, अज्ञान वा रागभावों से उत्पन्न मेरे सभी दोष जिनभक्ति से मिथ्या होवें।

चित्तसुद्धीए विणा, अप्पं सुज्झिदुं कहं संभवो य।
पायच्छित्तं करेज्ज, साहणं तं चित्तसुद्धीइ॥129॥

चित्त की शुद्धि के बिना आत्मा का शोधन किस प्रकार संभव हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। अतः चित्त की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त व निर्मल साधना करनी चाहिए।

विनय तप व चिंतन

दंसण-णाण-चरिय-तव-उवयारा तह पंचविहो विणयो।
तेहिं जुद-धम्मी पडि, णम्मवित्ती चिय विणयतवो॥130॥

दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप व उपचार के भेद से विनय पाँच प्रकार की जाननी चाहिए। इन गुणों से युक्त धर्मियों के प्रति नम्रवृत्ति ही विनय तप है।

माणो धम्मदाहगो, गुण-णासगो अप्पगुणघादगो य।
झाण-विराहगो तहा, जम-तव-मारगो णियमादो॥131॥

मान वा अहंकार नियम से धर्म को जलाने वाला, गुणों को नाश करने वाला, आत्म गुणों को घातने वाला, ध्यान की विराधना करने वाला एवं यम व तप को नष्ट करने वाला होता है।

भो गददोसो देवो! णो वक्कमेज्ज माणो मे चित्ते।
विणयभावो हि सददं, मम विसुद्धचित्तभूमीए॥132॥

हे दोषरहित जिनदेव! मेरे चित्त में कभी मान उत्पन्न न हो। मेरे विशुद्ध चित्त की भूमि पर निरंतर विनयभाव ही रहे।

वैय्यावृत्ति तप व चिंतन

वेज्जावच्चं सुधम्म-साहणाइ वाहग-कारण-हरणं।
मोक्खमग्गे वड्ढंत-आइरिय-पाढग-साहूणं॥133॥

मोक्षमार्ग पर बढ़ते हुए आचार्य, उपाध्याय व साधुओं की धर्मसाधना में आने वाले बाधक कारणों का परिहार करना वैय्यावृत्ति तप है।

गमणागमण-सज्झाय-तवादीहि उप्पण्ण-समं खेदं।
परिहरिदु-मब्भंगणं, वेज्जावच्चं दु विण्णेयं॥134॥

गमनागमन, स्वाध्याय व तपादि से उत्पन्न श्रम वा खेद के परिहार के लिए तैलादि से मर्दन करना वैय्यावृत्ति जानना चाहिए।

जावदु ण होमु लीणो, णिव्विअप्प-झाणे भो जिणदेवो!
तावदु रदो णिग्गंथ-साहु-चरणसेवाए सया॥135॥

हे जिनेन्द्र देव ! जब तक मैं निर्विकल्प ध्यान में लीन न होऊँ तब तक सदा निर्ग्रन्थ साधुओं की चरणसेवा में रत रहूँ।

वेज्जावच्चं सक्कं, तरणीव णित्थारिदुं भवुदहीदु।
तेण विणा णो लहीअ, लहदि लहिस्सेदि णिव्वाणं॥136॥

संसार से पार करने के लिए वैय्यावृत्ति नौका के समान समर्थ है। उस वैय्यावृत्ति के बिना न तो किसी ने निर्वाण प्राप्त किया है, न करता है और न करेगा।

स्वाध्याय तप व चिंतन

सगप्पहिदाय णिच्चं, जिणिंदपणीदागम-गंथाणं च।
वायणाइ-पणविहेण, सम्मज्झयणं दु सज्झाओ।।137।।

स्वात्महित के लिए जिनेन्द्र प्रणीत आगम ग्रंथों की वाचना आदि पाँच प्रकार से सम्यक् अध्ययन करना स्वाध्याय है।

पढमं करणं चरणं दव्वं तहा चदुविहं अणुजोगं।
आयाराइ-भेयादु, बारसविह-जिणागमो जाण।।138।।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग—ये चार प्रकार के अनुयोग जानने चाहिए। आचारांगादि के भेद से जिनागम बारह प्रकार का जानना चाहिए।

वायणा-पिच्छणा-अणुवेक्खामणाय-धम्मुवएसेहिं।
अज्झयण-मज्झावणं, हिद-पाहण्णेण सज्झाओ।।139।।

हित की प्रधानता से वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय व धर्मोपदेश से अध्ययन-अध्यापन करना स्वाध्याय है।

जिणसमये णिद्दिट्ठा, विसुद्धसंहिदा हु जिणसासणस्स।
तस्स णाण-मसंभवो, सज्झायं विणा तं करेज्ज।।140।।

जिनागम में जिनशासन की विशुद्ध संहिता कही गई है। स्वाध्याय के बिना उसका ज्ञान असंभव है इसलिए स्वाध्याय करना चाहिए।

णाणं विणा ण झाणं, गुण-पगासणा अप्पट्ठिदी णेव।
तं सगसत्तीए हं, धरेमि सण्णाणं झाणं च।।141।।

ज्ञान के बिना ध्यान, गुणों का प्रकटीकरण व आत्मस्थिति नहीं होती। अतः अपनी शक्ति के अनुसार सम्यग्ज्ञान व ध्यान धारण करता हूँ।

कायोत्सर्ग तप व चिंतन

ममत्त-भावं विहाय, देहादो चित्त-पणिही धम्मम्मि।
काउस्सग्गो समये, णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहिं।।142।।

देह से ममत्व भाव को छोड़कर धर्म में चित्त की एकाग्रता ही जिनागम में जिनवरेंद्रों के द्वारा कायोत्सर्ग निर्दिष्ट किया गया है।

सायरोव्व गंभीरो, मेरुव्व धीरो णाणपयासी य।
ठिदी होज्ज स-सरूवे, अप्पस्स काउस्सग्गो सो।।143।।

सागर के समान गंभीर, मेरु के समान धीर, ज्ञानप्रकाशी आत्मा जब अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है, वह कायोत्सर्ग कहलाता है।

भो भयवदो! भावेमि, णिव्विअप्प-झाणे ठादु-मसक्को।
तो तच्चचिंतण-जुत्त-काउस्सग्गे चिरं लीणो।।144।।

हे भगवन्! मैं भावना भाता हूँ कि यदि निर्विकल्प ध्यान में मैं ठहरने में अशक्य होऊँ तो तत्त्वचिंतन से युक्त कायोत्सर्ग में चिरकाल तक लीन रहूँ।

काउस्सग्गेण असुह-संवरो णिज्जरा पुव्वबद्धाण।
वरपुण्णबंधस्स सिव-हेदू य काउस्सग्ग-तवो।।145।।

कायोत्सर्ग से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों का संवर व निर्जरा होती है। यह कायोत्सर्ग तप उत्कृष्ट पुण्य बंध व मोक्ष का हेतु है।

काउस्सग्गम्मि ठिदा, जदी दिस्संति भयवदोव्व णियमा।
काउस्सग्गेण विणा, परमेट्ठि-सरूव-मसंभवो।।146।।

कायोत्सर्ग में स्थित यति नियम से भगवान् के समान दिखाई देते हैं। कायोत्सर्ग के बिना परमेष्ठी का स्वरूप असंभव है।

सव्वविह-वत्त-हेदू, अण्णाण-णासगो काउस्सग्गो।
चित्तसंति-कारणं च, सण्णाण-संजम-वड्ढगो दु॥147॥

कायोत्सर्ग सभी प्रकार के आरोग्य का हेतु, अज्ञान का का नाशक, चित्त शांति का कारण एवं सम्यग्ज्ञान व संयम का वर्द्धक है।

काउस्सग्गो णेयो, सव्वतवेसुं चिय आणपाणोव्व।
तेण विणा णहि झाणं, तं विणा सिवो संभवो णो॥148॥

कायोत्सर्ग सभी तपों में श्वासोच्छ्वास के समान जानना चाहिए। उसके बिना ध्यान और ध्यान के बिना मोक्ष संभव नहीं है।

झाणरुक्खुप्पत्ति-ठिदि-विड्ढीणं बीअं काउस्सग्गो।
तेण विणा सज्झाणं, णो जलं विणा कूवादीव॥149॥

कायोत्सर्ग ध्यानरूपी वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति व वृद्धि का बीज है। जिस प्रकार जल के बिना कूप आदि नहीं होते हैं उसी प्रकार कायोत्सर्ग के बिना सद्ध्यान भी नहीं होता है

कम्माणल-संतीए, काउसग्गो सघणमेहवरिसा।
जेणं कम्मकलंगं, खयित्ता फुडदि णिम्मलप्पा॥150॥

कर्म रूपी अग्नि की शांति के लिए कायोत्सर्ग सघन मेघवृष्टि के समान है। जिससे कर्मकालिमा नष्ट होकर निर्मलात्मा प्रकट होती है।

ध्यान तप व चिंतन

उत्तमसंहणण-जुत्त-जोगीहि णियचित्तेगग्गकरणं।
उत्तमझाणं णेयं, चित्तखोह-परिचागरूवं॥151॥

उत्तम संहनन से युक्त योगियों के द्वारा अपने चित्त का एकाग्र करना, चित्त के क्षोभ के परित्याग रूप उत्तम ध्यान जानना चाहिए।

महादावग्गि-झाणं, अंतोमुहुत्ते कम्मक्खयेदुं।
सक्कं झाणं लहिदुं, तं कुव्वंति जदणं जोगी॥152॥

महादावाग्नि के समान ध्यान अंतर्मुहूर्त में कर्मक्षय करने में समर्थ है अतः ध्यान प्राप्त करने के लिए योगी यत्न करते हैं।

झाणं वरपुरिसट्ठो, पप्पोदु-मप्पगुणं महाधम्मं।
झाणं सिद्ध-मित्तं च, अरिह-सहोयरो मुणि-पाणं॥153॥

आत्म गुणों को प्राप्त करने के लिए ध्यान श्रेष्ठ पुरुषार्थ है, ध्यान महाधर्म है। ध्यान सिद्धों का मित्र, अरिहंतों का सहोदर व मुनियों का प्राण है।

धम्मसुक्कज्झाणं च, वत्तं सया मम अप्पपदेसेसु।
ण इदं णिदाण-कंखा, भव-खयस्स भावणा मेत्तं॥154॥

हे प्रभु! मेरे आत्मप्रदेशों में धर्मध्यान व शुक्लध्यान सदैव व्याप्त रहे। यह मेरी निदान या आकांक्षा नहीं अपितु संसार क्षय के लिए भावना मात्र है।

झाणं मोक्खं देदुं, सक्कं पत्तेयखेत्तयालेसुं।
तं भावेमि पलीदुं, उक्किट्ठ-झाणे पडिसमये॥155॥

प्रत्येक क्षेत्र व काल में ध्यान मोक्ष देने में शक्य है। अतः मैं प्रतिसमय उत्कृष्ट ध्यान में लीन होने की भावना भाता हूँ।

क्षुधा परीषहजय व चिंतन

उववासंतरायादु, रायादीदु उप्पण्णवेयणाइ।
सहणं समभावेहिं, छुहा-परीसह-जयो णेयो॥156॥

उपवास, अंतराय वा रागादि से उत्पन्न वेदना को समान भाव से सहन करना क्षुधा परीषहजय जानना चाहिए।

छुहा णो मे सहावो, अप्पस्स ण तुट्ठि-कारगं अदणं।
संतुट्ठि-कारगं सय, लीणत्तं णियप्पसहावे॥157॥

क्षुधा मेरा स्वभाव नहीं है। भोजन आत्मा को संतुष्टि प्रदान नहीं करता। निजात्म स्वभाव में लीनता ही आत्मा के लिए सदैव संतुष्टि देने वाली है।

तृषा परीषहजय व चिंतन

उण्ह-जरंतरायादु, सुक्कम्मि कंठम्मि वेयणाइ अवि।
णेव णीर-कंखणं दु, तिसा-परीसह-जयो णेयो॥158॥

गर्मी, ज्वर वा अंतराय से कंठ के शुष्क होने पर वेदना होने पर जल की आकांक्षा नहीं करना तृषा परीषहजय जानना चाहिए।

तिव्वतिसावेयणाइ, जलाइ-सीयलत्थ-गहण-विअप्पं।
उज्झित्ता अणुभवेज्ज, अज्झप्प-रस-सीयलत्तं हु॥159॥

तीव्र तृषा की वेदना से जलादि शीतल पदार्थों के ग्रहण का विकल्प त्यागकर अध्यात्म रस की शीतलता का अनुभव करना चाहिए।

शीत परीषहजय व चिंतन

रोयम्मि सत्ति-खीणे, सीदं दुहावेदि सीदयालम्मि।
कंखदि तस्स णिवत्तिं, णेव सीद-परीसह-जयी दु॥160॥

रोग में वा शक्ति क्षीण होने पर शीतकाल में शीत (सर्दी) दुःख देती है। जो उस शीत की निवृत्ति की आकांक्षा नहीं करता वह शीत परीषहजयी जानना चाहिए।

सीदवेयणा देहं, कट्ठं देदुं समत्था किण्णु हं।
देहरहिदो णाणाइ-गुणजुदो अमुत्तिगो णिच्चो॥161॥

शीत वेदना इस शरीर को कष्ट देने में समर्थ है किन्तु मैं देह रहित, ज्ञानादि गुणों से युक्त, अमूर्तिक वा नित्य हूँ।

ऊष्ण परीषहजय व चिंतन

सीदत्था णो कंखदि, तिव्व-उण्हयालम्मि जदी जो सो।
अप्पसरूवं इच्छदि, उण्हपरीसहजयी णेयो॥162॥

जो यति तीव्र ऊष्णकाल में भी शीतल पदार्थों की आकांक्षा नहीं करते, आत्मस्वरूप की ही आकांक्षा करते हैं वे ऊष्ण परीषहजयी जानने चाहिए।

उण्ह-वेयणा देहे, संतावं उप्पज्जिदुं समत्था।
खयेमि उण्हत्त-दुहं, णाण-झाण-सीयलत्तेणं॥163॥

ऊष्ण वेदना देह में संताप उत्पन्न करने में समर्थ है। ज्ञान व ध्यान की शीतलता से मैं ऊष्णता के दुःख का क्षय करता हूँ।

दंसमसक परीषहजय व चिंतन

कीडादीण दंसणं, मुणिं दुहावेदि दु सव्वदा किण्णु।
देहरक्खं ण कंखदि, तस्स दंसमसग-जयो जाण॥164॥

चींटी, डांस, मच्छरादि कीटों का काटना मुनि को सर्वदा दुःख देता है किन्तु मुनिराज देह की रक्षा की आकांक्षा नहीं करते वह उनका दंसमसक परीषहजय जानना चाहिए।

डंसिदुं मज्झ देहं, समत्था डंस-मंकणाइ-जंतू॥
णवरि णाणरूवो हं, तं डंसिदुं ण सक्को को वि॥165॥

डाँस, खटमल आदि जंतु मेरे शरीर को डसने में समर्थ हैं, किन्तु मैं ज्ञान स्वरूप हूँ और उस ज्ञान स्वरूपी आत्मा को डसने में कोई भी समर्थ नहीं है।

नग्न परीषहजय व चिंतन

जहाजाद-णिग्गंथो, बालोव्व अवियारि-मुणी कंखदि ण।
वत्थाणि विसय-विरदो, णग्गो परीसह-जयो जाण।।166।।

विषयों से विरक्त बालक के समान यथाजात निर्ग्रन्थ, अविकारी मुनिराज वस्त्रों की आकांक्षा नहीं करते वह उनका नग्न परीषहजय जानना चाहिए।

बज्झ-णिगिणिण-सहिदा य, तिरिया णेरइया सव्वा हु किण्णु।
कम्मक्खय-हेदू णो, खलु मेत्तं बज्झ-णग्गत्तं।।167।।

सभी तिर्यंच व नारकी बाह्य नग्नता से सहित हैं किन्तु मात्र बाह्य नग्नता कर्मक्षय का हेतु कभी नहीं होती।

अरति-रति-परीषहजय व चिंतन

णेव अरदी संजमे, णेव रदी असंजमे मुणिवरस्स।
कम्मणासगो णिच्चं, अरदि-रदी-परीसह-जओ हु।।168।।

मुनिराज की संयम में अरति व असंयम में रति नहीं होना उनके नित्य कर्मों का नाश करने वाला अरति-रति परीषहजय जानना चाहिए।

वट्टंत-पदत्थेसुं, सग-सग-सहावम्मि पकुव्वेमु किं।
रदि-अरदि-आइ-भावं, सगसीलादो चुइत्ता हं।।169।।

अपने-अपने स्वभाव में वर्तना करने वाले पदार्थों में अपने स्वभाव से च्युत होकर मुझे रति-अरति भाव क्यों करने चाहिए ? अर्थात् अन्य परपदार्थों में राग-द्वेष करना व्यर्थ है।

स्त्री परीषहजय व चिंतन

रायुप्पण्ण-कुभावा, इत्थीसुं सव्वदा जदी जयदे।
थी-भोयं णो कंखदि, थी-परीसह-जयी जो सो दु॥170॥

यतिराज स्त्रियों में रागोत्पन्न कुभावों को सदा जीतते हैं। जो स्त्री-भोग की आकांक्षा नहीं करता वह स्त्री परीषह जयी जानना चाहिए।

चरियमोहोदयादो, थी-परिसहो दुह-हेदू पमत्ते।
अप्पा वेदरहिदो दु, चुइदुं मिमं त्थी णो सक्का॥171॥

प्रमत्तावस्था में चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से स्त्री परीषह दुःख का हेतु है। यह आत्मा वेद से रहित है। मुझे स्वभाव से च्युत करने में कोई स्त्री समर्थ नहीं है।

चर्या-निषद्या-शैय्या परीषहजय व चिंतन

रोयखेदेहि वि जुदे, पादेहि रिक्खंति जावज्जीवं।
ताणं च मुणिवराणं, चरिया-परीसह-जओ जाण॥172॥

रोग व खेद से युक्त होने पर भी मुनिराज आजीवन नंगे पैर ही चलते हैं वह उन मुनिराजों का चर्या परीषहजय जानना चाहिए।

णिज्जणेगंत-ठाणे, अच्छणं च सुहजोग-साहणाए।
पोम्मासण-पहुदीहिं, णिसज्जा-परीसह-जओ चिय॥173॥

शुभ योग साधना के लिए पद्मासन आदि से निर्जन एकांत स्थान में बैठना मुनियों का निषद्या परीषहजय जानना चाहिए।

सेज्जाइ-णिमित्तेणं, कुव्वंतो धम्म-साहणं सहणं।
उप्पण्ण-कट्ठ-दुहाण, सेज्जा-परीसह-जओ जाण॥174॥

धर्म साधना करते हुए शैय्यादि के निमित्त से उत्पन्न कष्ट व दु:खों को सहना शैय्या परीषहजय जानना चाहिए।

णेव दु अप्पसहावो, चरिया णिसज्जा सेज्जा य कयाइ।
हवंतो सगप्परदो, ण अणुभवेमि परीसहं हं।।175।।

चर्या, निषद्या व शैय्या कदाचित् भी आत्मा का स्वभाव नहीं है। मैं निजात्मा में रत होता हुआ परीषहों का अनुभव नहीं करता हूँ।

क्रोध परीषहजय व चिंतन

दुट्ठाण सद्द-भावा, कोहुप्पत्तीइ कारणं जोगी।
खमंते समत्तेणं, कोह-परीसह-जयी जे ते।।176।।

दुष्टजनों के शब्द व भाव क्रोध की उत्पत्ति के कारण होते हैं। जो योगी समत्व भाव से उन्हें क्षमा करते हैं वे क्रोध परीषहजयी कहलाते हैं।

वध परीषहजय व चिंतन

वहाइ-बहु-दुक्खेसुं, पत्तेसु दुट्ठेहि समभावेहिं।
सहंति जे समणा ते, वह-परीसह-विजयी णेया।।177।।

दुष्टों के द्वारा वधादि बहुत दु:खों के प्राप्त होने पर भी जो श्रमण समभावों से उन्हें सहन करते हैं उन्हें वध परीषह-जयी जानना चाहिए।

बंधण-छेदण-मारण-आदीहि दूहवदि देहं दुट्ठो।
हणिदु-मप्पं ण सक्को, खमाइभावजुद-णिच्चो हं।।178।।

बंधन, छेदन, मारण आदि से दुष्टजन देह को दु:ख देते हैं। किन्तु वह मेरी आत्मा का हनन करने में समर्थ नहीं है। मैं क्षमा आदि भावों से युक्त व नित्य (शाश्वत) हूँ।

याचना-अलाभ-परीषहजय व चिंतन

छुआ-रोय-दुक्खेहिं, पाणे कंठगदे वि जायणं णो।
खलु जायणया-परिसह-जओ णेयो तच्चणाणीहि ॥179॥

क्षुधा वा रोगादि के दु:खों से प्राणों के कंठ में आ जाने पर भी याचना नहीं करना तत्त्वज्ञानियों के द्वारा सदा याचना-परीषहजय जानना चाहिए।

अंतराय-उदयादो, णो कयाइ लाहे पत्ते जोगी।
लाहं कंखंति ताण, ण अलाह-परीसह-जयो सो॥180॥

अंतराय कर्म के उदय से लाभ प्राप्त नहीं होने पर योगी कदापि लाभ की आकांक्षा नहीं करते वह उनका अलाभ परीषहजय जानना चाहिए।

जायणया-भावम्मि य, अलाहे वा विचिंतेज्जा साहू।
अकिंचणाइ-धम्मं च, सुद्धरूवं सिद्धोव्व गुणं॥181॥

याचना का भाव होने पर या अलाभ होने पर साधु अपने अकिंचनादि धर्म, शुद्ध स्वरूप व सिद्धों के समान निजात्म गुणों का चिंतन करते हैं।

रोग परीषहजय व चिंतन

उदयादो दु असादा-वेयणिज्जस्स देहो रोयजुदो।
तदा वि समत्तभावं, धरंति रोय-परीसह-जयी॥182॥

असातावेदनीय कर्म के उदय से शरीर में रोग होता है। किन्तु रोग परीषहजयी मुनिराज तब भी समत्व भाव धारण करते हैं।

रोओ खयदि सरीरं, जदि धारेमि हं समत्तं चित्ते।
तो कम्मक्खय-हेदू, जेण ण लहिस्सामि दुहं पुण॥183॥

रोग तो शरीर को नष्ट करता है। यदि मैं चित्त में समत्व भाव धारण करता हूँ तो वह कर्मक्षय का हेतु है जिससे मैं आगे पुनः दुःख प्राप्त नहीं करूँगा।

तृणस्पर्श परीषहजय व चिंतन

तिण-कंटग-फासेणं, परतप्पंतो अवि णेव कंखेदि।
तस्स णिवत्तिं जोगी, तिणफासपरीसह-विजयी दु॥184॥

तृण, कंटकादि के स्पर्श से दुःखी होते हुए भी योगी उसकी निवृत्ति की आकांक्षा नहीं करते, वे तृणस्पर्श परीषहजयी जानने चाहिए।

गमणागमणे सक्का, तिणकंडगादी दायिदुं दुक्खं।
तम्हा अप्पम्मि थिरो, अप्पविहारो मज्झ सीलं॥185॥

गमनागमन में तृण-कंटकादि दुःख देने में समर्थ हैं, इसलिए मैं आत्मा में स्थिर होता हूँ। आत्मा में विहार करना ही मेरा स्वभाव है।

मलपरीषहजय व चिंतन

मलेण असुइ-देहम्मि, सेदेणं च गहिदं जल्ल-रजाण।
कंडु-आइ-वेयणं च, जदी मलपरिसहजयी जयदि॥186॥

जो यति मल से अपवित्र देह में स्वेद (पसीना) से ग्रहण किए गए धूलकण, जल्ल (मैल), खुजली आदि की वेदना को जीतते हैं वे मल परीषहजयी कहलाते हैं।

जल्लं मलं सरीरे, रोस-कट्ठ-खेद-वेयणा-जणगं।
जदा देहो ण मज्झं, तदा मलादी ण दुह-हेदू॥187॥

जल्ल (मैल) व मल शरीर में रोष, कष्ट, खेद व वेदना को उत्पन्न करता है। जब देह मेरी नहीं है तब मलादि भी मेरे लिए दुःख के हेतु नहीं हैं।

सेद-धूलकणादीहि, जणिद-जल्लं मलं पस्सिय मणेदि।
भूसण-रूवं बहु-अघ-हारगं कट्ठकारगं णो॥188॥

पसीना व धूलकणादि से उत्पन्न मैल व मल को देखकर योगी उसे बहुत पापों के नाशक आभूषणस्वरूप मानते हैं। वह उसे कष्टकारक अनुभव नहीं करते।

सत्कारपुरस्कार परीषहजय व चिंतन

णो किंचिवि कंखेदि हु, जदी सक्कारं पुरक्कारं वा।
जोग्गम्मि अवि सक्कार-पुरक्कार-परीसह-जयी दु॥189॥

यतिराज योग्य होने पर भी किंचित् भी सत्कार व पुरस्कार की आकांक्षा नहीं करते अतः वे सत्कार-पुरस्कार परीषहजयी कहलाते हैं।

सक्कार-पुरक्कारं, अप्पसहावचुदो कंखदि जीवो।
मे पदिट्ठा अप्पम्मि, तदो थिरो सगप्पम्मि अहं॥190॥

आत्मस्वभाव से च्युत जीव सत्कार-पुरस्कार की आकांक्षा करते हैं। मेरी प्रतिष्ठा मेरी आत्मा में है अतः मैं निजात्मा में स्थिर होता हूँ।

प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शन
परीषहजय व चिंतन

विसिट्ठ-णाण-संजुदे, णाणा-विज्जा-सुकला-संजुत्ते।
अहंकारं णो कुणदि, पण्णा-परिसह-जयी णेयो॥191॥

विशिष्ट ज्ञान से संयुक्त होने पर, नाना विद्या व सुकलाओं से युक्त होने पर भी मुनिराज अहंकार नहीं करते, अतः वे प्रज्ञा परीषहजयी जानने चाहिए।

अज्झयणे चिंतणे वि, अहोरत्तीइ णाणे लद्धे णो।
किलिसेदि ण समणो जो, अण्णाण-परीसह-जयी सो॥192॥

दिन-रात अध्ययन व चिंतन करने पर भी ज्ञान प्राप्त नहीं होने पर जो श्रमण दुःखी नहीं होता वह अज्ञान परीषहजयी जानना चाहिए।

उग्गतवं कुव्वंतो, इड्ढीसुं पत्तीसुं णो मुणीण।
असद्धाण-भावो णो, अदंसणपरिसहजयो तस्स॥193॥

उग्रतप करते हुए भी ऋद्धियों के प्राप्त नहीं होने पर अश्रद्धान का भाव नहीं होना उनका अदर्शन परीषहजय जानना चाहिए।

णाणावरणाइ-विही, ण मे सील-मणंतणाणमयो हं।
ण मे दुक्ख-हेदू तं, अण्णाण-मदंसणं पण्णा॥194॥

ज्ञानावरणादि कर्म मेरा स्वभाव नहीं हैं। मैं अनंत ज्ञानमय हूँ। अतः अज्ञान, अदर्शन व प्रज्ञा परीषह मेरे लिए दुःख का कारण नहीं हैं।

पज्जट्ठिय-णयेणं दु, हवेज्जा अथिरा य दव्वा सव्वा।
दव्वट्ठिय-णयेणं दु, णिच्च-सस्सदा सव्व-दव्वा॥195॥

पर्यायार्थिक नय से सभी द्रव्य अनित्य होते हैं। द्रव्यार्थिक नय से सभी द्रव्य नित्य व शाश्वत होते हैं।

जे के वि भव्व-जीवा, मेत्तं पज्जट्ठिय-णयावलंबी।
बहिरा जिणसमयादो, उहयणयं आलंबेमि तं॥196॥

जो कोई भी भव्यजीव मात्र पर्यायार्थिक नय का आलंबन लेने वाले हैं वे जिनशासन से बाह्य हैं अतः मैं दोनों (द्रव्यार्थिक व पर्यायार्थिक) नयों का आलंबन लेता हूँ।

अनित्यानुप्रेक्षा चिंतन

अप्पा णिच्चाणिच्चा, दव्व-पज्जय-णयेणं विचिंतेमि।
चेयणाइ सुद्धगुणा, पागडिदु-मणिच्चाणुवेक्खं॥197॥

द्रव्यार्थिक नय से आत्मा नित्य है और पर्यायार्थिक नय से आत्मा अनित्य है। चेतना के शुद्ध गुणों को प्रकट करने के लिए मैं अनित्यानुप्रेक्षा का चिंतन करता हूँ।

अशरणानुप्रेक्षा चिंतन

लोए ण को वि सरणो, ववहारेण पणगुरू जिणधम्मो।
णिच्छयेण सुद्धप्पा, तं गच्छामि सरणं ताणं।।198।।

लोक में कोई भी शरण नहीं है। व्यवहार से पंचगुरु व जिनधर्म शरण है और निश्चय से शुद्धात्मा शरण है। अतः मैं उन्हीं की शरण में जाता हूँ।

संसारानुप्रेक्षा चिंतन

संसारे णो किंचिवि, सुहं मुत्तोव्व तम्हा तं लहिदुं।
चउगदिभमणं खयिदुं, संसाररूवं दु चिंतेमि।।199।।

संसार में मुक्त सिद्ध जीव के समान किंचित् भी सुख नहीं है। अतः उस सुख की प्राप्ति व चतुर्गति भ्रमण के क्षय के लिए मैं संसार के स्वरूप का चिंतन करता हूँ।

एकत्वानुप्रेक्षा चिंतन

एक्को हि जीवदि मरदि, अज्जदि पुण्णं पावं अणादीदु।
दिवे णिरये तिरिच्छे, जादि वा भोयकम्ममहीसु।।200।।

जीव अनादिकाल से अकेला ही प्राण धारण करता है, अकेला ही मरता है, वह अकेला ही पुण्य व पाप अर्जित करता है और अकेला ही स्वर्ग, नरक, तिर्यंच, भोगभूमि वा कर्मभूमि में जन्म लेता है।

एक्को सम्मजदणेण, सव्वकम्मं खयिय पावदि मोक्खं।
एक्को मिच्छत्तेण, णिगोदाइं दुरावत्थं दु॥201॥

जीव अकेला ही मिथ्यात्व के वशीभूत होकर निगोदादि दुरावस्था को प्राप्त करता है एवं सम्यक् यत्नपूर्वक सर्व कर्म का क्षय कर मोक्ष को प्राप्त करता है।

णेव को वि मे बंधू, वा सत्तू ण दायगो हारगो ण।
अज्जिद-सगकम्मफलं, सुहासुहं भुंजेमि एक्को॥202॥

मेरा न कोई मित्र है और न कोई शत्रु। न कोई मुझे कुछ देने वाला है और न कोई कुछ लेने वाला है। अपने द्वारा अर्जित शुभाशुभ कर्मों का फल मैं स्वयं ही भोगता हूँ।

सम्मपुरिसट्ठं कुणमु, मोक्खमग्गं च गच्छेदुं तम्हा।
जदणेण विणा ण खयदि, भवभमणं मेत्तं भग्गेण॥203॥

अतः मोक्षमार्ग पर चलने के लिए मैं सम्यक्-पुरुषार्थ करता हूँ। क्योंकि यत्न के बिना मात्र भाग्य से संसार परिभ्रमण का क्षय नहीं होता।

अन्यत्वानुप्रेक्षा चिंतन

मे अप्पादो सव्वं, दव्वं पुधं हु सव्वदा सव्वत्थ।
सगसुद्ध-रूवं विणा, ण परवत्थु-भाव-पइडी मे॥204॥

मेरी आत्मा से सर्वत्र व सर्वदा सभी द्रव्य पृथक् हैं। अपने शुद्ध स्वरूप के बिना परवस्तु, परभाव व परप्रकृति मेरी नहीं है।

अप्पादो भिण्णा तणु-सजण-परिजण-पुरजणा रिउ-बंधू।
वाहणं सेवगा वा, रज्जं धण-धण्ण-विहवादी॥205॥

देह, स्वजन, परिजन, पुरजन, शत्रु, बंधु, वाहन, सेवक, राज्य, धन, धान्य अथवा वैभव आदि ये सभी आत्मा से भिन्न हैं।

सगसुद्धसरूवं जो, चिंतदि पुधं सव्वण्ण-दव्वादो।
सो भव्वो हि समत्थो, णिल्लूरेदुं भवरुक्खं च॥206॥

जो भव्य जीव सभी अन्य द्रव्यों से पृथक अपने शुद्ध स्वरूप का चिंतन करता है वह संसार रूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ने में समर्थ है।

अशुचि अनुप्रेक्षा चिंतन

पुरीसाइ-पिंडोव्व दु, अपवित्त-देहो इमो सहावादु।
मलघडम्मि सुई कहं, अप्पसुद्धी देहसुद्धीइ॥207॥

यह देह स्वभाव से ही मलादि के पिंड के समान अपवित्र है। उचित ही है मल के घड़े में पवित्रता कैसे हो सकती है? अर्थात् मल से परिपूरित मल घड़े के समान इस शरीर में पवित्रता वा निर्मलता कभी नहीं हो सकती। ऐसे शरीर की शुद्धि से आत्मा की शुद्धि कैसे हो सकती है? कभी नहीं हो सकती।

लोए सुई-पदत्था, होज्ज अपवित्ता देहफासेणं।
तम्मि रदिकरणं किं ण, दुहदं चेट्ठा व्व मूढाणं॥208॥

लोक में पवित्र पदार्थ भी देह के स्पर्श से अपवित्र हो जाते हैं। ऐसे उस शरीर में रति करना क्या मूर्खों की चेष्टा के समान दुःखद नहीं है अर्थात् अवश्य दुःखद है।

सेट्ठ-तव-झाण-करणं, लहिय रयणत्तयं हु देह-सारो।
णेव संजम-विरहिदा, संसणीया अप्पघादीव॥209॥

रत्नत्रय को प्राप्त कर श्रेष्ठ तप व ध्यान करना ही इस मनुष्य देह का सार है। संयम से रहित मनुष्य आत्मघातक के समान प्रशंसनीय नहीं होते।

आस्रवानुप्रेक्षा चिंतन

मिच्छत्त-कसायजोग-अविरदिपमादेहि आसवो होज्ज।
ताण णिरोहोवायं, चिंतदु भवकारणं जम्हा।।210।।

मिथ्यात्व, कषाय, योग, अविरति व प्रमाद से आस्रव होता है। क्योंकि ये सभी संसार के कारण हैं इसलिए इनके निरोध के उपाय का चिंतन करना चाहिए।

संवरानुप्रेक्षा चिंतन

वदसमिदिंदियरोहो, गुत्ती-परीसहजयावसिय-तवा।
चरिय-धम्माणुवेक्खा, संवर-हेदू सिव-णिमित्तं।।211।।

व्रत, समिति, इंद्रियनिरोध, गुप्ति, परिषहजय, आवश्यक, तप, चारित्र, धर्म व अनुप्रेक्षा संवर के हेतु और मोक्ष के निमित्त हैं।

निर्जरानुप्रेक्षा चिंतन

पुव्वबद्धकम्माणं, इगदेस-सडणं णिज्जरा दुविहा।
समये चिय सविवागी, समयपुव्वम्मि अविवागी य।।212।।

पूर्वबद्ध कर्मों का एकदेश झरना निर्जरा है। वह निर्जरा सविपाकी और अविपाकी के भेद से दो प्रकार की है। अपने समय पर कर्मों का झरना सविपाकी निर्जरा और समय के पूर्व कर्मों का एकदेश झरना अविपाकी निर्जरा है।

अविवागी णिज्जरा दु, णियमा णिव्वाण-कारणं णेया।
उण्हत्तं व अग्गिणा, उवकसदि सिवं अविवागीइ।।213।।

अविपाकी निर्जरा नियम से मोक्ष की कारण जाननी चाहिए। जैसे अग्नि से ऊष्णता प्राप्त होती है वैसे ही अविपाकी निर्जरा से मोक्ष प्राप्त होता है।

लोकानुप्रेक्षा चिंतन

संसारी णियमादो, भमदि मिच्छत्तवसेण संसारे।
कम्मं च विच्छिदेदुं, चिंतेज्जा लोय-संठाणं॥214॥

संसारी जीव मिथ्यात्व के वशीभूत होकर नियम से संसार में परिभ्रमण करता है। कर्म विच्छेद के लिए लोक-संस्थान का चिंतन करना चाहिए।

बोधि-दुर्लभानुप्रेक्षा चिंतन

बोही मोक्ख-कारणं, कम्मविणासगा अप्पसोहगा य।
तं मुत्ति-सहिं विणा ण, सिद्धी घणं विणा विट्ठीव॥215॥

बोधि (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र) कर्म विनाशक, आत्मशोधक व मोक्ष का कारण है। बोधि मुक्ति की सखी है। उस बोधि के बिना सिद्धि अर्थात् स्वात्मोपलब्धि वैसे ही नहीं होती जैसे मेघ के बिना वृष्टि।

णिगोदादो थावरो, तादो बे-ते-चउ-पंचिंदिया य।
तत्तो सण्णी मणुजो, तादु उत्तम-देहो देसो॥216॥

उत्तम-जादी कुलो य, दिग्घाऊ सेट्ठधी सुसंगदी य।
सुभावा देसव्वदं, णिगामदुल्लहा कमेणं दु॥217॥ [जुम्मं]

निगोद से स्थावर व स्थावर से क्रमशः दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय व पंचेंद्रिय होना दुर्लभ है। उससे संज्ञी पंचेंद्रिय व मनुष्य पर्याय दुर्लभ है। पुनः उत्तम देह, उत्तम देश, उत्तम जाति, उत्तम कुल, दीर्घायु, श्रेष्ठ बुद्धि, सुसंगति, श्रेष्ठ भाव व देशव्रत क्रमशः अत्यंत दुर्लभ हैं।

सम्मत्तं सण्णाणं, सच्चरियं रयणत्तयं हि बोही।
अच्चंत-दुल्लहा चिय, उहयसेणी सिद्धावत्था॥218॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय ही बोधि है। बोधि की प्राप्ति, उपशम व क्षपक श्रेणी व सिद्धावस्था अत्यंत दुर्लभ है।

धर्मानुप्रेक्षा चिंतन

दुविहो धम्मो सावय-समणाणं ववहार-णिच्छयाणं।
भेयादो जाणेज्जा, धरदि उत्तमसुहे दुहादो॥219॥

जो जीव को दुःख से उत्तम सुख में रख दे वह धर्म है। श्रावक-श्रमण वा व्यवहार-निश्चय के भेद से धर्म दो प्रकार का जानना चाहिए।

संक्लिष्टासंक्लिष्ट भावना

कंदप्पीखिब्भिसा य, अभिओगा आसुरी य सम्मोहा।
संकिलिट्ठा-भावणा, पंचविहा अवहरेज्ज जदी॥220॥

कंदर्पी, किल्विष, आभियोग्य, आसुरी व सम्मोह—ये पाँच प्रकार की संक्लिष्ट भावनाएँ जाननी चाहिए। जिनका यतिराज परिहार करते हैं।

तव-सुद-सत्त-एगत्त-धिदिबल-भावणा असंकिलिट्ठा य।
भावेज्ज जोगी सया, सल्लेहणा-इच्चादी अवि॥221॥

तप, श्रुत, सत्त्व, एकत्व और धृतिबल ये असंक्लिष्ट भावनाएँ होती हैं। योगी को ये असंक्लिष्ट भावनाएँ व सल्लेखना इत्यादि की भावना भी भानी चाहिए।

सोलहकारण भावना

दंसणविसुद्धि-पहुदी, सोलहकारण-भावणा भावेज्ज।
अप्पविसुद्धीइ असुह-संवरस्स विउल-णिज्जराइ॥222॥

आत्म विशुद्धि, अशुभ कर्मों के संवर व विपुल निर्जरा के लिए दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावना भी भानी चाहिए।

ग्रंथ पठन फल

गंथिमो समणभावो, जदीण पहाण-हेदू विसुद्धीइ।
चित्तविसुद्धीए तह, कारणं संवर-णिज्जराण॥223॥

यह "**समणभावो**" श्रमणभाव नामक ग्रंथ मुनियों की विशुद्धि का प्रधान हेतु, चित्त विशुद्धि एवं संवर व निर्जरा का कारण होगा।

ग्रंथ लेखन उद्देश्य

लिहिदो सुगुरुकिवाए, अप्पविसुद्धीइ वसुणंदिणा मइ।
णवरि ण कंखा चित्ते, मज्झ खाइ-पूया-लाहाण॥224॥

यह श्रमण भाव नामक ग्रंथ मेरे आचार्य वसुनंदी के द्वारा गुरु कृपा से आत्म विशुद्धि के लिए लिखा गया। विशेषता यह है कि मेरे चित्त में ख्याति, पूजा, लाभादि की आकांक्षा किंचित् भी नहीं है।

ग्रंथकार की लघुता

अण्णाण-पमादेहिं, जदि को वि दोसो इमम्मि गंथम्मि।
सोधयंतु खमंतु मे, सुद्ध-रयणत्तय-साहगा दु॥225॥

अज्ञान व प्रमाद से यदि कोई भी दोष इस ग्रंथ में हो तो शुद्ध रत्नत्रय साधक उसका संशोधन करें एवं मुझे क्षमा करें।

अंतिम मंगलाचरण

चरियचक्कि-माइरियं, संतिं पायसायरं जयकित्तिं।
देसभूसणं णमामि, मम गुरु-सूरि-विज्जाणंदं।।226।।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, अध्यात्म योगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज एवं मेरे गुरु राष्ट्र संत क्षपकराज शिरोमणि आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) नमस्कार करता हूँ।

प्रशस्ति

महरट्ठरायहाणी-बोरीवल्लीए पसत्थजोगे।
सिद्धगुणाराहण-परमेट्ठि-णह-वीरब्धे अंककमे।।227।।
गुरुस्स किवादिट्ठीइ, पुण्णो गंथो गुरु-पुण्णतिहीए।
समप्पेमि गुरु-विज्जाणंद-आइरिय-मिमा किदी हु।।228।। (जुम्मं)

महाराष्ट्र की राजधानी मुंबई के बोरीवल्ली नामक स्थान पर सिद्धों के गुण (8), आराधना (4), परमेष्ठी (5), आकाश (2) अंकक्रम से 2548 वीर निर्वाण संवत् में, प्रशस्त योग में गुरुदेव की कृपादृष्टि से गुरु की पुण्यतिथि पर यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस कृति ''श्रमण-भाव'' नामक ग्रंथ को मैं अपने गुरु आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को समर्पित करता हूँ।

उववासो
(उपवास)

उपवास भूख का निरसन नहीं–आत्मशक्ति का आविर्भाव है। जब मन मौन हो जाता है, इच्छाएँ शांत हो जाती हैं, इन्द्रियाँ आत्मवश हो जाती हैं तब अन्तरङ्ग का ज्ञान सूर्य बिना आह्वान स्वयं प्रकट हो उठता है।

उववासो

(उपवास)

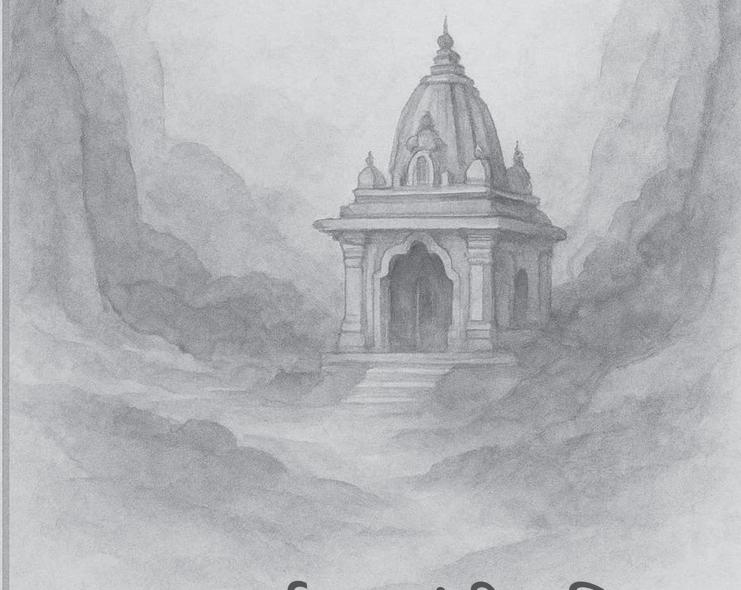

आचार्य वसुनंदी मुनि

आचार्य वसुनंदी मुनिराज विरचित

उववासो (उपवास)

मङ्गलाचरण

खयिय सव्वकम्मं णिक्कम्मा वसंति सगप्पपदेसम्मि।
ताणं णियडं वसिदुं, णमित्ता वोच्छे उववासं॥1॥

सभी कर्मोंका क्षयकर निष्कर्म-कर्मोंसे रहित सिद्ध परमेष्ठी निजात्मप्रदेशमें निवास करते हैं। उन सिद्ध परमेष्ठीके निकट वास करनेके लिए मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) उन्हें नमस्कार कर उपवास नामक ग्रन्थ को कहता हूँ।

णमो पणपरमेट्ठीण, जिणबिंबाणं वयणाण धम्मस्स।
जिणचेइयालयाणं, णियसुद्धप्प-पगासणाए॥2॥

निज शुद्धात्माके प्रकटीकरणके लिए पञ्चपरमेष्ठी, जिनबिम्ब, जिनेन्द्रप्रभुके वचन, जिनधर्म एवं जिनचैत्यालयोंको नमस्कार हो।

मे गुरु-परंपराए, विज्जंताणं महातवस्सीणं।
सव्व-महाणुभावाण, परोक्ख-पच्चक्खुवयारीण॥3॥
संति-पाय-सिंधूणं, जयकित्ति-देसभूसण-सूरीणं।
णमो य सिद्धंत-चक्कवट्टि-सूरि-विज्जाणंदस्स॥4॥ (जुम्मं)

मेरी गुरुपरम्परामें विद्यमान परोक्ष व प्रत्यक्ष उपकारी, महातपस्वी आचार्य श्री शान्तिसागर जी मुनिराज, आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज, आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज एवं सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराजको नमस्कार हो।

लोए णेव संभवो, सुहकज्जं गुरुकिवाए विणा तं।
सगहियं गुरुपदेसुं, ठविय लिहेमि असुहणासस्स।।5।।

गुरुकी कृपाके बिना लोकमें कोई भी शुभकार्य सम्भव नहीं है। अतः अपना हृदय गुरुके गुरु चरणोंमें रखकर अशुभके नाशके लिए मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) ग्रन्थका लेखन करता हूँ।

तप का स्वरूप

तियाले अप्पसोहग-महाणलो जाणेज्ज तवसद्देण।
मेत्तं भग्गेण णेव, सुज्झदि विणा पुरिसट्ठेणं।।6।।

'तप' शब्दसे तीनोंकालमें आत्माका शोधन करने वाली महाअग्नि जाननी चाहिए। पुरुषार्थके बिना मात्र भाग्यसे आत्माका शोधन नहीं होता।

तवो इच्छाणिरोहो, इंदियणिग्गहो कसायसमणं च।
रसायणं व परिणमिदु-मप्पा परमप्परूवं सो।।7।।

इच्छाका निरोध करना तप है, इन्द्रियोंका निग्रह करना तप है, कषायोंका शमन करना तप है अथवा आत्माको परमात्मरूप परिण ात करनेके लिए जो रसायनके समान है, वह तप है।

तप माहात्म्य

किंचिवि दहीइ दुद्धं, दही अग्गिणा कट्ठं जह अग्गी।
सम्मतवेणं अप्पा, तह होदि परमप्पा णियमा।।8।।

जिस प्रकार किञ्चित् भी दहीसे दूध-दही रूप एवं अग्निसे काष्ठ अग्निरूप हो जाता है उसी प्रकार सम्यक् तपसे आत्मा नियमसे परमात्मरूप हो जाता है।

तिक्काले तिल्लोए, तव-पुज्जो पालणीयो भव्वेहि।
तस्स चिंतणं चरिया, विसोहि-कारणं सुवत्ता वि।।9।।

तीनों कालों व तीनों लोकोंमें तप पूज्य है एवं भव्यजनोंके द्वारा पालनेके योग्य है। उसका चिन्तन, चर्या व उसकी चर्चा भी विशुद्धिका कारण है।

तप भेद

बहिरंतर-भेयादो, बेविहो तवो य जिणवरुद्दिट्ठो।
छब्बहितवो छ अंतो, पढमहेदू विदियो कज्जं।।10।।

बाह्य व अन्तरङ्गके भेदसे तप जिनेन्द्र भगवानके द्वारा दो प्रकारके कहे गए हैं। इनमें भी छह अन्तरङ्ग व छह बहिरङ्ग तप हैं। प्रथम बहिरङ्ग तप कारण व द्वितीय अन्तरङ्ग तप कार्य है।

बाह्य तप भेद

अणसणं ऊणोदरं, वित्तिपरिसंखा रसपरिचागो य।
विवित्तसेज्जासणं च,कायकिलेसो तवो जाणह।।11।।

अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसङ्ख्यान, रसपरित्याग, विविक्त-शैय्यासन व कायक्लेश। ये छह बाह्य तप जानने चाहिए।

अन्तरङ्ग तप भेद

पायच्छित्तं विणओ, वेज्जावच्चं सज्झाओ णिच्चं।
काउस्सग्गो झाणं, अंतरंगतवो णादव्वो।।12।।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग व ध्यान ये नित्य ही छह अन्तरङ्ग तप जानने चाहिए।

बहिरङ्ग तप व्याख्यान क्यों?

पढमो-बहिरंगतवो, इट्ठो अत्थ वक्खाणिदुं जम्हा।
पढमतवं विणा पुण्ण-पत्ती अण्णाण संभवा ण॥13॥

यहाँ व्याख्यान करने के लिए प्रथम बहिरङ्ग तप इष्ट है क्योंकि प्रथम बहिरङ्ग तपके बिना अन्य अन्तरङ्ग तपोंकी पूर्ण प्राप्ति सम्भव नहीं है।

त्रियोग प्रवृत्ति का भोजन पर प्रभाव

असणं देहस्स बलं, तिप्पदि इंदियविसय भुंजेदुं।
गमणागमणस्स तहा, भासिदुं पडिसंचिक्खेदं॥14॥
भोयणं सुहमसुहं पि, सगवर-मण-वयण-काय-पवित्तीइ।
सुहाए सुहं हवेदि, असुहाए सव्वदा असुहं॥15॥ (जुम्मं)

इंद्रिय विषयोंके भोगनेके लिए, गमनागमनके लिए, बोलने तथा चिन्तन करनेके लिए भोजन यद्यपि देहको बल प्रदान करता है। किन्तु स्वपर मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिसे भोजन भी शुभ और अशुभ होता है। त्रियोगकी शुभ प्रवृत्तिसे भोजन शुभ और अशुभ प्रवृत्तिसे सर्वदा अशुभ होता है।

सुहहेदू सुह-असणं, पाव-रोहगं कसायसामगं च।
पसत्थ-पुण्ण-कारणं, चित्त-सोहगं पहुभत्तीइ॥16॥

शुभभोजन शुभका हेतु होता है। वह पापोंका निरोध करने वाला, कषायोंका शमन करने वाला, प्रशस्त व पुण्यका कारण, चित्तको विशुद्ध करने वाला एवं प्रभु भक्तिका हेतु है।

असुह-भावेहि गहिदं, असुह-असणं वा जणगं असुहस्स।
भववड्ढगं च दुग्गदि-दुह-रोयाणं पुट्ठ-हेदू॥17॥

अशुभ-भोजन अथवा अशुभ-भावोंसे ग्रहण किया गया भोजन सदैव अशुभका उत्पादक है। वह संसारका वर्द्धन करने वाला, दुर्गति, दुःख व रोगोंका स्पष्ट हेतु है।

उपवास का स्वरूप

समीववासो णेयो, वुप्पत्ति-अत्थो खलु उववासस्स।
सगसुद्धप्पसमीवे, वासिदु-मुववासो सुहेदू॥18॥

उपवासका व्युत्पत्ति अर्थ 'समीपमें निवास करना' जानना चाहिए। अपनी शुद्धात्माके समीपमें निवास करनेके लिए उपवास सम्यक् हेतु है।

चउविहाहार-उज्झण-मणसणं खज्ज-सज्ज-लेह-पेयाण।
विसयकसायेहिं सह, सव्वअसुहभावेहि सह वा॥19॥

विषयकषायों के साथ अथवा सर्व अशुभभावों के साथ खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन है।

एगंकेण विणा जह, असंभवा अण्णंकाणुप्पत्ती।
तहेव अणसणं विणा, जो अण्णतवो बीयं व सो॥20॥

जैसे एकके अंकके बिना अन्य अंकोंकी उत्पत्ति असम्भव है, उसी प्रकार अनशन (उपवास) तपके बिना अन्य तप असम्भव हैं। अन्य तपोंके लिए वह अनशनतप बीजके समान है।

धम्मज्झाणेणं चदुभुत्तिचागो य सव्वाहाराणं।
उववासो सुहंकरो, जाण अणादीदु जिणसमये॥21॥

धर्मध्यानपूर्वक सर्व प्रकारके आहारका चार भुक्तित्याग अनादिकालसे जिनशासनमें सुखकर उपवास जानना चाहिए।

प्रोषधोपवास

पुव्व-पच्छा-दिवसम्मि, उववासादो एगासण-करणं।
पोसहोववासो सय, जिणसासणे संविदिदव्वो।।22।।

उपवाससे पूर्व व पश्चात् दिनमें एकासन करना सदा जिनशासनमें प्रोषधोपवास जानना चाहिए।

लंघन उपवास नहीं

अणसण-सद्देण कइअ-जणा मण्णेज्जा दु लंघणं किण्णु।
उहयो णेव दु एक्को, लंघणं दु लहुभोयणं जं।।23।।

अनशन शब्दसे कई लोग लङ्घन मानते हैं, किन्तु दोनों एक नहीं हैं क्योंकि लङ्घनका अर्थ लघुभोजन है।

उपवास के भेद व स्वरूप

उववासो बेविहो दु, भेयादु साकंख-णिराकंखाण।
कालमज्जादाजुदो, साकंखो विवरीय-इदरो।।24।।

साकाङ्क्ष व निराकाङ्क्षके भेदसे उपवास दो प्रकारके हैं। जो कालकी मर्यादासे युक्त है वह साकाङ्क्ष उपवास है और इसके विपरीत जो कालकी मर्यादासे रहित है वह इतर अर्थात् निराकाङ्क्ष उपवास है।

करेज्ज सगसत्तीए, इग-दु-ति-चदु-पक्ख-मासादीणं।
उववासं साकंखं, फुडदि सगप्पसत्ती जेणं।।25।।

अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो, तीन, चार, पक्ष, मास आदिके साकाङ्क्ष उपवास करने चाहिए, जिससे निज आत्माकी शक्ति प्रकट होती है।

भत्त-मिंगिणिं पायोपगमणाइ-मणसणं णिराकंखं।
कुणदि समेणं जोगी, कसेदुं काय-कसायं च॥26॥

भक्तप्रत्याख्यान, इङ्गिनी और प्रायोपगमन या अन्य और भी आमरण उपवास निराकाङ्क्ष उपवास जानने चाहिए, जिन्हें योगी काय व कषायको कृश करनेके लिए समत्वभावसे करते हैं।

उपवास के दिन क्या करें

अणसणदिणे छंडित्तु, अट्टरुद्दज्झाण-पावेहिं सह।
विसयकसायेहिं चउविहाहारं वड्ढदु धम्मं॥27॥

उपवासके दिन आर्त्त-रौद्रध्यान, पाप व विषय-कषायोंके साथ चार प्रकारके आहारका त्यागकर धर्मका वर्द्धन करना चाहिए।

उपवास क्यों व कैसे

सुच्छाहुमंगणसणं, सगप्पे णवुज्जासत्तीइ कुणदु।
सुपुण्णासवस्स असुह-संवरस्स तह णिज्जराए॥28॥

पुण्यके आस्रव, अशुभके संवर तथा निर्जराके लिए अपनी आत्मामें नवऊर्जा व शक्तिपूर्वक उत्साह-उमङ्गके साथ अनशन करना चाहिए।

उपवास का फल

विसुद्धीए पइरेदि, जो सो अणसणरुक्खं णियचित्ते।
अट्ठंगजोगाणं च, सुफलं पप्पोदि भव्वुल्लो॥29॥

जो भव्यजीव अपने चित्तमें उपवास रूपी वृक्षका वपन करता है वह अष्टाङ्गयोगके समीचीन फलको प्राप्त करता है।

परमविसुद्धीए जो, कुणदि णिक्कंख-समत्त-भावेहिं।
उववासं सो सोसदि, कम्मरूवभवसिंधुणीरं।।30।।

जो निष्काङ्क्ष व समत्वभावोंसे परमविशुद्धिपूर्वक उपवास करता है वह कर्मरूप संसार सागरके जलका अवशोषण करता है।

उपवास से अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति

बहुइड्ढिं पच्चक्खं, णाण-मणंतचदुक्क-मुववासेण।
लहदि जोगी डज्झिदुं, सक्कदि कम्मपइडिं णिच्चं।।31।।

उपवाससे योगी बहुत सी ऋद्धि, प्रत्यक्षज्ञान व अनन्तचतुष्क (अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) प्राप्त करते हैं एवं कर्म प्रकृतियोंको नष्ट करनेमें भी समर्थ होते हैं।

उपवास से विशुद्ध भाव

कोहो खमाइ माणो, मद्दवे तहा माया उजुदाए।
लोहो विसुद्धभावे, परिवट्टेदि उववासेणं।।32।।

उपवाससे क्रोध क्षमामें, मान मार्दवमें, माया ऋजुता- सरलभावोंमें, लोभ विशुद्धभावमें परिवर्तित हो जाता है।

उपवास से कर्मनाश

पावदि उववासेणं, चाग-अकिंचण-बंभचेरवित्तिं।
कम्मकक्खं डज्झिदुं, दावग्गीव खलु उववासो।।33।।

उपवास से जीव त्याग, अकिञ्चन व ब्रह्मचर्यवृत्तिको प्राप्त करता है। कर्मरूपी वनको दहन करनेके लिए उपवास दावाग्निके समान है।

शक्तिपूर्वक कृत उपवास भी फलदायक

णिविडकम्मबंधं णिज्जरदि कद-णूणुववासे सत्तीइ।
इगिगबिंदुपडणेण वि, सिला जह तह खंडो खंडो॥34॥

जैसे एक-एक बूँदके गिरने से शिला खण्ड-खण्ड हो जाती है उसी प्रकार शक्तिपूर्वक किए गए कम उपवास से भी निविड कर्मबन्ध की निर्जरा होती है

उपवास-आत्मगुण-विकासक

णियम-जम-रूवेण वा, कुव्वंति उववासं महापुरिसा।
अप्पगुणा विअसेदुं, भवसिंधुं सोसिदुं रवीव॥35॥

महापुरुष नियम या यम रूपसे उपवास करते हैं। वह उपवास संसार-रूपी सागरको अवशोषित और आत्मगुणोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान है।

नियम व यम सल्लेखना में उपवास

कुणदु खवगो सत्तीइ, उववासं णियमसल्लेहणाए।
जमसल्लेहणाए य, जावज्जीवणं उववासो॥36॥

नियम-सल्लेखनामें क्षपक शक्तिपूर्वक उपवास करता है एवं यम-सल्लेखनामें जीवनपर्यन्त उपवास करता है।

उपवास-सावद्यप्रवृत्ति नाशक

उववासेण पमादो, सावज्जपवित्ती विणस्सेदि सय।
कोहादी कसाया वि, उवसमिदुं समत्थो भव्वो॥37॥

उपवाससे प्रमाद व सावद्यप्रवृत्ति सदैव विनष्ट हो जाती है। उपवाससे भव्यजीव क्रोधादि कषायोंका उपशमन करनेमें समर्थ होता है।

उपवास से आत्मसुख

उववासेणं संती, चित्तम्मि खंतिभावो विसुद्धी य।
उप्पज्जदि अप्पसुहं, णीरम्मि दु सेवालादीव॥38॥

उपवाससे चित्तमें शान्ति, क्षान्तिभाव, विशुद्धि और आत्मसुख उसी प्रकार उत्पन्न होता है जैसे नीरमें शैवाल आदि।

पापी के उपवास-चिन्तन भी नहीं

उववासेणं सक्कदि, फुडिदुं वड्ढिदुं सगप्पसत्तिं च।
उववासं करिदुं णो, चिंतदि विसयासत्त-पावी॥39॥

उपवाससे भव्यजीव स्वात्मशक्ति सम्वर्द्धित करने व प्रकट करनेमें समर्थ होता है। विषयासक्त पापी जीव उपवास करनेका चिन्तन भी नहीं करता।

उपवास से ज्ञानवृद्धि

उववासेणं वड्ढदि, णाणावरण-खओवसमो तादो।
णाणं चित्तथिरं अवि, हवेदि सय सुहभावणाए॥40॥

उपवाससे ज्ञानावरणका क्षयोपशम वृद्धिको प्राप्त होता है, उससे ज्ञान वृद्धिङ्गत होता है एवं उस उपवाससे शुभ भावना होनेपर चित्त भी स्थिर होता है।

उपवास से स्वस्थता

पावाणि णिज्जरदि, उववास-कत्ता अहण्णिसं तवस्सी।
लहदि णिरोयदेहं च, पहावीवयणं सुत्थमणं।।41।।

उपवास करने वाला तपस्वी अहर्निश पापोंकी निर्जरा करता है एवं निरोगीदेह, प्रभावीवचन व स्वस्थमन प्राप्त करता है।

निःकाङ्क्ष उपवास से निःकाङ्क्ष पुण्य

वयणसिद्धिं पदिट्ठं, जस-मुच्चपदं णिक्कंखणसणेण।
पावदि इट्ठपदत्थं, वड्ढेदि णिक्कंखपुण्णं च।।42।।

निष्काङ्क्ष उपवाससे जीव वचनसिद्धि, प्रतिष्ठा, यश, उच्चपद व इष्ट पदार्थको प्राप्त करता है तथा निष्काङ्क्ष पुण्य वृद्धिङ्गत होता है।

उपवास कर्त्ता-विरक्त

सुहभावजुद-उववास-कत्ता विरत्तो भवतणभोयादु।
सया विज्जंत-अलित्त-अरविंदं व कद्दमम्मि खलु।।43।।

शुभभावोंसे उपवास करने वाले संसार, शरीर व भोगोंसे उस प्रकार विरक्त रहते हैं जैसे कीचड़में रहते हुए कमल कीचड़से अलिप्त रहता है।

उपवास कर्त्ता-भावी सिद्ध

णियसुद्धप्पसमीवे, जिणाण वा वसदि उववास-कत्ता।
अणसण-रुक्खे भावी, सिद्धो चंदणे भुयंगोव्व।।44।।

उपवास करने वाला भव्यजीव जिनेन्द्रप्रभुके समीप या अपनी शुद्धात्माके समीप वास करता है। अनशन रूपी वृक्ष पर भावी सिद्ध उसी प्रकार वास करते हैं जैसे चन्दनके वृक्ष पर भुजङ्ग।

उपवास से मोक्ष

जह वाहणारूढो दु, पहुच्चदि सगगंतव्वं सहजेण।
तह उववासारूढो, णिव्वाणपुरं लहदि जोगी।।45।।

जिस प्रकार वाहन पर आरूढ़ व्यक्ति सहजतासे अपने गन्तव्य पर पहुँच जाता है उसी प्रकार उपवास रूपी वाहन पर आरूढ़ योगी निर्वाणपुरको प्राप्त करता है।

उपवास से शुभ शक्तियाँ सहायी

सव्वसुहसत्ती तस्स, सहाया जो कुणदि उववासादिं।
जह तह णिवस्स पुरोह-मंति-सेणावदि-पयादी य।।46।।

जो तपस्वी उपवासादि करते हैं, सभी शुभ शक्तियाँ वैसे ही उनकी सहायक होती हैं जैसे पुरोहित, मन्त्री, सेनापति, प्रजा आदि राजाके सहायक होते हैं।

उपवास से यश, गुणादि की वृद्धि

जलसिंचणेण तरुव्व, वड्ढंत-ससिकलाइ सिंधुजलं व।
वड्ढदि उववासेणं, पुण्णं जस-सुह-संती गुणा।।47।।

जिस प्रकार जलसिञ्चनसे वृक्ष और बढ़ती हुई चन्द्रमा की कलासे समुद्रका जल वृद्धिङ्गत होता है उसी प्रकार उपवाससे पुण्य, यश, सुख-शान्ति व गुण वृद्धिङ्गत होते हैं।

उपवास से अशुभ कर्म नष्ट

उड्ढंते बहुपक्खी, पासाणखंडखिवणेणं जह तह।
उववासेण खयंते, दुक्खकारग-असुहकम्माणि।।48।।

जिस प्रकार एक पाषाणखण्ड के फेंकने से बहुत से पक्षी उड़ जाते हैं उसी प्रकार उपवास से दुःखकारक अशुभकर्म नष्ट हो जाते हैं।

उपवास से सुख

उववासो सीयल-मणुभूदि-सुहदं वरिसावदे चित्ते।
रयणीए सुहायरो, सीयलसुहा इव जलबिंदुं॥49॥

उपवास चित्त में शीतल व सुखद अनुभूति उसी प्रकार बरसाता है जैसे रात्रि में चन्द्रमा शीतलसुधा के समान जलबिन्दु को बरसाता है।

उपवास-पापनाशक

पचंड-अक्कतावेण, जलाभावे खयंति पत्ताणि जह।
णिज्जरंति पाव-असुह-कम्माइं उववासेण तह॥50॥

जिसप्रकार प्रचण्ड सूर्य के ताप अथवा जल के अभाव में वृक्ष के पत्ते नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार उपवास से पाप व अशुभ कर्मों की निर्जरा हो जाती है।

उपवास से परमानन्द प्राप्ति

पव्वयं फोडिदूणं, जह जलं णिस्सरदि लहिदुं सिंधुं।
तह जीवो अवि कम्मं, परमाणंद-अण्णवं लहदि॥51॥

जिसप्रकार सिन्धु को प्राप्त करने के लिए जल पर्वत फोड़कर निकलता है उसी प्रकार जीव भी कर्मों को नष्टकर परमानन्द रूपी सागर प्राप्त करता है।

संयमादि दायक उपवास

सहावेण पुप्फं जह, सुगंधं सुंदरिमं च किंजक्कं।
संजमं तव-मज्झप्प-णाणं देदि तह उववासो॥52॥

जिस प्रकार पुष्प स्वभाव से सुगन्ध, सौन्दर्य व पराग देता है उसी प्रकार उपवास स्वभावतः संयम, तप व आध्यात्मज्ञान देता है।

उपवास से कामवेग नष्ट

अक्खाण चंचुरत्तं, कामवेगो दु विसयासत्ती वा।
खयंति उववासेणं, जदि कुणदि तिजोगसुद्धीए॥53॥

यदि उपवास त्रियोग की शक्तिपूर्वक किया जाता है तो उस उपवास से इन्द्रियों की चञ्चलता, काम का आवेग वा विषयासक्ति नष्ट होती है।

उपवास से आत्मरक्षा

उववासो रक्खेदुं, अप्पं सय खेडगोव्व पावादो।
पमादादो समिदीव, उवाणहा व दुहकंडगादु॥54॥

उपवास आत्माकी पापसे रक्षा करनेके लिए ढालके समान है, प्रमादसे रक्षा करनेके लिए समितिके समान और दुःखरूपी काँटोंसे रक्षा करनेके लिए पदत्राणके समान है।

उपवास से अध्यात्म विद्या

उववासुव्वरमहीव, उप्पत्तीइ अज्झप्प-विज्जाए।
उप्पज्जेदि वड्ढदे, तादु फलदि सगप्पबोहतरू॥55॥

आत्मामें आध्यात्मविद्याकी उत्पत्तिके लिए उपवास उर्वरभूमिके समान है। उससे स्वात्माका ज्ञान रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है, वृद्धिङ्गत होता है और फलित होता है।

उपवास से भवभ्रमण क्षय

खमो लहिदु-मणसणेण, संवेग-वेरग्ग-णाणाइगुणा।
वरसंति-सुहं सीलं, खयेदुं भवभमणं अइरं॥56॥

उपवास से जीव परम शान्ति, सुख, शील, संवेग, वैराग्य व ज्ञानादि गुणों को प्राप्त करने में एवं शीघ्र संसार परिभ्रमण का क्षय करने में समर्थ होता है।

समतापूर्वक उपवास से तपादि की वृद्धि

समदाजुदुववासेण, सण्णाण-संजम-तवज्झाणाइं।
वड्ढदि सिंधुणीरं व, संवड्ढंत-सिदचंदेणं॥57॥

समतापूर्वक उपवास करने से सम्यग्ज्ञान, संयम, तप व ध्यान इस प्रकार वृद्धिङ्गत होता है जैसे शुक्ल पक्ष के बढ़ते हुए चन्द्रमा से समुद्र का जल वृद्धिङ्गत होता है।

उपवास से तीर्थङ्करादि उत्कृष्ट पद

दंसणविसुद्धीइ सह, अणसणं देदि पणकल्लाणफलं।
अहमिंदाइ-उक्किट्ठ-पदं पि सासय-णिव्वाणस्स॥58॥

दर्शनविशुद्धि के साथ उपवास पञ्चकल्याणक के फल को प्रदान करता है। वह अहमिन्द्रादि उत्कृष्टपद एवं शाश्वत निर्वाणपद भी देता है।

उपवास से श्रेण्यारोहण

उवसम-खवग-सेढिं च, समत्थो आरोहिदु-मुववासेण।
जदि मोहं णेव खयदि, तो लहदे सुरसुहं णियमा।।59।।

उपवास से जीव उपशम व क्षपक श्रेणी चढ़ने में समर्थ होता है। यदि (उपशम श्रेणी पर आरूढ़ मुनिराज का) मोह नष्ट नहीं होता तो वे नियम से देवों का सुख प्राप्त करते हैं।

प्रमादोत्पादक आहार ज्ञानादि का हेतु नहीं

डज्झिदुं असुहकम्मं, उववास-समो को वि मग्गो णत्थि।
पमाद-जणगाहारो, णाण-झाण-तव-हेदू णेव।।60।।

अशुभकर्मों को नष्ट करने के लिए उपवास के समान कोई भी मार्ग नहीं है। प्रमाद को उत्पन्न करने वाला आहार- ज्ञान, ध्यान व तप का हेतु कभी नहीं हो सकता।

रोगादि का कारण-अशुभ भोजन

कम्मोदयोदीरणा, णिमित्त-कारणं पमादवित्ती य।
पच्चक्ख हेदू-असुहभोयणं चिय रोयादीणं।।61।।

कर्म का उदय, उदीरणा व प्रमादवृत्ति रोग आदि का निमित्त कारण है किन्तु रोगादि का प्रत्यक्ष हेतु अशुभ भोजन है।

कुभाव कृत उपवास-सङ्क्लेशतावर्द्धक

एगंतेणुववासो, णो हिद-कारगो जं किदुववासो।
कुभावेहि संकिलेस-वड्ढगो दुक्कम्म-पोसगो।।62।।

एकान्ततः उपवास हितकारक नहीं होता क्योंकि कुभावों से किया गया उपवास संक्लेशता का वर्द्धक और दुष्कर्मों का पोषक होता है।

सम्यक् व मिथ्या उपवास से सम्यक् व मिथ्या फल

जवेण जवो चणगेहि, चणगो उप्पज्जेदि जहा तहेव।
सम्मुववासेण सम्म-फलं इदरेण सया इदरं।।63।।

जैसे जौं से जौं और चने से चना उत्पन्न होता है उसी प्रकार सम्यक् उपवाससे सम्यक् फल और इतर अर्थात् मिथ्या (कषायादि सहित) उपवाससे सदैव मिथ्याफल प्राप्त होता है।

असुहस्स फलं ण सुहं, सुहुववासस्स कुफलं संभवं ण।
पावेण सुहपत्तीव, णिक्कंखपुण्णेण णिरयं व।।64।।

अशुभ उपवास का फल शुभ सम्भव नहीं होता है और शुभ उपवास का कुफल वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे पाप से सुख की प्राप्ति और निष्काङ्क्ष पुण्य से नरक की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है।

स्वास्थ्यवर्द्धक अनशन

भिसओ सय उवजोगी, मण्णेदि अणसणंसेट्ठसुत्थस्स।
अहवा समये समये, लंघणं रसचागो वि तहा।।65।।

वैद्य अनशन को श्रेष्ठ स्वास्थ्य के लिए सदा उपयोगी मानते हैं अथवा समय-समय पर लङ्घन तथा रसत्याग भी अच्छे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी मानते हैं।

अजीर्ण भोजन-रोगमूल

अजिण्ण-भोयणं सव्व-रोय-मूलं, मण्णिज्जदि भिसगेहि।
कम्मुदयं विणा जहवि, आमयुप्पत्ती असक्का दु॥66॥

वैद्यजनों के द्वारा अजीर्ण भोजन सर्वरोगों का मूल माना जाता है। यद्यपि कर्मोदय के बिना रोगों की उत्पत्ति अशक्य है।

उपवास से रोग नाश

उववासेण खयंते, अजिण्णाइ-रोया तं भिसगो अवि।
णिद्देसेदि अजिण्णं, वारिदुं लंघण-अणसणाणि॥67॥

उपवास से अजीर्णादि रोग नष्ट हो जाते हैं। अतः अजीर्ण का निवारण करने के लिए वैद्य भी लङ्घन व अनशन का निर्देश देते हैं।

अनुपवास स्वरूप

अणुववासो दु णेयो, उण्हजलसेवणं मेत्तं समये।
कयाइ अणुववासो वि, विसिट्ठो चिय उववासादो॥68॥

मात्र गर्मजल का सेवन करना जिनागम में अनुपवास कहा गया है। कदाचित् अनुपवास, उपवास से भी विशिष्ट होता है।

अनुपवास लाभदायक

उप्पज्जंते देहे, बहुरोया हंदि णीरहासेणं।
विवेगी तं करेज्जा, पिविय बहुजलं अणुववासं॥69॥

पानी की कमी से शरीर में बहुत रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए विवेकीजनों को बहुत जल पीकर अनुपवास करना चाहिए।

ज्वरादि हारक-अनुपवास

जर कफुच्चरत्तचाव-सीद-रोयी अण्णं पच्चक्खित्तु।
उण्ह-जल-पाणगं णियपइडि-रिदु-अणुसारेण पिवदु॥70॥

ज्वर, कफ, उच्चरक्तचाप व शीत (जुखाम) रोगीको अन्नका त्यागकर अपनी प्रकृति व ॠतुके अनुसार गर्म जल व पानक पीना चाहिए।

लंघन वा ऊनोदर से रोग नष्ट

लंघणेण समंति कफ-पित्त-वाद-जणिदण्णबहुरोया वि।
फुडदि अप्पसत्ती वा, णूणुदरेण खयेदि कम्मं॥71॥

लङ्घन करनेसे या ऊनोदर करनेसे कफ, पित्त व वात जनित अन्य बहुत रोग भी शमित होते हैं, आत्माकी शक्ति प्रकट होती है एवं कर्म नाशको प्राप्त होते हैं।

उपवास व अनुपवास-रोगनिरोध क्षमता वर्द्धक

उववासणुववासेहि, वड्ढेदि रोयणिरोह-सामच्छं।
समंति अणेगरोया, हस्सदि तहा विसयासत्ती॥72॥

उपवास व अनुपवास से रोगनिरोध की सामर्थ्य बढ़ती है। अनेक रोगों का शमन होता है तथा विषयासक्ति घटती है।

उपवास व अनुपवास से वैराग्यादि परिपक्व

तेहि पक्को सम्मत्त-वेरग्ग-तव-संजमज्झाणाइं।
जह तह अक्कतावेण, पुप्फफलाइं च मिदिगा अवि॥73॥

उपवास व अनुपवास से सम्यक्त्व, वैराग्य, तप, संयम और ध्यान उसी प्रकार परिपक्व होते हैं जैसे सूर्य के ताप से पुष्प, फल और मिट्टी भी परिपक्व होते हैं।

उपवास व अनुपवास से विषाक्त पदार्थ नष्ट

तेहि देहे विज्जंत-विसत्तपदत्था तह उहट्टंते।
पवणेणं पज्जण्णो, कद्दमो जह सलिलवेगेण।।74।।

उन उपवास व अनुपवास से शरीर में विद्यमान विषाक्त पदार्थ उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे हवा से बादल और जल के वेग से कीचड़ नष्ट हो जाती है।

स्थूलता शमन का साधन–उपवास

थूलदेहीण देहो, णियमेण गिहो अणेगरोयाणं।
तं समिदुं ओसहीव, उववासो अणुववासो वा।।75।।

स्थूल देह वालों की देह नियम से अनेक रोगों का घर बन जाती है, उस देहकी स्थूलता को शमित करने के लिए उपवास या अनुपवास औषधि के समान है।

विशिष्ट चिकित्सा

रत्तवियारं समिदुं, देहभारं पकुव्वेदुं णूणं।
अणुववासोववासो, भासिदा चिगिच्छा विसिट्ठा।।76।।

रक्तविकार को शमित करने के लिए, शरीर के भार को कम करने के लिए अनुपवास व उपवास विशिष्ट चिकित्सा कही गई है।

मधुमेहनाशक

महुमेहं समिदुं अवि, सत्तीए उववासमणुववासं।
करेज्ज समये समये, चित्तविसुद्धीए हरिसेण॥77॥

मधुमेह को शमित करने के लिए भी चित्त की विशुद्धिपूर्वक हर्ष से समय-समय पर शक्तिपूर्वक उपवास व अनुपवास करना चाहिए।

उदरशोधक

णिय-असंतुलिद-पाचण-किरियाए संतुलणत्थं सया हि।
उववास-मणुववासं, करेज्ज उदरं सोहेदुं पि॥78॥

अपनी असन्तुलित पाचनक्रिया के सन्तुलन के लिए एवं उदर शोधन के लिए भी सदा ही उपवास या अनुपवास करना चाहिए।

कार्यक्षमता वर्द्धक

उववासणुववासेहि, पावदि संतिं बहु-उज्जा-सत्तिं।
आवेगो णियंतिदो, संवड्ढदि कज्ज-सामच्छं॥79॥

उपवास व अनुपवास से जीव शान्ति व बहुत ऊर्जा शक्ति को प्राप्त करता है, आवेग नियन्त्रित होता है एवं कार्य करने की सामर्थ्य सम्वर्द्धित होती है।

दीर्घायुकारक

उववासाणुववासो, बहुउवजोगी दु हिअयरोयाणं।
दीहाउ-कारणं बहु-हिअय-विसेसण्णू वदंति वि॥80॥

उपवास व अनुपवास हृदय रोगों के लिए बहुत उपयोगी है, वह दीर्घायु का कारण भी है, ऐसा बहुत से हृदय विशेषज्ञ भी कहते हैं।

देहाङ्ग विश्रामदायक

देहंग-वीसामेण, हिअय-सत्ती तह अण्णंगाणं पि।
वाहणस्स थिरिमाए, संवड्ढदि तस्ससत्ती जह॥81॥

शरीर के अङ्गों को विश्राम देने से हृदय शक्ति एवं अन्य अङ्गों की शक्ति भी उसी प्रकार सम्वर्द्धित होती है जैसे वाहन की स्थिरता अर्थात् वाहनके लगातार चलने से उसकी शक्ति घटती है और कुछ देर रुकने से पुनः वृद्धिंगत हो जाती है।

सूजन में लाभ

सरीरम्मि जदि सोहो, सीदुण्हेहि वा उदरवियारेण।
महा-उवजोगी उण्ह-जलपाण-माहो उववासो॥82॥

सर्दी, गर्मी या उदरविकार से शरीर में यदि सूजन होती है तो ऊष्ण-जलपान अथवा उपवास महा-उपयोगी है।

वातादि का सन्तुलन

असंतुलिद-वित्ती कफ-वाद-पित्ताणं होदि संतुलिदा।
उववासणुववासेहि, वड्ढदि वत्तं देहकंती॥83॥

उपवास व अनुपवास से वात, पित्त, कफकी असन्तुलित वृत्ति भी सन्तुलित होती है एवं स्वास्थ्य व शरीर की कान्ति वृद्धिङ्गत होती है।

विष-नियन्त्रक वा नाशक

दंसिद-देहे विसत्त-जंतूहि विसपहावं हस्सिदुं च।
णासिदुं वा पिवेज्जा, बहुमत्ताए जलं पेयं॥84॥

विषाक्त जन्तुओं के द्वारा डसी हुई देह में विष के प्रभाव को कम करने या नष्ट करने के लिए बहुत मात्रा में जल पेय है।

सहज श्वासोच्छ्वास-कारक

सुद्धं उण्हं णीरं, पिवेज्ज बहुवारं ओसहीव सय।
गदि-सहजं कुव्वेदुं, आणपाणस्स सुभावेहिं॥85॥

श्वासोच्छ्वास की गति सहज करने के लिए अच्छे भावों से औषधि के समान शुद्ध व गर्म जल बहुत बार पीना चाहिए।

मानसिक सुख कारक

पाउणदि माणस-सुहं, देहंग-विस्संति-मुववासेणं।
णवकज्जस्स दायदे, विस्सामो णवुज्जं जम्हा॥86॥

उपवास से जीव शरीर के अङ्गों की विश्रान्ति व मानसिक सुख प्राप्त करता है क्योंकि विश्राम नवकार्य के लिए नवऊर्जा प्रदान करता है।

हार्मोन्स सन्तुलन

उववासणुववासेहि, णिस्सरिदं बहुविहं रसं दु।
णरसरीर-गंथीहिं, संतुलिदं रोयणासगं पि॥87॥

मनुष्य के शरीर की ग्रन्थि से बहुत प्रकार के रस (harmones) निःसृत होते हैं। उपवास व अनुपवास से रस सन्तुलित व रोगनाशक भी होते हैं।

स्त्रीरोग-शामक

इत्थीणं बहुरोया, गंथि-आइ-संबंधिदा समंते।
उववासणुववासेहि, सलिलवरिसाए दु सिगदा व।।88।।

उपवास व अनुपवास से स्त्रियों के ग्रन्थि आदि सम्बन्धित बहुत रोग शमित होते हैं। जैसे जल की वर्षा से बालू शमित हो जाती है।

शुष्क खांसी निवारण

काढेण महुयट्ठीइ, उण्हेण तिव्वसुक्ककासो समदि।
रविपयासेण तमोव्व, णिवभयेण चोरंकारोव्व।।89।।

मुलैठी के गर्म काढ़े से तीव्र शुष्क खाँसी भी वैसे ही शमित हो जाती है जैसे सूर्यके प्रकाश से अन्धकार और राजा के भय से चोर पलायन कर जाते हैं।

महारोग-शामक

विसत्त-जीवा खयंति, केंसराइ-महामयाणं देहं।
उववासेण समंते, उण्हजलेण विसुद्धीए वि।।90।।

कैंसर आदि महारोगों के विषाक्तजीव देह को नष्ट कर देते हैं। विशुद्धिपूर्वक उपवास से व ऊष्ण जल से भी वे रोग शमित होते हैं।

धातु व उपधातु का सन्तुलन

उववासणुववासेहि, तणू खमो कुणिदं समुइदकज्जं।
धादू उवधादू संतुलिदा होज्ज देहकंती वि।।91।।

उपवास व अनुपवास से शरीर समुचित कार्य को करने में समर्थ होता है, धातु व उपधातु सन्तुलित होती हैं तथा शरीर में कांति भी उत्पन्न होती है।

नव ऊर्जा दायक

उववासणुववासेहि, लहेज्ज मत्थगं तंतिगा-तंतं।
विस्संते णव-उज्जं, तम्हा करेज्ज तं भत्तीइ।।92।।

उपवास व अनुपवास से मस्तक व तंत्रिका तंत्र (nervous system) विश्राम एवं नव-ऊर्जा प्राप्त करता है। अतः भक्तिपूर्वक उपवास-अनुपवास करना चाहिए।

उत्साह व परमानन्द-कारक

जह ण्हाणेणं देहो, णवुच्छाह-उज्जा-कंति-जुत्तो य।
तह तेहिं चेयणा वि, परमाणंदिदा उच्छाही।।93।।

जैसे स्नान से देह नवउत्साह, ऊर्जा व कान्तियुक्त होती है उसी प्रकार उन उपवास व अनुपवास से चेतना भी उत्साही और परमानन्द से युक्त होती है।

त्रियोग शुद्धि

उववासेण चित्तस्स, सव्वदा देहस्स वयण-सुद्धी वि।
तह जह हुदासणेणं, कलधोदाइ-सव्वधादूण।।94।।

उपवास से सर्वदा चित्त, देह व वचन की शुद्धि भी वैसे ही होती है जैसे अग्नि से स्वर्ण आदि सभी धातुओं की शुद्धि होती है।

सर्व हितकर उपवास

भव्वुल्लाण सुहयरा, सव्वसंतियरा सया तित्थयरा।
जह तह उववासो अवि, सव्व-जोगीणं णियमादो॥95॥

जिस प्रकार भव्यजीवों के लिए तीर्थङ्कर नियम से सदैव सुखकर व सर्व शान्तिकारक होते हैं उसी प्रकार उपवास भी सभी योगियों के लिए नियमसे हितकर होते हैं।

उपवास से असंख्यात गुणित निर्जरा

तित्थजत्ता-सज्झाय-जवतववेज्जावच्चेहिं सक्का।
पत्तकम्मणिज्जराइ, असंख-गुणिदा उववासेण॥96॥

तीर्थयात्रा, स्वाध्याय, जप, तप, वैयावृत्ति से हुई कर्मों की निर्जरा से असंख्यात गुणित निर्जरा उपवास से शक्य है।

असंख्यात गुणित पुण्य सञ्चय

जिणभत्ति-गुरुसेवाहि, जावइया सुपुण्णसंचयो हंदि।
असंखगुणिदो तादो, पसमभावजुदुववासेणं॥97॥

जिनभक्ति व गुरुसेवा से जितने पुण्य का सञ्चय होता है उससे असंख्यात गुणित पुण्यका सञ्चय प्रशम भाव से युक्त उपवास से शक्य है।

शक्तिपूर्वक उपवास की प्रेरणा

भव्वुल्ला उववासं, करेज्ज सगसत्तीए विसुद्धीइ।
णेव गोवेज्ज सत्तिं, सगसत्तिं णेव लंघेज्जा॥98॥

भव्यजनों को अपनी शक्ति के अनुसार विशुद्धिपूर्वक उपवास करना चाहिए। अपनी शक्ति को कभी छिपाना भी नहीं चाहिए और शक्तिका कभी उल्लङ्घन भी नहीं करना चाहिए।

पाव-मणिट्ठकारगं, पुण्णं इट्ठफलदायगं तम्हा।
सत्तीए उववासं, करेज्ज णाणी संजदवदी॥99॥

पाप अनिष्टकारक है एवं पुण्य इष्टफलदायक है। इसीलिए ज्ञानी, संयमी, व्रती को शक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिए।

रोहिणी आदि व्रत से महापुण्यफल

उववासेणं कुव्वदि, जो भव्वुल्लो रोहिणि-आइ-वदं।
लहदि महापुण्णफलं, उज्जावणं पि कुणदु पच्छा॥100॥

जो भव्यजीव उपवासपूर्वक रोहिणी आदि व्रत करते हैं वे महापुण्यफल को प्राप्त करते हैं। व्रत के पश्चात् उद्यापन भी करना चाहिए।

उद्यापन आवश्यक

रिद्धि-सिद्धि-कंखाए, आहो कुणदि जवं संकप्पेणं।
उज्जावणं पि कुव्वदु, सगसत्तीए पुण्णफलस्स॥101॥

यदि कोई जीव ऋद्धि-सिद्धि की आकाङ्क्षा से अथवा सङ्कल्पपूर्वक जप करता है तो पुण्यफल की प्राप्ति के लिए उसे उसका उद्यापन भी करना चाहिए।

सिद्धक्षेत्र वन्दना से उपवास सुफल

सम्मेद-सिहरादीण, सिद्धखेत-वंदणं करेज्जा जो।
लहदि सिवकारणं सो, उववासाणुववास-फलं दु॥102॥

जो सम्मेद-शिखर आदि सिद्धक्षेत्र की वन्दना करता है वह उपवास व अनुपवासों के फल को प्राप्त करता है। वह वन्दना मोक्ष का कारण भी है।

मौनपूर्वक उपवास

मोणेणं उववासं, जो कुणदि भव्वो परमविसुद्धीइ।
तुंगभद्दा व सक्कदि, लहिदुं सो परमणिव्वाणं।।103।।

जो भव्यजीव परमविशुद्धि से मौनपूर्वक उपवास करता है वह तुङ्गभद्रा के समान परमनिर्वाण प्राप्त करने में समर्थ होता है।

चक्रवर्ती भरत व नारायण कृष्ण

भरदचक्कीव पावदि, लोगिगइड्ढिं च छक्खंडरज्जं।
उववासेण वसावदि, सिंधुम्मि दारिगा किण्होव्व।।104।।

उपवास से जीव भरतचक्रवर्ती के समान लौकिक ऋद्धि व षट्खण्ड राज्य प्राप्त करता है तथा कृष्ण के समान समुद्र में द्वारिका बसाने में समर्थ होता है।

महोपसर्ग नष्ट

अणसणेण विणस्सीअ, जिणदत्ता-मणोरमा-णीलीणं।
चंदणबालाइ वारिसेणस्स तह सूरदेवस्स।।105।।
सुदंसण-बाहुबलीण, णंदिमित्त-णंदिसेण-गुणणिहीण।
महोवसग्गं च लहदि, इंद-पडिहरि-बल-कामपदं।।106।। (जुम्मं)

उपवास से जिनदत्ता, मनोरमा, नीली, चन्दनबाला, वारिषेण, सूरदेव, सुदर्शन, बाहुबली, नन्दिमित्र, नन्दिषेण व गुणनिधि मुनिराज आदि के महाउपसर्ग नष्ट हुए। उपवास से जीव इन्द्र, अर्द्धचक्री, बलदेव व कामदेव के पद को प्राप्त करता है।

तीर्थङ्कर पद प्राप्त जीव

वज्जणाही विमलवाहणो पउमणाहो तह मेहरहो।
सीहरहो धणपदी य कट्टु अणसणं होज्ज तित्थो।।107।।

वज्रनाभि चक्रवर्ती, राजा विमलवाहन, राजा पद्मनाभ, राजा मेघरथ, राजा सिंहरथ, राजा धनपति अनशन करके तीर्थङ्कर हुए। (ये क्रमशः श्रीआदिनाथ, श्रीअजितनाथ, श्रीचन्द्रप्रभ, श्रीशान्तिनाथ, श्रीकुन्थुनाथ एवं श्रीअरनाथ तीर्थङ्कर हुए)

उपवास से उभयसुख

इन्द्रवज्रा छन्द

उक्किट्ठभावा य वदाण सुद्धी,
पूदं सुचित्तं च समत्तहेदू।
भव्वा पकुव्वंति महोववासं,
पावंति सिग्घं भवसिद्धिसोक्खं।।108।।

उपवाससे भाव उत्कृष्ट होते हैं, व्रतों की शुद्धि होती है, मन पवित्र होता है। उपवास समत्वभाव का कारण है। जो भव्यजीव ऐसे महोपवासको करते हैं वे शीघ्र संसार सुख व मोक्षसुखको प्राप्त करते हैं।

अन्तिम मङ्गलाचरण

संतिं पायसिंधुं च, जयकित्तिं देसभूसणं सूरिं।
रट्ठसंतं च विज्जाणंदं मम गुरुं णमंसामि।।109।।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी, महातपस्वी आचार्यश्री पायसागर जी, अध्यात्मयोगी आचार्यश्री जयकीर्ति जी, भारतगौरव आचार्यश्री देशभूषण जी एवं मेरे गुरु राष्ट्रसन्त आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराजको मैं नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ रचना हेतु

असुहणिवत्तीए गुरु-पसादेण अप्पबुद्धीए मए।
परूविदो जदि दोसा, सोहयंतु अभेयणाणी दु।।110।।

अशुभ की निवृत्ति के लिए, गुरुदेव की कृपा से मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा यह ग्रन्थ रचा गया। यदि इसमें दोष रह गए हों तो अभेदज्ञानी ग्रन्थ संशोधित करें।

प्रशस्ति

पदत्थ-घादिकम्म-परमेट्ठि-चेयणा-वीरद्धे पुण्णो।
अंककमे वइसाहे, आइरिय-वसुणंदिणा मए।।111।।

पदार्थ (9), घातिकर्म (4), परमेष्ठी (5) व चेतना (2) "अङ्कानां वामतो गतिः" से वीर निर्वाण संवत् 2549 में वैशाख माहमें यह ग्रन्थ मेरे (आचार्य वसुनन्दी) के द्वारा पूर्ण किया गया।

महाणुभावो

(महानुभाव)

सम्बोधन के मधुर शब्द जब हृदय में उतरते हैं, तब संवाद भी साधना बन जाता है। शब्दों पर अधिकार रखने वाला 'शब्द-साधक' ही साधर्मी के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

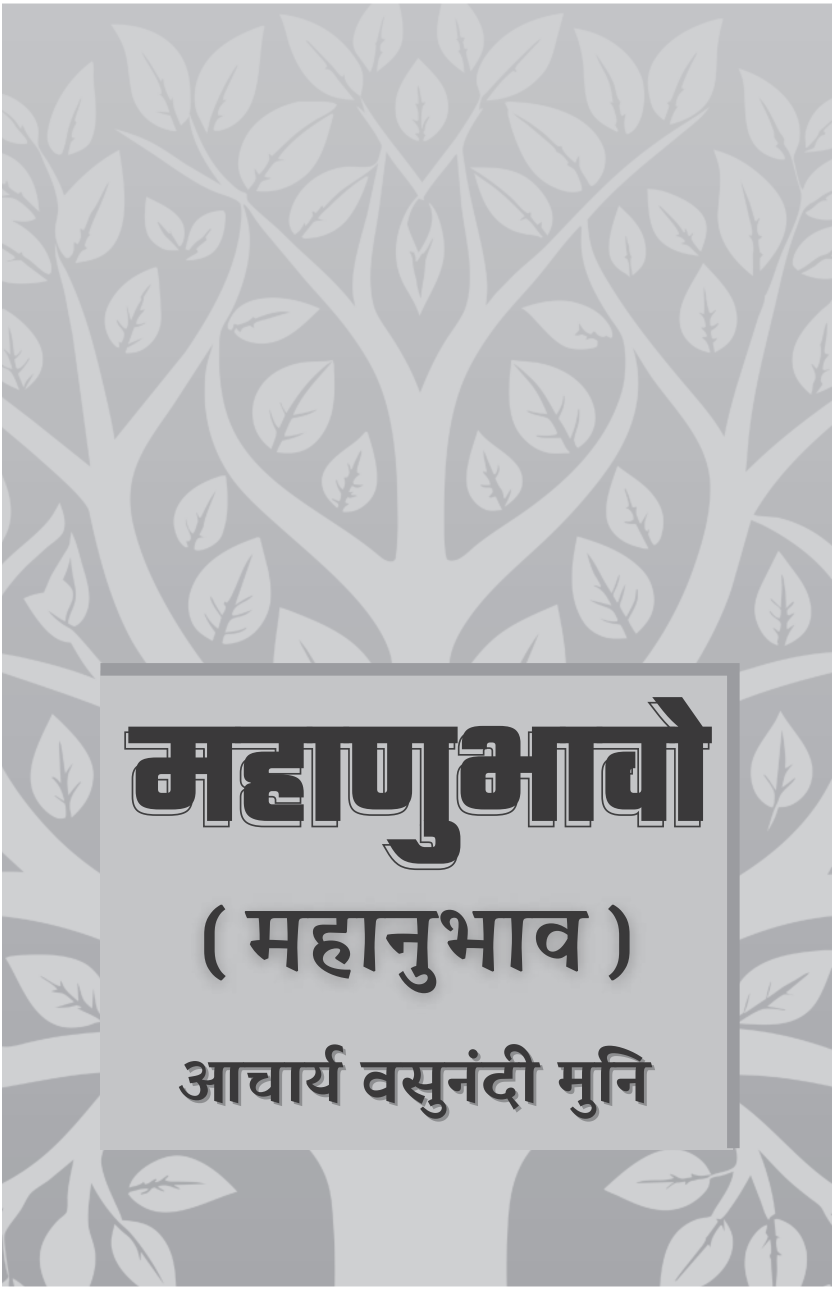

महाणुभावो

(महानुभाव)

आचार्य वसुनंदी मुनि

आचार्य वसुनंदी मुनिराज विरचित

महाणुभावो

(महानुभाव)

संपइयालस्स सव्व-जिणिंदा णिच्चं पंचपरमेट्ठी।
सगभयवत्तं लहिदुं, महाणुभावा परियंदामि॥1॥

वर्तमानकालके सभी जिनेन्द्र व पञ्चपरमेष्ठी महानुभावोंको निज भगवत्ताकी प्राप्तिके लिए मैं (आचार्य वसुनन्दी मुनि) नित्य नमस्कार करता हूँ।

अदीदयालस्स सव्व-तित्थेसा जिणधम्म-पवट्टगा य।
कल्लाणालया महाणुभावा पणमामि भत्तीइ॥2॥

अतीतकालके सभी तीर्थङ्कर, जिनधर्मप्रवर्तक और कल्याणके आलय स्वरूप सभी महानुभावोंको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

भावी अरिहा सिद्धा, सूरी पाढगा साहू सुपुज्जा।
महाणुभावा वंदे, भवतारग-तरणीव णिच्चं॥3॥

संसार-सागरसे तारनेके लिए नावके समान भावी अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु पूज्य महानुभावोंकी मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

बहुसंबोहणसद्दा, लोए जहाजोगं अवेक्खाए।
जह को भणेदि भव्वो, बंधुजणो सज्जणो भादू॥4॥

लोकमें अपेक्षापूर्वक यथायोग्य बहुतसे सम्बोधन शब्द हैं। जैसे कोई कहता है भव्य, कोई कहता है बंधुजन, कोई सज्जन और कोई भाई।

धम्मसिरोमणी सेट्ठ-हिदत्थी सिवत्थी महाणुभावो।
पाणणाहो य भयवो, महासयो धम्माहारो वि।।5।।

कोई धर्मशिरोमणि, कोई श्रेष्ठ, कोई हितार्थी कहता है, कोई मोक्षार्थी, कोई महानुभाव, कोई प्राणनाथ, कोई भगवान्, कोई महाशय और कोई धर्माधार भी कहता है।

सुह-संबोहणसद्दा, पउत्ता मुणीण आसण्णभवीहि।
इदरजणेहिं इदरा, किण्णु णेव पओजणं अत्थ।।6।।

आसन्नभव्योंके द्वारा गुणीजनोंके लिए शुभ सम्बोधन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है, एवं इतरजनोंके द्वारा इतर अर्थात् अशुभ संबोधन शब्दोंका प्रयोग किया जाता है किन्तु यहाँ इनका कोई प्रयोजन नहीं है।

सुसंबोहणसद्दा वि, सुह-सुहासव पुण्णबंध-हेदू य।
असुहासव-णिवत्तीइ, असुहसंवरस्स णिज्जराइ।।7।।

अच्छे संबोधन शब्द शुभ, शुभास्रव और पुण्यबन्धका हेतु हैं। वे अशुभ आस्रवकी निवृत्तिका, अशुभके संवरका एवं निर्जराका कारण हैं।

सहसद्देहि किरियाहि, अण्णजणाण सुद्धमणोभावेहि।
सुणिम्मला परिणामा, सज्जणाणं जहाजोग्गं दु।।8।।

शुभ शब्दोंसे, शुभ क्रियाओंसे व अन्य जनोंके लिए शुद्ध- मनोभावों से सज्जनोंके परिणाम यथायोग्य निर्मल होते हैं।

संबोहण-सद्दो सय, वत्ता- वत्तित्तं उज्जोदेदि हु।
सुहसंबोहणं विणा, मउडरहिदरायोव्व वत्ता।।9।।

सम्बोधन शब्द सदैव वक्ताके व्यक्तित्वको प्रकाशित करता है। शुभ सम्बोधनके बिना वक्ता मुकुटरहित राजाके समान जानना चाहिए।

सुहसंबोहण-हीणो, महिं विणा किसीव्व बीयं तरु व्व।
वा भोयणसामग्गिं, विणा सुभोयण-णिम्माणं व्व॥10॥

शुभसम्बोधनसे हीन वक्ता वैसेही है जैसे भूमिके बिना कृषि, बीजके बिना वृक्ष अथवा भोजनसामग्रीके बिना भोजननिर्माण। अर्थात् वह सम्यक् सुवक्ता नहीं, कुवक्ता है।

सुहसंबोहणं विणा, धम्मी ण रयणं रयणभूसणं व।
धम्मोवएसं णेव, खमो करिदुं पुण्णकज्जं ण॥11॥

शुभ संबोधनके बिना धर्मी वैसेही सम्भव नहीं है जैसे रत्नके बिना रत्नाभूषण। शुभ सम्बोधनके बिना व्यक्ति धर्मोपदेश या पुण्यकार्य करनेमें समर्थ नहीं है।

जदि संबोहण-सद्दो, उक्किट्ठो विशुद्धभावजणगो य।
सुहसंतिकारगो तो, उवएसो वि पहाणो वरो॥12॥

यदि सम्बोधन शब्द उत्कृष्ट, विशुद्धभावका जनक व सुख-शांतिका कारक होगा तभी वह उपदेश भी प्रधान व उत्तम हो सकता है।

सद्दाणचिंतसत्ती, साहणाराहणा-उवासणाणं।
हेदू तं विणा को वि, ण खमो सगप्पहिदं करिदुं॥13॥

शब्दोंकी शक्ति अचिन्त्य है। ये शब्द साधना, आराधना व उपासनाके हेतु हैं। उसके बिना कोईभी स्वात्महित करनेमें समर्थ नहीं है।

कस्स अवि उवएसस्स, पुव्वे सुमरंति सज्जणा इट्ठं।
मंगलायरणं सेट्ठ-सद्देहि देसंति सोदाण॥14॥

किसी भी उपदेशके पूर्व सज्जन इष्टका स्मरण करते हैं, मङ्गलाचरण करते हैं पुनः श्रेष्ठ शब्दों से श्रोताओं के लिए उपदेश देते हैं।

वदंति णेव सिविणे वि, धम्मणिंदगं अवमाणजणगं च।
सद्दं सज्जणो किण्णु, कुक्कणे खम्मंति सुद्धीइ॥15॥

सज्जन पुरुष स्वप्नमें भी धर्मनिन्दक और अपमानजनक शब्द नहीं बोलते किन्तु चूक होनेपर वे भावों की शुद्धिपूर्वक क्षमा माँगते हैं।

उवएसग-वत्तित्तं, पयडंते सया उवएस-सद्दा।
तं भादू णिवेदेमि, कुणह उत्तमवयणपओगं॥16॥

उपदेशके शब्द सदैव उपदेशकके व्यक्तित्वको प्रकट करते हैं इसलिए हे भाई! मैं निवेदन करता हूँ कि आप उत्तम वचनोंका प्रयोग करें।

महाणुभाव-सद्दस्स, कहिदुं खमो को पुण्णसामच्छं।
अस्स कहण-सुणणादो, जणिदाणंद-अणुभवगम्मो॥17॥

महानुभाव शब्दके पूर्ण सामर्थ्यको कहनेमें कौन समर्थ है। इसके कहने व सुननेसे उत्पन्न आनन्द अनुभवगम्य ही है।

महाणुभावो सद्दो, कत्थ पउत्तो काणं जीवाणं।
सग-भाव-विसुद्धीए, अस्सिं गंथम्मि परूवेमि॥18॥

इस महानुभाव शब्दका प्रयोग किन जीवोंके लिए, कहाँ होता है, उसका अपने भावोंकी विशुद्धिपूर्वक मैं इस ग्रन्थ में प्ररूपण करता हूँ।

जस्स मणे पडिक्खणे, उत्तमखमादी दसधम्मा सो हु।
पुरिसो महाणुभावो, भावी सिद्धो लोयपुज्जो।।19।।

जिसके मनमें प्रतिक्षण उत्तम-क्षमादि दस धर्म होते हैं वह पुरुष लोकपूज्य भावी सिद्ध महानुभाव है।

पहुभत्तीइ पसमिदा,कोहादी सव्वकसाया दु जस्स।
सो खलु महाणुभावो, सिरीजिणसासण-सुथंभोव्व।।20।।

प्रभुभक्तिसे जिसकी क्रोधादि सभी कषाय प्रशमित होती हैं; श्री जिनशासनके स्तम्भके समान वह महानुभाव होता है।

जो रयणत्तयजुत्तो, विवज्जिदो विसयकसायपावादु।
सो महाणुभावो तं, भाविसिद्धं णमंसामि हं।।21।।

जो विषय-कषाय व पापसे रहित हैं एवं रत्नत्रयसे युक्त हैं वह महानुभाव हैं। उन भावी सिद्धको मैं नमस्कार करता हूँ।

जस्स ण मदो मच्छरो, मायारूवकुडिलभावा कया वि।
सो महाणुभावो जं, भावा महाणरूवा तस्स ।।22।।

जिसके अहङ्कार, मात्सर्य एवं मायारूप कुटिलभाव कदापि नहीं है वह महानुभाव है क्योंकि उसके भाव महान् रूप होते हैं।

सवर-असुहस्स हंता, सुहकत्ता सत्तीए सुभावेहि।
जे ते महाणुभावा, लोयम्मि सय पसंसणीया॥23॥

जो स्व-पर अशुभके हन्ता हैं, शुभ भावोंसे शक्तिपूर्वक शुभकर्ता हैं वे महानुभाव हैं एवं लोकमें सदा प्रशंसनीय हैं।

सुद्धभावजुत्ता सद्दिट्ठी अणुव्वदी महव्वदी वा।
भावी जिणिंदा महाणुभावा सया वंदणीया॥24॥

जो शुद्धभावसे युक्त सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती वा महाव्रती भावी जिनेन्द्र हैं वे महानुभाव सदैव वन्दनीय हैं।

जाण उक्किट्ठ-भावा, जिणभत्तीए णिग्गंथविणयस्स।
णियमा महाणुभावा, ते भावी मुत्तिसिरिकंता॥25॥

जिनके जिनभक्ति व निर्ग्रन्थ-गुरुओंकी विनयके उत्कृष्ट भाव हैं वे महानुभाव नियमसे भावी मुक्तिश्रीके कान्त हैं।

लहिय बहुविहवं णिहिं, णो मदेण उम्मत्ता कया वि जे।
ते सुहभावसंजुदा, संसणीया महाणुभावा॥26॥

जो बहुत वैभव व निधिको प्राप्तकर कभी मदसे उन्मत्त नहीं होते वे शुभभावोंसे युक्त महानुभाव सदैव प्रशंसनीय हैं।

मिच्छत्ताइ-वज्जिदा, सम्मत्ताइ-सुहभाव-परिणदा य।
जे ते महाणुभावा, भावी जिणा वंदणीया दु॥27॥

जो मिथ्यात्वादिसे विवर्जित एवं सम्यक्त्वादि शुभभावोंसे परिणत हैं वे भावी जिनेन्द्र महानुभाव हैं एवं सदा वन्दनीय हैं।

मदहासादी णुत्तो, भावा वोच्छिण्णा रायादीदो।
जस्स हु महाणुभावो, मद्दवाइ-गुणोवेदो सो।।28।।

जिसके मद, हास्य आदि नहीं कहे गए हैं एवं भाव रागादिसे रहित हैं और जो मार्दवादि गुणोंसे युक्त हैं, वह महानुभाव हैं।

णाणपयासो चित्ते, जस्स अहंकाराइ-विवज्जिदो य।
सो भावि-सिद्धो महाणुभावो भणिदो जिणसमये।।29।।

जिसके चित्तमें अहङ्कार आदिसे रहित ज्ञानका प्रकाश है वह भावी सिद्ध जिनशासनमें महानुभाव कहा गया है।

मूलाहारेण तरू, जह लोयो वादवलयाहारेण।
भव्वत्तादी सुगुणा, तह जस्स महाणुभावो सो।।30।।

जैसे जड़के आधार वृक्ष है, वातवलयके आधारसे लोक है उसी प्रकार जिसके भव्यत्वादि सुगुण हैं वह महानुभाव है।

सव्वण्हु-धम्मसहाइ, धम्मोवएसं सुणंति जे के वि।
ते चिय महाणुभावा, णेव कयावि इदरा णेया।।31।।

जो कोई भी जीव सर्वज्ञप्रभुकी धर्मसभामें उपदेश सुनते हैं वे निश्चयसे महानुभाव जानने चाहिए। इसके विपरीत महानुभाव नहीं हैं।

मेत्तं एगखणस्स वि, रुई जिणधम्मे णिग्गंथेसुं च।
जिणगी-जिणदेवेसुं, जस्स चिय महाणुभावो सो।।32।।

जिसकी जिनधर्म, निर्ग्रन्थ गुरु, जिनवाणी व जिनेन्द्रदेवों में एकक्षणमात्रकी भी रुचि हो जाती है वह महानुभाव है।

महाणुभावत्तादो, देंति जिणा उवएसं भव्वाणं।
अभव्वाणं कयावि ण, जम्हा ते अंधपहाणोव्व॥33॥

भव्यजीवोंमें महानुभावत्व होनेसे जिनेन्द्रदेव भव्यजीवोंको ही उपदेश देते हैं किन्तु अभव्योंको कदापि नहीं देते क्योंकि वे अन्ध पाषाणके समान हैं।

महाणुभावा समये, आसण्णभव्वा णिगोदजीवा वि।
अभव्वो सुरो वि णेव, गहणीयो तेण सद्देणं॥34॥

आसन्नभव्य निगोदिया जीव भी जिनशासनमें महानुभाव जानने चाहिए। किन्तु अभव्यदेव भी उस महानुभाव शब्दसे ग्राह्य नहीं हैं।

सव्वट्ठसिद्धिवासी, इग-बे-आइ-अप्पभवधारगा य।
सव्वा महाणुभावा, लोयंतिग सची सक्कादी॥35॥

एक-दो आदि अल्पभवके धारक, सर्वार्थसिद्धिके वासी अहमिन्द्र, लौकान्तिक देव, शची-इन्द्राणी, सौधर्म-इन्द्रादि सभी महानुभाव हैं।

सव्वसिद्धियर-सिद्धा, सयलगुणधारगा महाणुभावा।
णमामि अप्पसिद्धीइ, कंता सया मुत्तिरमाए॥36॥

सर्वसिद्धिके कारक, सकलगुणके धारक, मुक्ति रूपी स्त्रीके कान्त सभी सिद्ध महानुभावोंको आत्मसिद्धिके लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

कम्मविहीणा सुद्धा, चेयणाए सुद्धगुण-संजुत्ता।
णियला विमला अयला, महाणुभावा पणमामि हं।।37।।

कर्मोंसे विहीन शुद्ध चेतनाके गुणोंसे युक्त, निकल, विमल व अचल सभी महानुभावोंको मैं नमस्कार करता हूँ।

णमामि जिणिंदवाणिं, सव्वसंदेहविणासगं णिच्चं।
महाणुभावा भव्वा, गहंते तं सवरहिदत्थं।।38।।

सर्वसन्देहको नाश करने वाली श्री जिनेन्द्रप्रभुकी वाणीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। भव्य महानुभाव उस जिनेन्द्रवाणीको स्वपर-हितके लिए ग्रहण करते हैं।

सिद्धणंतणुवमाणं, आइ-मज्झ-अंत-विरहिदाणं तह।
अंतादीद-गुणाणं, णमो सय महाणुभावाणं।।39।।

आदि, मध्य व अन्तसे रहित, अनन्तगुणोंसे युक्त, अनुपम, अनन्त सिद्ध महानुभावोंको सदा नमस्कार हो।

सयलगुणपुंजाणं च, दव्वभावणोकम्म-विरहिदाणं।
अच्चुदपदाणं णमो, महाणुभावाण सिद्धाणं।।40।।

सकलगुणोंके पुञ्ज, द्रव्य-भाव-नोकर्मसे रहित, अच्युत पद वाले सर्व सिद्ध महानुभावोंको नमस्कार हो।

अप्पुप्पण्णसुहाणं, दव्वगुणभावसंजुत्ताणं तह।
सासयसुद्धप्पाणं, णमो सय महाणुभावाणं।।41।।

आत्मोत्पन्न सुखसे युक्त तथा द्रव्य, गुण व भावसे संयुक्त शाश्वत शुद्धात्मा महानुभावोंको सदा नमस्कार हो।

घादिकम्मविवज्जिदा, अणंतचउक्कजुदा य अरिहंता।
उहयसिरी-सुभूसिदा, महाणुभावा परियंदामि॥42॥

घातियाकर्मोंसे रहित, अनन्त चतुष्टयसे युक्त, दोनों प्रकारकी लक्ष्मी अर्थात् अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मीसे विभूषित अरिहन्त महानुभावोंको नमस्कार करता हूँ।

सव्वण्हुं गदरायं, अट्ठारस-दोसवज्जिदं धीरं।
महाणुभावं वंदे, अप्पगुणलद्धीइ भत्तीइ॥43॥

अट्ठारह दोषोंसे रहित, धीर, सर्वज्ञ, वीतराग महानुभावको आत्मगुणोंकी प्राप्तिके लिए भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ।

उसहाइवीर-जिणाण, धम्मपवट्टग-महाणुभावाणं।
विगदरायदोसाणं, णमो सया जोगत्तयेणं॥44॥

राग व द्वेषसे रहित श्रीऋषभादि महावीर जिनधर्म-प्रवर्तक महानुभावोंको योगत्रयसे सदा नमस्कार हो।

धम्मपवट्टग-मुसहं, जुगसेट्ठं जेट्ठं च सव्वदंसिं।
अहिपं महाणुभावं, धम्मकम्मदेसगं थुवेमि॥45॥

युगश्रेष्ठ, युगज्येष्ठ, सर्वदर्शी, अधिप, धर्म व कर्मके उपदेशक, धर्मप्रवर्तक श्री ऋषभनाथ महानुभावकी मैं स्तुति करता हूँ।

कम्मविजेदुं अजिदं, सुपुत्तं तह जिदसत्तुविजयाणं।
अक्खयविहवसंजुदं, परियंदामि महाणुभावं॥46॥

राजा जितशत्रु व रानी विजयाके सुपुत्र, कर्म विजेता, अक्षय वैभवसे संयुक्त श्रीअजितनाथ महानुभावको मैं नमस्कार करता हूँ।

भवणासगं संभवं, जिणं अप्पम्मि पाविदुं सिवत्तं।
महाणुभावं वंदे, सव्वकज्जसिद्धिकारगं दु।।47।।

सर्वकार्योंकी सिद्धि करनेवाले, संसारके नाशक श्री सम्भवनाथ महानुभावकी अपनी आत्मा में शिवत्वकी प्राप्तिके लिए मैं वन्दना करता हूँ।

पणमामि अहिणंदणं, महाणुभावं च अप्पगुणणिलयं।
अंतादीद-णिहिजुदं, अप्पगुणणंदं पावेदुं।।48।।

जो आत्मगुणोंके निधान हैं, अन्तातीत निधिसे युक्त हैं उन श्रीअभिनन्दन महानुभावको आत्मगुणोंके आनन्दकी प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

सुमदिदायगं सुमदिं, धम्मोवदेसगं महाणुभावं।
केवलसुमदिं लहिदुं, बोहिं पणमामि तिजोगेहि।।49।।

सुमतिदायक, धर्मोपदेशक श्रीसुमतिनाथ महानुभावको केवलज्ञान व बोधिकी प्राप्तिके लिए मैं तीनों योगोंसे नमस्कार करता हूँ।

पउमवण्णिं पउमजिणवर-मुहयसिरीजुत्तं णमंसामि।
सिवपउमं लहिदुं हं, महाणुभावं मुत्तिकंतं।।50।।

जो दोनों प्रकारकी (अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग) लक्ष्मीसे युक्त हैं, मुक्तिरूपी स्त्रीके कान्त हैं, उन पद्मवर्णी श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्र महानुभावको मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

भवपासं विच्छेदुं, सुपासणाहजिणं महाणुभावं।
सत्थिगचिण्ह-संजुदं, सुरासुरेहि वंदं वंदे।।51।।

जो स्वास्तिक चिह्नसे युक्त हैं, सुर-असुरोंके द्वारा वंद्य हैं उन श्रीसुपार्श्वनाथ जिन महानुभावकी वन्दना मैं भवपाशके विच्छेदके लिए करता हूँ।

चंदप्पहं जिणिंदं, चंदंकजुदं महासेणपुत्तं।
गुणणिहि-महाणुभावं, वंदे वसुविहिं णासेदुं।।52।।

चंद्र चिह्नसे युक्त, राजा महासेनके पुत्र, गुणनिधि श्रीचंद्रप्रभ जिनेन्द्र महानुभावकी वसुकर्मोंको नाश करनेके लिए मैं वन्दना करता हूँ।

थुवमि मोक्खविहिकत्तुं, सिरीसुविहिणाहं महाणुभावं।
भवदुक्खभंजगं तित्थेसं पुप्फदंतं णिच्चं।।53।।

संसार दु:खके नाशकरने वाले, मोक्षविधिके कर्त्ता तीर्थेश श्रीसुविधिनाथ वा श्रीपुष्पदंत महानुभावकी मैं नित्य स्तुति करता हूँ।

कप्पतरुचिण्हजुत्तं, स-वराण सीयलं महाणुभावं।
पाविदुं सीयलत्तं, सीयलणाहं सया थुवेमि।।54।।

कल्पवृक्ष चिह्नसे युक्त, स्व-परके लिए शीतल श्री शीतलनाथ महानुभावकी शीतलता पानेके लिए मैं सदा स्तुति करता हूँ।

सुहकज्जेसुं आगद-सव्वविग्घाइं अंतरायादो।
खयिदुं सक्कं महाणुभावं सेयंसं पणमामि।।55।।

जो अन्तराय कर्मसे शुभ कार्योंमें आनेवाले सभी विघ्नोंको क्षय करनेमें समर्थ हैं उन श्रीश्रेयांसनाथ महानुभावको मैं नमस्कार करता हूँ।

पढमबालजदिं अरुण-देहिं वसुपुज्ज-सुपुत्तं वंदे।
सव्वरोय-विणासगं, तित्थेसं महाणुभावं च॥56॥

राजा वसुपूज्यके पुत्र, लालवर्णी देहसे युक्त, सर्वरोगोंका नाश करने वाले प्रथम बालयति तीर्थंकर (श्री वासुपूज्य) महानुभावकी मैं वन्दना करता हूँ।

विमलं महाणुभावं, विमलभावस्स य विमलसरूवस्स।
परमविमलणाणजुदं, वंदेमि विमलपदट्ठिदीइ॥57॥

परम विमलज्ञानसे युक्त श्रीविमलनाथ महानुभावकी वन्दना विमलभाव, विमलस्वरूप व विमल पदमें स्थितिके लिए करता हूँ।

अंतादीद-गुणं सय, सिरि अणंतणाहं महाणुभावं।
सव्वकंदप्परहिदं, अणंतगुणपत्तीइ वंदे॥58॥

जो सर्व कन्दर्प भावसे रहित हैं अन्तातीत गुणोंसे युक्त हैं, उन श्रीअनन्तनाथ महानुभावकी अनन्तगुणोंकी प्राप्तिके लिए मैं वन्दना करता हूँ।

जीवदयातच्चसच्च-उत्तमखमाइ-धम्मुवदेसगं च।
धम्मणाहं संथुवमि, महाणुभावं गुणं लहिदुं॥59॥

जीवदया, तत्त्व, सत्य, उत्तम क्षमादि धर्मके उपदेशक श्रीधर्मनाथ महानुभावकी स्तुति मैं गुणोंकी प्राप्तिके लिए करता हूँ।

विस्ससंतिकारगं च, कसाय-सामग-उवदेसगं सया हि।
संतिजिणं तित्थेसं, महाणुभावं सय अंचेमि॥60॥

विश्वशांतिके कारक, कषायके शमनका उपदेश देने वाले तीर्थेश श्रीशान्तिनाथ महानुभावकी मैं सदा अर्चना करता हूँ।

कुंथु-आइ-जीवाणं, रक्खगं चक्किं काम-तित्थेसं।
णमामि महाणुभावं, कुंथुणाहं तिजोगेहि हं॥61॥

कुन्थु आदि जीवोंके रक्षक, चक्रवर्ती, कामदेव व तीर्थङ्कर श्रीकुन्थुनाथ महानुभावको मैं तीनों योगोंसे नमस्कार करता हूँ।

अरजिणं धम्मपवरं, गुणगंभीरं तह महाणुभावं।
मच्छचिण्हसंजुत्तं, तिविहपदसहिदं णमंसामि॥62॥

जो गुणोंमें गम्भीर हैं, मछली चिह्नसे संयुक्त हैं, तीन प्रकारके (चक्रवर्ती, कामदेव व तीर्थंकर) पदसे सहित हैं उन धर्मप्रवर श्रीअरनाथ-जिन महानुभावको मैं नमस्कार करता हूँ।

मोहमल्लविजेदुं च, महाणुभावं तहा हाडगवण्णिं।
घडंकजुदं बालजदि-मल्लिणाहं सय णमंसामि॥63॥

स्वर्णवर्णी, कलश चिह्नसे युक्त, मोहरूपी मल्लके विजेता, बालयति श्रीमल्लिनाथ महानुभावको मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

कच्छवचिण्हजुदं सुर-असुरसुपूजिदं मुणिसुव्वदं हं।
सासयसुव्वदधारग-महाणुभावं परियंदामि॥64॥

जिनका चिह्न कछुआ है, जो सुर व असुरोंके द्वारा पूजित हैं, जो शाश्वत सुव्रतोंके धारक हैं उन श्रीमुनिसुव्रतनाथ महानुभावको मैं नमस्कार करता हूँ।

णमिदं सुरासुरेहिं, णमिणाहं केवलणाणदिणेसं।
णीलपउमंकजुत्तं, महाणुभावं सया थुवेमि॥65॥

जो नीलपद्म चिह्नसे युक्त हैं, केवलज्ञान रूपी सूर्य हैं, सुरासुरोंके द्वारा नमित श्रीनमिनाथ महानुभावकी मैं सदा स्तुति करता हूँ।

जदुवंस-तिलगभूदं, णेमिजिणं किण्हवण्णि-भादुजुदं।
कम्मुम्मूलगं महाणुभावं णमामि तिजोगेहि॥66॥

जो यदुवंशके तिलक थे, श्यामवर्ण वाले कृष्ण जिनके भाई थे, ऐसे कर्मोंका उन्मूलन करने वाले श्रीनेमिनाथ जिन महानुभावको मैं तीनों योगोंसे नमस्कार करता हूँ।

पत्तकेवलणाणं च, कमठकिद-घोरुवसग्गं जयित्ता।
समेण अहिचिण्हजुदं, सम्मेदादो गदं मोक्खं॥67॥

केकीकंठसरीरिं,सेविदं धरणिंद-पउमावदीहि।
वंदे महाणुभावं, देवहिदेवं पासणाहं॥68॥

कमठ द्वारा किए गए घोर उपसर्गको समत्वभावसे जीतकर जिन्होंने केवलज्ञानको प्राप्त किया, जो सर्प चिह्नसे युक्त हैं, जिन्होंने सम्मेदशिखरसे मोक्ष प्राप्त किया, जिनके शरीरका

वर्ण मयूर कण्ठके समान था, जो धरणेन्द्र व पद्मावतीसे सेवित हैं उन महानुभाव देवाधिदेव श्रीपार्श्वनाथ भगवानकी मैं वन्दना करता हूँ।

कम्मकक्खदाहगं च, महावीराइ-पणणामधारगं।
महाणुभावं देवं, पुज्जेमि जिणत्तं लहेदुं।।69।।

कर्मरूपी वनको जलाने वाले, श्रीमहावीर आदि पाँच नामके धारक जिनदेव महानुभावकी जिनत्वकी प्राप्तिके लिए मैं पूजा करता हूँ।

सीमंधर-पहुदि-अजिद-वीरियंत-विज्जमाण-तित्थयरा।
विदेहखेत्ते वंदे, खेमंकरा महाणुभावा।।70।।

विदेहक्षेत्रमें विद्यमान, कल्याणकारी श्रीसीमंधरसे लेकर श्रीअजितवीर्य पर्यन्त तीर्थङ्करों महानुभावोंकी मैं नित्य वन्दना करता हूँ।

भावी तित्थयरा तह, धम्मपवट्टगा महाणुभावा य।
अट्ठकम्मं णासिदुं, अट्ठंग-णमणं कुणेमि हं।।71।।

भावी तीर्थङ्कर, धर्मप्रवर्तक महानुभावोंको अष्टकर्मके नाशके लिए मैं अष्टाङ्ग नमस्कार करता हूँ।

अस्स देसस्स णामो, भारदं होज्ज सय भरदादो तं।
उसहणाह-सुत्त-पढम-चक्किं महाणुभावं थुवमि।।72।।

जिन भरत चक्रवर्तीके नामसे इस देशका नाम भारत पड़ा उन श्रीवृषभनाथके पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत महानुभावकी मैं स्तुति करता हूँ।

उसहतित्थयर-पुत्तं, सुणंदाए भरद-भादुं कामं।
महाणुभावं वंदे, सिरी-बाहुबलिं जगपुज्जं॥73॥

श्रीवृषभनाथ तीर्थङ्कर व महारानी सुनन्दाके पुत्र, भरत चक्रवर्तीके भाई, कामदेव, जगत्पूज्य श्रीबाहुबलि महानुभावकी मैं वन्दना करता हूँ।

अंत-भद्दबाहु-सहिद-सव्व-सुदकेवली महाणुभावा।
वीरजिणस्स सासणे, बोहिं लहिदुं परियंदामि॥74॥

वीरजिनके शासनमें अंतिम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामी सहित सभी श्रुतकेवली महानुभावोंको बोधिकी प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

जदी मुणी अणगारा, दियंबरा समणा-णिग्गंथ-रिसी।
तियाले तिलोयपुज्ज-महाणुभावा परियंदामि॥75॥

यति, मुनि, अनगार, दिगम्बर श्रमण, निर्ग्रन्थ व ऋषि, तीनों कालोंमें त्रैलोकपूज्य इन महानुभावोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

ऊणसट्ठि-समहिद-चउदससया उसहसेणाइ-गणेसा।
इड्ढिजुदा णमंसामि, महाणुभावा विसुद्धीए॥76॥

ऋद्धि युक्त चौदह सौ उनसठ (1459) श्री वृषभसेनादि गणधर देव महानुभावों को मैं विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

वादी पडिवादी वेगुव्वियइड्ढिधारगा गुणणिलया।
लोयपालगा णमामि, जगपुज्जा महाणुभावा य॥77॥

गुणोंके निलय, लोकपालक, जगद्पूज्य, विक्रिया ऋद्धिके धारी एवं वादी-प्रतिवादी मुनिराज महानुभावोंको मैं नमस्कार करता हूँ।

मणोण्णा सिक्खा कुला, तवस्सी साहू गिलाणा सूरी।
पाढग-महाणुभावा, धम्मधुरंधरा णमंसामि।।78।।

मनोज्ञ, शैक्ष्य, कुल, तपस्वी, साधु, ग्लान, आचार्य व पाठक धर्मधुरन्धर महानुभावोंको मैं नमस्कार करता हूँ।

पुलाग-बकुस-कुसीलाण्हादगा-णिग्गंथा य केवलिणो।
भव्वेहि वंदणीया, सव्वमहाणुभावा वंदे।।79।।

भव्योंके द्वारा वन्दनीय पुलाक, बकुश, कुशील, स्नातक व निर्ग्रन्थ मुनि एवं केवलीजिन इन सभी महानुभावोंकी मैं वन्दना करता हूँ।

सच्चंधर-विजयाणं, सुद-जीवंधरं मसाणे जादं।
महाणुभावं सुपुण्णवंतं णमामि भवं खयिदुं।।80।।

राजा सत्यन्धर व रानी विजयाके पुत्र जीवन्धर श्मशानमें उत्पन्न हुए। उन सुपुण्यवान् महानुभावको मैं संसार क्षय लिए नमस्कार करता हूँ।

अंतणुबद्धकेवलिं, कदतवं वउलखेडाइ पणमामि।
महुराए मोक्खगदं, जंबुसामिं महाणुभावं।।81।।

अन्तिम अनुबद्धकेवली जिन्होंने (श्रीजम्बूस्वामी तपोस्थली) वोलखेड़ामें तप किया एवं मथुरासे मोक्षको प्राप्त किया उन श्रीजम्बूस्वामी महानुभावको मैं नमस्कार करता हूँ।

पुव्वभवे उसहदास-सेट्ठि-गेहम्मि सुहगो गोवालो।
वंदे महामंतेण, सुदंसणं महाणुभावं दु॥82॥

जो पूर्वभवमें वृषभदास श्रेष्ठीके घरमें सुभग नामक ग्वाला हुआ। महामन्त्रसे जो सुदर्शन हुआ उन सुदर्शन महानुभावकी मैं वन्दना करता हूँ।

तुसमासं घोसंतो, भावविसुद्धीए लहीअ मोक्खं।
सिवभूदि-महाणुभाव-महं वंदे मोक्खपत्तीइ॥83॥

जिन मुनि शिवभूति महानुभावने तुष-मास (दाल अलग-छिलका अलग) कहते हुए भावविशुद्धिपूर्वक मोक्ष प्राप्त किया उन शिवभूति महानुभावकी मैं मोक्षप्राप्तिके लिए वन्दना करता हूँ।

सिरीपउमं वसुबलं, दसरहसुदं मज्जादाणरवरं।
वंदे महाणुभावं, भरदभादुं, लद्धमोक्खं च॥84॥

राजा दशरथके पुत्र, भरतके भाई, आठवें बलभद्र, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया उन महानुभावकी मैं वन्दना करता हूँ।

देवेहिं परिक्खिदो, मेहरहो महाणुभावो दयाइ।
होही य संतिणाहो, तिपदधारगं पणमामि तं॥85॥

देवोंके द्वारा परीक्षित राजा मेघरथ महानुभाव दयाके कारण श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। तीन पदके धारी उन श्रीशान्तिनाथ भगवानको मैं नमस्कार करता हूँ।

किण्हो णवमो हरी य, ओसहिदाणेण होज्ज तित्थयरो।
महाणुभावो हवेज्ज, पणकल्लाणणिहि-धारगो दु॥86॥

नवम नारायण श्रीकृष्ण महानुभाव औषधिदानसे पञ्च-कल्याणक-निधिके धारक तीर्थङ्कर होंगे।

भारद-रायो सेणिग-सुद-अजादसत्तू महाणुभावो।
जिणसासणपहावगो, मण्णो तह णिग्गंथभत्तो॥87॥

राजा श्रेणिक का पुत्र, जिनशासन प्रभावक, निर्ग्रन्थगुरुओंका भक्त, भारतका राजा अजातशत्रु महानुभाव माननीय है।

पउमेण जिणपूयाइ, धणदत्त-गोवाल-महाणुभावो।
होज्ज राय-करकंडू, तं भावि-सिद्धं णमंसामि॥88॥

कमलसे जिनपूजा करनेसे महानुभाव धनदत्त ग्वाला राजा करकण्डु हुआ। उन भावी सिद्धको मैं नमस्कार करता हूँ।

चंद-बिंदु-असोगाण, गुरु-चाणक्क-महाणाणी अंते।
मुणी अणल-उवसग्गं, सहिय देवो महाणुभावो॥89॥

राजा चन्द्रगुप्तमौर्य, राजा बिन्दुसार व राजा अशोकके गुरु महाज्ञानी महानुभाव चाणक्यमुनि अन्तमें अग्निका उपसर्ग सहनकर देव हुए।

दिक्खिदो णंदिमित्तो, विणयगुत्त-मुणिणा चिय अग्गभवे।
चंदगुत्त-मोरियो दु, पुणो महाणुभावो समणो॥90॥

विनयगुप्त मुनिराजसे दीक्षित श्रीनन्दिमित्र मुनिराज आगे भवमें राजा चन्द्रगुप्तमौर्य हुए और पुनः वे महानुभाव श्रमण हुए।

वीरजिणसमवसरणे, पुच्छिदा पण्हा सट्ठिसहस्सा दु।
सेणिगेण भावि-तित्थ-महापउम-महाणुभावेण।।91।।

श्रीवीरजिनेन्द्रके समवसरणमें राजा श्रेणिक ने 60,000 प्रश्न पूछे। वे श्रेणिक भविष्यमें तीर्थङ्कर महापद्म महानुभाव हुए।

जेणं सत्तसयगुहा, णिम्माविदा खंडुदय-गिरीसु सो।
महाणुभावो संसो, खारवेलो कलिंगचक्की।।92।।

जिन्होंने खण्डगिरी-उदयगिरीमें 700 गुफाओंका निर्माण कराया, वे कलिङ्ग चक्रवर्ती महानुभाव सम्राट खारवेल प्रशंसनीय हैं।

लहीअ कुजोणिं राय-दंडगो मुणीसु उवसग्गं कडुअ।
जडाउ-महाणुभावो, मुणिदाणणुमण्णगो भद्दो।।93।।

राजा दण्डकने मुनियोंपर उपसर्ग करके कुयोनिको प्राप्त किया। पुनः आगे चलकर वह मुनिके आहारदानकी अनुमोदना करने वाला भद्र पक्षी जटायु महानुभाव हुआ।

किदंदवक्को दु राम-सेणावदी दियंबर-मुणी होज्ज।
सुपुज्ज-महाणुभावो, रामसंबोहगो सुरो पुण।।94।।

श्रीरामके सेनापति कृतान्तवक्र दिगम्बर मुनिराज हुए। पूज्य वे महानुभाव पुनः देव हुए जिन्होंने रामको सम्बोधन दिया।

सेट्ठी णायदत्तो दु, छलेण दुद्दरो जादि-सिमरणेण।
समवसरणं गमंतो, महाणुभावो सुरो होही।।95।।

श्रेष्ठी नागदत्त छलसे मेंढक हुआ। पुनः जातिस्मरणसे समवसरणमें जाता हुआ वह महानुभाव देव हुआ।

मुणिरक्खाइ समप्पिद-सूगरो सीहेणं भिडिय विविणे।
महाणुभावो सग्गे, देवो पस्स धम्म-पहावं॥96॥

मुनिराजकी रक्षाके लिए समर्पित शूकर जङ्गलमें सिंहसे भिड़कर (मृत्युको प्राप्तकर) वह महानुभाव स्वर्गमें देव हुआ। अहो! धर्मका प्रभाव देखो।

पाविदो मोक्खो सगरचक्कि-जिणभत्त-महाणुभावेणं।
विरत्तो होच्चा देव-मणिकेदु-संबोहणेणं दु॥97॥

देव मणिकेतुके संबोधनसे विरक्त होकर जिनभक्त महानुभाव चक्रवर्ती सगरने मोक्ष प्राप्त किया।

धणदेवो पालित्ता, सच्चाणुव्वदं महाणुभावो दु।
होज्ज सुरपुज्जो सच्च-वद-महिमं जाणिय धरेज्जा॥98॥

सत्याणुव्रतका पालन कर धनदेव महानुभाव देवोंके द्वारा पूज्य हुआ। अतः सत्यव्रतकी महिमाको जानकर उसे धारण करो।

णिण्णामगो णिग्गंथ-सेवाइ दयाए महाणुभावो।
होज्ज णवमहरि-किण्हो, करेज्ज साहुसेवं तम्हा॥99॥

निर्ग्रन्थ गुरुकी सेवा व करुणासे निर्नामिक महानुभाव नौवें नारायण श्रीकृष्ण हुए। अतः साधुओंकी सेवा करनी चाहिए।

वेज्जावच्चं किच्चा, महाणुभाव-णंदिसेणो होज्जा।
णिग्गंथाण वसुदेव-पुण्णवंतो णेमि-भादू य॥100॥

निर्ग्रन्थ मुनिराजोंकी वैयावृत्ति करके नन्दिषेण महानुभाव तीर्थङ्कर नेमिनाथके भाई पुण्यवान् वसुदेव हुए।

रुप्पखुर-सुदो सुवण्ण-खुरो महाणुभावो महामंतं।
जविय होज्ज सुरो सेट्ठि-उसहदास-संबोहणेणं॥101॥

श्रेष्ठी वृषभदासके सम्बोधनसे रूप्यखुर चोरका पुत्र सुवर्णखुर चोर महानुभाव महामन्त्रका जाप कर देव हुआ।

यमपालो मादंगो, चउदहमीइ अहिंसं पालित्ता।
पस्सह वद-माहप्पं, भो सुरपुज्जमहाणुभावो॥102॥

चतुर्दशीके दिन अहिंसाव्रतका पालनकर महानुभाव यमपाल चाण्डाल देवोंके द्वारा पूज्य हुआ। अहो! व्रतका माहात्म्य तो देखो।

उवगूहणे पसिद्धो, सद्दिट्ठि-जिणदत्त-महाणुभावो।
धम्मरक्खगो सुरपुज्जो होज्ज सिवो थोगयाले॥103॥

उपगूहन अङ्गमें प्रसिद्ध, धर्मका रक्षक, सम्यग्दृष्टि जिनदत्त महानुभाव देवोंके द्वारा पूज्य हुए एवं अल्पसमय में सिद्ध होंगे।

ठिदिकरणम्मि पसिद्धो, मुणी वारिसेणो महाणुभावो।
चेलणा-पुत्तो धम्म-पहावगो पावीअ मोक्खं॥104॥

महारानी चेलनाके पुत्र, स्थितिकरण अङ्गमें प्रसिद्ध, धर्म प्रभावक, महानुभाव वारिषेण मुनिराजने मोक्ष प्राप्त किया।

समत्तेण वग्घीए, किदुवसग्गं सहिय सुकोसलेणं।
महाणुभावेण खयिय, सव्वकम्मं लहिदो मोक्खो॥105॥

व्याघ्रीके द्वारा किए गए उपसर्गको समता भावसे सहनकर महानुभाव सुकौशल मुनिराजने सर्व कर्मों का क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया।

मुणिणिंदाइ सहंतो, दुहं वाउभूदी पुण सुकुमालो।
महाणुभावो सहित्तु, उवसग्गं होज्ज अहमिंदो॥106॥

मुनिनिन्दासे दु:खोंको सहते हुए वायुभूति सुकुमाल हुए पुन: मुनिराज सुकुमाल महानुभाव उपसर्ग सहनकर अहमिन्द्र हुए।

मरणासण्णो साणो, सुणिय महामंतं जीवंधरेण।
अंते महाणुभावो, भद्दो होज्ज देवो सग्गे॥107॥

जीवन्धरकुमारसे अन्तमें णमोकारमन्त्र सुनकर भद्र मरणासन्न श्वान महानुभाव स्वर्गमें देव हुआ।

बहुदुक्खं सोढित्ता, चारुदत्तो वेस्सागमण-रदो य।
पच्छा महाणुभावो, मुणिवरो होही अहमिंदो॥108॥

वेश्यागमनमें रत चारुदत्त बहुत दु:खोंको सहकर पश्चात् श्रीमुनिवर महानुभाव होकर अहमिन्द्र हुए।

णिव्विदुगंछा-अंगं, पालिय उद्दायण-महाणुभावो।
सुप्पसिद्धो उत्तमं, गदिं लहीअ गुणाणुरायी॥109॥

निर्विजुगुप्सा अङ्गका पालन कर महानुभाव राजा उद्दायन सुप्रसिद्ध हुए। उन गुणानुरागीने उत्तम गतिको प्राप्त किया।

संतिवम्मा दु खत्तिय-सुदो समंतभद्द-महाणुभावो।
णिग्गंथसाहू होच्च, जिणसासण-महापहावगो॥110॥

क्षत्रिय पुत्र शान्तिवर्मा निर्ग्रन्थ साधु श्रीसमन्तभद्र महानुभाव होकर जिनशासनके महाप्रभावक हुए।

विज्जुदचोरो दु महाणुभावो जंबूसामि-संगदीइ।
होज्ज णिग्गंथसाहू, कम्मं खयिय लहीअ मोक्खं॥111॥

श्री जम्बूस्वामीकी सङ्गतिसे विद्युत्चोर महानुभाव निर्ग्रन्थ साधु हुए एवं कर्म क्षयकर मोक्षको प्राप्त किया।

वाणर-णउला सीहो, सूगरो पत्तदाणणुमोदणेण।
महाणुभावा होच्चा, उसह-पुत्ता होज्जा सिद्धा॥112॥

पात्रदानकी अनुमोदनासे वानर, नकुल, सिंह व शूकर श्रीवृषभदेव महानुभावके पुत्र होकर सिद्ध हुए।

अंजणचोरणामेण, पसिद्धो ललिदंग-महाणुभावो।
महासड्ढाभावेण, अट्ठापदादु लहीअ सिवं॥113॥

महाश्रद्धाके भावसे अञ्जनचोर नामसे प्रसिद्ध ललिताङ्ग महानुभावने अष्टापदसे मोक्ष प्राप्त किया।

अकंपणाइ-सत्तसय-मुणिणो रक्खिय मुणि-विण्हुकुमारो।
लहीअ परमसिवपदं, महाणुभावो सुझाणेणं॥114॥

श्री अकम्पनाचार्यादि 700 मुनिराजोंकी रक्षा कर श्रीविष्णुकुमार महानुभावने सद्ध्यानसे परम मोक्षपदको प्राप्त किया।

रायसिरीकंठो मुणि-णिंदाए कुट्ठी य सिरीवालो।
पुण सो महाणुभावो, कम्मं खयिय लहीअ मोक्खं॥115॥

मुनिनिन्दा करनेसे राजा श्रीकण्ठ कुष्ठी श्रीपाल हुए। पुनः उन महानुभावने कर्म क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया।

मुणिदाणेण णरसुहं, लहीअ सिरीसेण-महाणुभावो।
तित्थयर-संतिणाहो, चक्की कामो य जगपुज्जो॥116॥

मुनिराजको आहारदान देनेसे राजा श्रीषेण महानुभावने नरसुख प्राप्त किया, अनन्तर वे जगत्पूज्य चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थङ्कर श्रीशान्तिनाथ जिन हुए।

परित्थीइ असेवगो, भावि-तित्थयरो धादगिखंडस्स।
पडिहरि-महाणुभावो, णियोगेण घादिदो हरिणा॥117॥

परस्त्रीका सेवन नहीं करने वाले धातकीखण्डके भावी तीर्थंकर प्रतिनारायण रावण महानुभाव नियोगसे नारायण लक्ष्मण द्वारा नाशको प्राप्त हुए।

अणेग-संघस्सं जिणभत्तो वरंगो सहिय मुणी होज्ज।
पच्छा लहीअ मोक्खं, महाणुभावो सव्वपुज्जो॥118॥

जिनभक्त राजकुमार वराङ्ग अनेक सङ्घर्षोंको सहनकर मुनि हुए पश्चात् उन सर्वपूज्य महानुभावने मोक्ष प्राप्त किया।

धण्णंकर-पुण्णंगर-दासा जिणच्चाइ महाणुभावा।
अमरसेण-वइरसेण-कुमारा होज्ज देवपुज्जा॥119॥

जिनेन्द्रप्रभुकी अर्चनासे दास धण्णङ्कर व पुण्णङ्कर महानुभाव अमरसेन व वइरसेन कुमार होकर देवोंके द्वारा पूज्य हुए।

चरियचक्किं जुगपुरिस-महाणुभावं परमपहावगं च।
जिणसासणुण्णदियरं, संतिसायर-सूरिं णमामि॥120॥

जिनशासनोन्नतिकरा, परमप्रभावक, युगपुरुष, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महानुभावको सदा नमस्कार करता हूँ।

ववहारकुसलं सूरि-पायसिंधुं विसुद्ध-चरियवंतं।
महाणुभावं हु महातवसिं लोयप्पियं वंदे॥121॥

विशुद्ध चर्यावान्, व्यवहारकुशल, लोकप्रिय, महातपस्वी महानुभाव आचार्य श्रीपायसागर जी मुनिराजकी मैं वन्दना करता हूँ।

दुद्धरतवसिं इंदिय-जेदुं बालजदिं महाणुभावं।
आइरियं जयकित्तिं, सुजसधारगं परियंदामि॥122॥

दुर्द्धरतपस्वी, इंद्रियजेता, बालयति, सुयशधारक महानुभाव आचार्यश्री जयकीर्ति जी मुनिराजको नमस्कार करता हूँ।

देसस्स परमभूसण-महाणुसासगं रट्ठहिदेसिं च।
महाणुभावं सूरिं, देसभूसणं सय पणमामि॥123॥

देशके परम भूषण, महानुशासक, राष्ट्रहितैषी महानुभाव आचार्यश्री देशभूषण जी मुनिराजको सदा नमस्कार करता हूँ।

विस्सधम्मपेरग-सिद्धंतचक्किं च सिदपिच्छाइरियं।
विज्जाणंदं वंदे, महाणुभावं रट्ठसंतं॥124॥

विश्वधर्म-सम्प्रेरक सिद्धान्तचक्रवर्ती, राष्ट्रसन्त, श्वेतपिच्छाचार्य महानुभाव श्रीविद्यानन्द जी मुनिराजकी मैं वन्दना करता हूँ।

रइदो महाणुभावो, वसुणंदि-सूरिणा मइ गुरुकिवाइ।
जावदु ससिदिवायरो, तावदु जिणसासणं जयेदु॥125॥

यह 'महानुभाव' नामक ग्रन्थ मुझ आचार्य वसुनन्दीके द्वारा गुरु कृपासे रचा गया। जब तक चन्द्र-सूरज हैं तब तक यह जिनशासन जयवन्त रहे।

रायट्ठाणे झंझीरामपुरदिसयखेत्ते अलवरस्स।
पणवीससयएगपण्णासे वीरद्धम्मि पुण्णो॥126॥

राजस्थान प्रान्तमें अलवर जिलेके झाञ्झीरामपुरा अतिशय क्षेत्रमें पच्चीस सौ इक्यावन वीर निर्वाण संवत्‌में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

खवगराय-सिरोमणी
(क्षपकराज शिरोमणि)

जहाँ शब्द नहीं पहुँचते, वहाँ गुरु-भक्ति स्वयं स्वर बनकर गूँजती है। परम पूज्य क्षपकराज शिरोमणि, राष्ट्रसंत, सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज के जीवन-रस से सिक्त यह ग्रंथ साधना का वह दीप है, जो अंतर्मन में विनय, श्रद्धा और समर्पण का उजास भर देता है।

खवगराय-सिरोमणी

(क्षपकराज शिरोमणि)

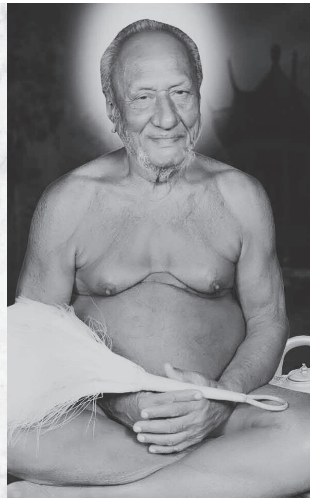

A Biography of Rashtra Sant Acharya Vidyanand Muniraj

-आचार्य वसुनंदी मुनि

आचार्य वसुनंदी मुनिराज विरचित

खवगराय-सिरोमणी

(क्षपकराज शिरोमणि)

मंगलायरणं

(मंगलाचरण)

अरिहादी परमेट्ठी, अणाइणिहणा सया सव्वसेट्ठा।
पणमामि पंचगुरुणो, भावविसुद्धीइ तिजोगेहि।।1।।

अनादिनिधन, सर्वश्रेष्ठ अरिहंतादि परमेष्ठी वा पंच गुरुओं को भावों की विशुद्धिपूर्वक मैं त्रययोग से नमस्कार करता हूँ।

दुहतिसाविणडियाणं, सुदजलपयाणस्स सद्धम्मपवं।
विज्जाणिलयं सूरिं, विज्जाणंदगुरुं पणमामि।।2।।

जो दुःख रूपी तृषा से व्याकुल हुए भव्य जीवों को श्रुत रूपी जल प्रदान करने के लिए सद्धर्म रूपी प्याऊ हैं उन विद्या के निलय आचार्यश्री विद्यानंद गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ।

तविदाण भवकाणणे, मिच्छत्तण्णाण-असंजमवसेण।
दुक्खतावं खयेदुं, सक्कं संतिसायरं थुवमि।।3।।

मिथ्यात्व, अज्ञान व असंयम के वश से संसार रूपी वन में दुःख से संतप्त प्राणियों के दुःख रूपी ताप के क्षय करने में समर्थ चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज की मैं सदा स्तुति करता हूँ।

सिरिगुरुजीवण-चरियं, महण्णवोव्व णहोव्व अइविसालं।
णेव को वि संसारे, गुरुगुणं कहेदुं समत्थो।।4।।

परम पूज्य आचार्यश्री विद्यानंदजी गुरुदेव का जीवन चरित्र महासागर वा आकाश के समान अत्यंत विशाल है। गुरु के गुणों को कहने में संसार में कोई भी समर्थ नहीं है।

जो गहदि सुगुरु-सरणं, पुण्ण-सद्धाए विमलचित्तेणं।
पावदि णंदमकत्थं अगाह-णीरे सो मीणोव्व।।5।।

जो पूर्ण श्रद्धा व निर्मल चित्त से सुगुरु की शरण प्राप्त करता है वह अगाध जल में मीन के समान अकथनीय आनंद को प्राप्त करता है। अर्थात् जिस प्रकार अगाध जल में मछली आनंद को प्राप्त करती है उसी प्रकार गुरु-चरण-शरण में भव्य जीव आनंद को प्राप्त करता है।

गुरुवंदण-णिमित्तेण, णंदंते समप्पिदा लहु-सिस्सा।
आयासे उड्डंता, सुहसंपत्ता लहुपक्खीव।।6।।

जिस प्रकार आकाश में उड़ते हुए लघु पक्षी भी सुख प्राप्त करते हैं उसी प्रकार गुरुवंदना के निमित्त से समर्पित लघु शिष्य भी आनंदित होते हैं व सुख प्राप्त करते हैं।

जो सिस्सो पुत्तो वा, विणीदो सुगुरु-पिदर-जुगचरणेसु।
णियमेण लहदि सोक्खं, गुरुकिवा खयदि दुह-पावाणि।।7।।

जो शिष्य वा पुत्र अपने गुरु वा माता-पिता के चरणों में विनम्र होता है वह नियम से सुख प्राप्त करता है। अहो! गुरुकृपा सभी दु:ख व पापों का क्षय करती है।

अणुओवर-सिस्सोअवि, गुरुस्सअच्चंत-पियोदु किंणेव।
अपुट्ठवयणेहिं सग-पिदर-रंजायग-सुबालोव्व।।8।।

जब अस्पष्ट वचनों (तोतली भाषा) के माध्यम से छोटा बालक अपने माता-पिता को रंजायमान करता है तब छोटा श्रेष्ठ शिष्य भी गुरु को अत्यंत प्रिय क्यों नहीं होगा? अर्थात् अवश्य होगा।

जे सिस्सा णियचित्ते, सगगुरुं भयवदोव्व संठवंते।।
णियमादु रक्खिदा ते, गुरुणा लहंति सुहं संतिं।।9।।

जो शिष्य भगवान् के समान अपने गुरु को निज चित्त में स्थापित करते हैं वे सब गुरु के द्वारा रक्षित होते हैं एवं सुख व शांति को नियम से प्राप्त करते हैं।

कट्टु गुरुपदवंदणं, सुद्धहिअयेण सुभावेण सुमरिय।
खवगरायसिरोमणिं, गंथं वोच्छामि णमिय गुरुं॥10॥

आचार्यश्री विद्यानंद गुरुदेव की पगवंदना कर, शुद्ध हृदय व शुभ भाव से गुरु का स्मरण कर, गुरु को नमस्कार कर मैं ''क्षपकराज शिरोमणि'' नामक ग्रंथ को कहता हूँ।

विणा गुरुकिवाए णो, विणेयो समत्थो कज्जसिद्धीइ।
जह अक्कपयासादिं, विणा णेव वड्ढंति रुक्खा॥11॥

गुरु-कृपा के बिना कोई भी शिष्य कार्य पूर्ण करने में उसी प्रकार समर्थ नहीं होता जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश आदि के बिना वृक्ष वृद्धिंगत नहीं होते।

तरु-ठिदीइ संवड्ढण-हेदू अक्को वाऊ जलमादी।
जह तह गुरु-किवासया, गुण-संवड्ढणस्स सिस्सस्स॥12॥

जैसे वृक्षों की स्थिति व उनके संवर्धन का कारण सूर्यप्रकाश, वायु, जल आदि हैं उसी प्रकार शिष्य के गुणों के संवर्धन का कारण सदैव गुरु-कृपा है।

सिस्सस्स गुरुकिवा चिय, पाणवाउव्व सुह-हेदू णिच्चं।
ताइ विणा अहंकार-संजुदो सिस्सो दुह-पत्तो॥13॥

गुरु कृपा शिष्य के लिए प्राणवायु के समान है एवं नित्य सुख का कारण है। उसके बिना शिष्य अहंकार से युक्त व दुःख-पात्र होता है।

लोगे मण्णदे गुरू, णाणदायगो अवि एगक्खरस्स।
जो दायदि सद्धम्मं, सो गुरू णेव कहं पुज्जो॥14॥

एक अक्षर का ज्ञान देने वाला भी लोक में गुरु माना जाता है। जो

जीवन में सद्धर्म देता है वह गुरु पूज्य क्यों नहीं होता अर्थात् अवश्य ही पूज्य होता है।

रयणत्तयं हु धम्मो, उत्तमखमादी दहविहो धम्मो।
अहिंसा महाधम्मो, वत्थुसहाव-सासयधम्मो।।15।।

निश्चय से रत्नत्रय धर्म है। उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्म हैं। अहिंसा महाधर्म है और वस्तु का स्वभाव शाश्वत धर्म है।

सूरी विज्जाणंदो, रट्ठसंतो सिद्धंतचक्की तह।
सिदपिच्छिधारगो सय, सद्दिट्ठीहिं वंदणीयो।।16।।

राष्ट्रसंत, सिद्धांतचक्रवर्ती, श्वेतपिच्छिधारक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सम्यग्दृष्टियों के द्वारा सदैव वंदनीय हैं।

पुप्फाणं सामिप्पं, देदि सुगंध-मग्गिस्स उण्हत्तं।
सरिदाइ-सीयलत्तं, इट्ठजणाणं च आणंदं।।17।।
सज्जणस्स सामिप्पं, सज्जणत्तं च सट्ठं दुट्ठाणं।
णिग्गंथ-सुसामिप्पं, भयवत्त-पगासणा-सत्तिं।।18।।(जुम्मं)

जैसे पुष्पों की निकटता सुगंध, अग्नि की निकटता ऊष्णता, सरिता की निकटता शीतलता, इष्टजनों की निकटता आनंद, सज्जनों की निकटता सज्जनता और दुष्टों की निकटता दुष्टता देती है उसी प्रकार निर्ग्रन्थ गुरुओं की श्रेष्ठ संगति निजात्मा में भगवान् के प्रकटीकरण की शक्ति देती है।

किदण्हुत्तं दंसिदुं, सगगुरुं पडि वोच्छामि गंथमिदं।
गुरुगुणं पाविदु-मण्ण-भावेहिं णो विसुद्धीए।।19।।

अपने गुरु के प्रति कृतज्ञ भाव प्रदर्शित करने के लिए मैं इस ''क्षपकराज शिरोमणि'' ग्रंथ को कहता हूँ। किन्हीं अन्य भावों से नहीं अपितु विशुद्धिपूर्वक गुरु के गुणों को प्राप्त करने के लिए कहता हूँ।

सेसवयालो

(शैशवकाल)

भारदं अणादीदो, अज्झप्प-विज्जुप्पायगा उस-भू।
मुणि-गेहि-अवेक्खाए, रिसि-किसी पहाण-कज्जाइं।।20।।

भारतदेश अनादिकाल से ही अध्यात्मविद्या की उत्पादिका धर्मभूमि है। योगी व गृहस्थ की अपेक्षा से क्रमशः ऋषि व कृषि प्रधान कार्य हैं अर्थात् देश में ऋषि व कृषि की प्रधानता है।

किसि-कारग-किसीवलो,धम्म-देस-संरक्खगो णियमेण।
किसिं विणा ण संभवो, मुणि-सावग-धम्मपालणं च।।21।।

कृषि को करने वाले कृषक नियम से धर्म व देश के संरक्षक हैं। श्रमणधर्म व श्रावकधर्म का पालन कृषि के बिना संभव नहीं है।

अणेय-पंता सुणाम-धारगा सुहदा धम्मजुदा अत्थ।
राया दु णायजुत्ता, सव्व-पया कत्तव्वसीला।।22।।

यहाँ अच्छे नाम वाले सुखद व धर्म से युक्त अनेक प्रांत हैं। जहाँ राजा न्याय से युक्त व सर्व प्रजा कर्त्तव्यनिष्ठ है।

कण्णाडग-सुहपंते,बहुजणपदजुद-भारद-दक्खिणम्मि।
बेलगाम-जणपदम्मि, सेडवाल-गामो पसिद्धो।।23।।

उन्हीं में दक्षिण भारत में बहुत जनपदों से युक्त कर्नाटक नामक शुभ प्रांत है। उसके बेलगाम नामक जनपद में शेडवाल नामक प्रसिद्ध गाँव है।

गगणचुंबी सिहरेण,सह तित्थ-पडिमा-जुद-जिणालयो दु।
भत्तेहि समाकिण्णो, पूरिदो पूयाइ-रवेहिं।।24।।

वहाँ गगनचुंबी शिखर से सहित, तीर्थंकर भगवान् की प्रतिमा से युक्त सुंदर जिनालय है जो सदैव भक्तों से समाकीर्ण और भक्ति-पूजादि के शब्दों से परिपूरित रहता है।

सरस्सदी देवी कल्लप्पा उवज्झे य वरदंपत्ती।
तत्थ धम्मज्झाण-जुद-पसंतो भद्द-सयायारी।।25।।

वहाँ धर्मध्यान से युक्त, प्रशांत, भद्र परिणामी, सदाचारी श्री कल्लप्पा उपाध्ये और श्रीमती सरस्वती देवी श्रेष्ठ दंपत्ति थे।

जिणपूया-गुरुसेवा-णिरदा य सव्व-अभक्ख-चागी ते।
पव्वेसुं उववासो, गिहे जवहवणं सज्झाओ।।26।।

वे जिनपूजा, गुरुसेवा में निरत, सर्व अभक्ष्य के त्यागी थे। वे पर्वों पर उपवास करते, घर पर जप, हवन व स्वाध्याय किया करते थे।

ताइ उप्पण्णो सिसू, ऊणवीस-सय-पणवीस-वस्सम्मि।
बावीस-अप्पेलम्मि, सुरिंदो णामो हरिसेणं॥27॥

उन माँ सरस्वती ने 22 अप्रैल, 1925 को एक शिशु को जन्म दिया। जैन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न उस बालक का नाम हर्षपूर्वक सुरेंद्र रखा गया।

तदा जम्मसमयम्मि हि, ठवंत-दुद्धपत्तं अंगणम्मि हु।
पक्खालीअ सहसा दु, दुद्धवरिसा णंद-पदीगा॥28॥

जब बालक का जन्म हुआ तब जन्म के समय ही घर के आंगन में दूधपात्र को रखते हुए वह पात्र अचानक फिसल गया। ऐसा लगा मानो दूध की वर्षा हुई हो। दूध की वर्षा आनन्द या शुभ शगुन का प्रतीक है।

विक्कमी मेसरासी, तुला लग्गजम्मपत्तीए तस्स।
उच्चादो मंदस्स य, ससपंचमहापुरिस-जोगो॥29॥

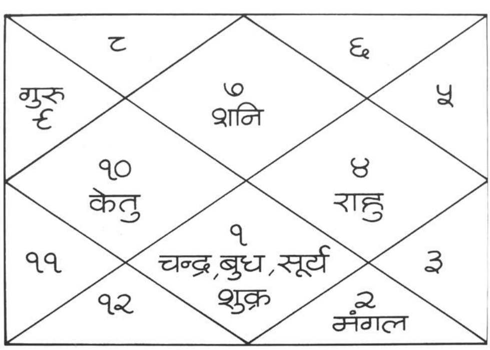

सूरुच्चो मेसत्थो, बुहसहिदो सुह-बुहादिच्च जोगो।
कुलदीवगो सुजोगो, रविगद-रायजोगो वि तहा।।30।।
सुक्किंदूहि सह तस्स, जुदी सुहफलदायगा अइसेट्ठा।
बालबंभयारी सो, अट्ठमभावे मंगलादो।।31।।
तिदियभावे गुरुदो, लेहगो संपादगो सुहकत्ता।
पारासरी य सुणफा, वेसी इच्चादी सुजोगा।।32।।

उनकी जन्मपत्रिका में विक्रमी मेष राशि थी एवं तुला लग्न थी। लग्न में उच्च का शनि होने से शश पंचमहापुरुष योग था। मेष में स्थित सूर्य उच्च का था। उसके साथ बुध था तब शुभ बुधादित्य योग बना। वहाँ कुलदीपक नामक सुयोग तथा रविगत राजयोग भी था। शुक्र व चंद्र के साथ उनकी युति शुभ फलदायक व अति श्रेष्ठ थी। अष्टम भाव में मंगल होने से वे बाल ब्रह्मचारी थे। तृतीय भाव में गुरु होने से वे लेखक, संपादक, शुभकार्यों के कर्ता थे। उनकी कुंडली में पाराशरी, सुनफा, वेशी आदि शुभ योग भी थे।

णिमित्तणाणिणा तदा, कहिदं सुपुत्तो देसरायो वा।
वा रायोव्व उक्किट्ठ-देसुद्धारग-मुक्खसाहू।।33।।

तब निमित्तज्ञानी ने कहा कि यह सुपुत्र देश का राजा होगा या राजा के समान उत्कृष्ट देश का उद्धार करने वाला मुख्य साधु होगा।

मादु-पबलभावणाइ, जंते सिसुजीवणम्मि सक्कारा।
सिसु-सेट्ठ-जीवणस्सदु,बीयंवजणणी-सक्कारा।।34।।

माता की प्रबल भावना से शिशु के जीवन में संस्कार उत्पन्न होते हैं। शिशु के श्रेष्ठ जीवन के लिए माँ के संस्कार बीज के समान हैं।

बहुदोहग्गवंता दु, गहंति जे ण सक्कारा मादूइ।
अप्पवये सक्कारा, गहीअ सो पुव्वपुण्णेणं।।35।।

वे बहुत दुर्भाग्यशाली हैं जो माँ के संस्कारों को ग्रहण नहीं करते।

उन सुरेन्द्र ने पूर्व पुण्य से अल्पवय में ही माँ के संस्कारों को ग्रहण किया।

सुरिंदस्सेग-भादू, तियभगिणी सुगुणजुत्ता सुसीला।
सुसक्कारी य सव्वा, अग्गज-सुरिंदो वि तहेव॥36॥

सुरेन्द्र के एक भाई व तीन बहनें थीं। ये तीनों ही बहनें सुगुणों से युक्त व सुशीला थीं। सभी सुसंस्कारी थे। इनमें सबसे बड़े सुरेन्द्र थे वे भी उसी प्रकार संस्कारी व गुणवान् थे।

ववहारकुसलो महा-णिउणो अज्झयणे सेवाभावी।
दयावंतोवयारी, पया-णायगोव्व महसूरो॥37॥

सुरेंद्र व्यवहारकुशल, अध्ययन में महानिपुण, सेवाभावी, दयावान्, उपकारी एवं प्रजानायक के समान महाशूर थे।

महासत्तिसंपण्णो, सक्को वहिदुं लक्खधण्णभारं।
विणा सहकारेण सो, सिरोवरि धारेदुं पि तहा॥38॥

वे महाशक्ति से संपन्न थे। वे एक कुंटल भार वाले गेहूँ, ज्वार आदि के बोरा उठाने में समर्थ थे एवं बिना सहयोग के स्वयं सिर पर रखने में भी समर्थ थे।

संगीदे रुइवंतो, संगीद-सिक्खा वि लहिदा तेणं।
इगतंतीए कुसलो, पिया कण्णाड-परमेट्ठि-थुदी॥39॥

वे संगीत में रुचिवान् थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा भी ग्रहण की थी। वे एकतारा (वाद्य यंत्र) में कुशल थे और कर्नाटक की परमेष्ठी स्तुति उन्हें प्रिय थी।

सुरिंदस्स वरमित्तं, सादगउडा पाडिलो धीमंतो।
सुसक्कार-जुदो मंद-कसायी हिदयरो सुगुणी य॥40॥

सुरेंद्र का एक बुद्धिमान् सातगौड़ा पाटिल नामक श्रेष्ठ मित्र था। वह सुसंस्कार से युक्त, मंद कषायी, हितकारी एवं गुणवान् था।

परोप्परम्मि किड्डीअ, वेयगंगा-दुद्धगंगा-णदीसु।
तरंता ते सोहेज्ज, उहयगंगासु अक्किंदू व॥41॥

वे दोनों आपस में वेदगंगा और दूधगंगा नदियों में क्रीड़ा करते थे। गंगाओं में तैरते हुए वे मित्र सूर्य व चंद्रमा के समान प्रतिभासित होते थे।

ते वर-तारगा अथक्कंता पउमासणेण संतरीअ।
मीलंतं सरिदाए, उहय-बालसहा किड्डित्ता॥42॥

वे दोनों बालसखा नदी में क्रीड़ा करते हुए श्रेष्ठ तैराक होकर बिना थके पद्मासन लगाकर नदी में मीलों तक तैरा करते थे।

तरंगिणीइ तरंतो, किड्डीअ बहु-मुहुत्त-पमाणंतं।
भावीअ भावण-महो, सक्केमु तरिदुं भवसिंधुं॥43॥

वे बहुत मुहूर्त प्रमाण तक नदी में तैरते हुए क्रीड़ा किया करते थे, तब वे भावना भाते थे अहो! मैं संसार सागर को भी पार करने में समर्थ होऊँ।

पवीण-किड्डालू सो, सुरिंदो णेउत्त-गुण-संजुत्तो।
लोयप्पियो बालेसु, साहिमाणी संकप्प-जुदो॥44॥

वह बालक सुरेंद्र कुशल खिलाड़ी था एवं नेतृत्व गुण से संयुक्त था। वह बालकों के मध्य अत्यंत लोकप्रिय था। वह स्वाभिमानी व संकल्पशक्ति से युक्त था।

भासा-अज्झयणे रुइ-वंतो इच्छणुसारेण पिदरस्स।
ताण पसंतपुत्तेण, पारंभिदा सिक्खा सुहदा॥45॥

भाषा के अध्ययन में वह रुचिवान् था। पिता की इच्छानुसार पुनः उनके प्रशांत पुत्र ने सुखद शिक्षा प्रारंभ की।

मादामही-गिहे सो, चउवासंतं ठाएज्ज णंदेण।
सत्ततीस-अहिय-ऊणवीस-सद-वस्सम्मि गच्छीअ॥46॥

सन् 1937 में वह ननिहाल-ग्रिजोणे चला गया। वह बालक चार वर्ष तक अपनी नानी के घर आनंद से रहा।

दाणवाडम्मि गहिदा, सेट्ठ-महरट्ठी-भासाए वरं।
पच्छा सेडवालम्मि, कण्णड-भासाए पुण तेण।।47।।

सुरेंद्र ने दानवाड़ (महाराष्ट्र) में श्रेष्ठ मराठी भाषा में शिक्षा ग्रहण की। पुनः शेडवाल में कन्नड़ भाषा में शिक्षा ग्रहण की।

तत्थ अइरुइत्तादो, पविसिदो संतिसायर-अस्समम्मि।
पुणो सुरुइ-उप्पण्णो, महरट्ठी-मज्झमत्तादो।।48।।

किन्तु कन्नड़ भाषा में शिक्षा ग्रहण में रुचि नहीं हुई तब पिताजी के कहने पर अति रुचि से शेडवाल के ही शांतिसागर आश्रम में प्रवेश लिया। पुनः मराठी माध्यम से शिक्षा होने के कारण सुरेंद्र की पढ़ाई में रुचि उत्पन्न हो गई।

संतिसायर-अस्समे, पढिदं वर-जइण-दंसणं तेणं।
अज्झयणे अइ-कुसलो, पवीणो वि अण्णकज्जेसुं।।49।।

उन्होंने 'शांतिसागर आश्रम' में श्रेष्ठ जैनदर्शन को पढ़ा। वे अध्ययन में अतिकुशल और अन्य कार्यों में भी प्रवीण थे।

तत्थ एयदा गुरुणा, तज्जिदो सो चिरेण जग्गणादो।
पहादे तद्दिणादु, णो कयावि जग्गीअ चिरेण।।50।।

वहाँ आश्रम में एक बार देर से जागने से उनके गुरु ने बालक को डाँट लगायी। गुरु की डाँट का उन पर यह प्रभाव हुआ कि वे उस दिन से सुबह कभी देर से नहीं उठे।

तद्दिणादो पहादे, सिग्घं जग्गित्तु घंटं वादेज्ज।
सुहणिद्दं उज्झित्ता, सव्वपढमं वंदेज्ज जिणं।।51।।

उसी दिन से सुबह जल्दी उठकर घंटा सुरेंद्र ही बजाने लगा। सुख-निद्रा को त्यागकर वह सर्वप्रथम जिनेन्द्रप्रभु की वंदना करता था।

गुरु-तवण्णा पसण्णो, तस्स अणुसासणेण गंभीरेण।
पदायिदासीवायो, आसूणीजुत्तवयणेहिं।।52।।

उसके अनुशासन व गांभीर्य से उसे डाँटने वाले गुरु तवण्णा भी प्रसन्न हो गए और उन्होंने प्रशंसा युक्त वचनों से उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया।

सातंत-पेम्मी राय-णीदीइ पवीणो सेवगो सुट्ठु।
करुणा-वच्छल्ल-खमा-विणयजुद-महाउज्जमी सो।।53।।

वह सुरेंद्र बचपन से ही स्वतंत्रता प्रेमी, राजनीति में कुशल, श्रेष्ठ सेवक, करुणा, वात्सल्य, क्षमा व विनयादि से युक्त महा- उद्यमी था।

दूरदिट्ठा अप्पाणुसासण-णेही उच्छाही धीरो।
सहज-सरलो किदण्हू, परोवयारी सहावेणं।।54।।

वह दूरदृष्टा, आत्मानुशासन का स्नेही, उत्साही, धैर्यवान्, सरल, सहज, कृतज्ञता के भाव से पूरित एवं स्वभाव से ही दूसरों का उपकार करने में संलग्न था।

उज्जमसीलो सेवा-भावरदो उच्छाही सुकज्जेसु।
ण कज्जं गुरु-लहू वा, भावणा हि तस्स दिट्ठीए।।55।।

वह बालक उद्यमशील, सेवाभाव में रत एवं सत्कार्यों में उत्साही था। उसकी दृष्टि में कार्य छोटे-बड़े नहीं थे मात्र भावनाएँ ही छोटी-बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं।

सहायी दीण-दुहीण, रोयीण अणुवत्तगो धीमंतो।
किसि-कम्मे रुइवंतो, वावारे सेवाकज्जासु।।56।।

वह दीन-दुखियों का सहायक, रोगियों की सेवा करने वाला, बुद्धिमान्, कृषिकर्म, व्यापार व सेवादि कार्यों में रुचिवान् था।

वा पण-छ-वासाउम्मि, तस्स चउमासा-मुणिवरेगस्स।
गामे धम्मज्झाणं, करिदं मुणिसंगं बालेण।।57।।

उस बालक सुरेंद्र की पाँच वा छह वर्ष की आयु में उस नगर में एक मुनिराज का चातुर्मास हुआ।

दिस्संति पूद-पावा, दोलाए पिच्छि पडि राय-जुदो।
रुई धम्मुवएसम्मि, जिण-सत्थ-गुरु-भत्तीए सो॥58॥

''पूत के पाँव पालने में ही नजर आ जाते हैं'' वह बालक सुरेंद्र मुनिराज की पिच्छी के प्रति राग से युक्त था। वह जिनदेव, शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरुभक्ति व धर्मोपदेश में रुचिवान् था।

सिग्घं यालो जवीअ, लोगिगं विज्ज-मज्झंतो पच्छा।
जीविगज्जणस्स साहिमाणी पहुच्चीअ पुणे सो॥59॥

लौकिक विद्या का अध्ययन करते हुए काल शीघ्र ही व्यतीत हो गया। पश्चात् जीविकोपार्जन के लिए वह स्वाभिमानी सुरेंद्र पुणे पहुँचे।

सत्थ-जंतागारम्मि, भावि-अहिंसा-धम्म-पेरगेणं।
कुव्विदं कज्जं पुणो, पूअल-जंतागारे पुणे॥60॥

भावी अहिंसाधर्म के प्रेरक सुरेंद्र ने हथियारों के कारखाने में काम किया पुनः वह नौकरी छोड़ पुणे में बिस्कुट फैक्ट्री में काम करने लगा।

सोलसवस्साउम्मि दु, देससतंताहियाणे पवत्तो।
महप्पा-गंधिस्स सुह-वियारेहिं पहाविदो सो॥61॥

सोलह वर्ष की आयु में ही वे देश के स्वतंत्रता अभियान में प्रवृत्त हो गए। महात्मा गांधी के शुभ विचारों से वे बहुत प्रभावित थे।

''मुंच भारदं'' दु देस-वावि-अंदोलणम्मि सुपमुहो सो।
णेउत्तं करिदं सगजूहेण सह भत्तेण तेण॥62॥

1942 में 'भारत छोड़ो' का देश व्यापी आन्दोलन हुआ। उस आन्दोलन में वे प्रमुख थे। उस देशभक्त ने अपने समूह के साथ उस आन्दोलन का नेतृत्व किया।

रत्तीए चउप्पहे रुक्खम्मि चिय तिवण्णि-धया फुरिदा।
कहंतो जयदु भारद-मायासपूरिदं एयदा॥63॥

उस समय एक बार रात्रि में जोर-जोर से आकाश को गुंजायमान करने वाली 'भारत माता की जय' कहते हुए उन्होंने चौराहे पर स्थित पेड़ पर तिरंगा फहरा दिया।

पहादे णादे गाम-पाडिलेण गवेसिदा अवराही।
पुण कहीअ तज्जंतो, सयं हि अवरोहेज्जा धयं॥64॥
अहवा तप्परो तुमं, रायदंडस्स मिच्चुदंडस्स वा।
किण्णु देसस्स भत्तो, मरिसेज्ज देसवमाणं णो॥65॥ (जुम्मं)

सुबह ज्ञात होने पर गाँव के पाटिल ने अपराधियों की खोज करना प्रारंभ की। पुनः जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने धमकी देते हुए कहा कि या तो तुम स्वयं झंडा उतार दो अथवा राजदंड या मृत्युदंड के लिए तैयार हो जाओ, किन्तु उस देशभक्त को देश का अपमान सहन नहीं था।

देस-गउरव-सुरक्खग-सुरिंदेण अवरोहिदा धया णो।
सगजणाण रक्खाए, अण्णादवासो कदो किण्णु॥66॥

देश के गौरव की सुरक्षा करने वाले उन सुरेंद्र ने झंडा उतारने से मना कर दिया, उन्होंने झंडा नहीं उतारा किन्तु अपने परिवारजनों की रक्षा के लिए उन्होंने अज्ञातवास किया।

जणपदस्स सुणेदुस्स, सव्वपेम्मभायगस्स तह हिअयं।
पुव्वसक्कारेहि उक्किट्ठ-देसभत्ति-पूरिदं हु॥67॥

देश स्वतंत्रता संग्राम में सुरेन्द्र अपने जनपद का नेतृत्व करने वाले थे और सभी के प्रेम के पात्र थे। उनका हृदय पूर्वसंस्कारों से ही उत्कृष्ट देशभक्ति से युक्त था।

बालवत्थाए हि सो, देसुण्णदीए-माणवसेवाण।
भाव-जुद-लोयप्पियो, उज्जमी अहिंसापेम्मी य॥68॥

वे सुरेन्द्र बचपन से ही देशोन्नति और मानवसेवा की भावना से युक्त थे। वे लोकप्रिय, उद्यमी और अहिंसा प्रेमी थे।

सणिअं सणिअं दु कुंथु-सायरसूरिस्स जम्मभूमीए।
पहुच्चीअ एणापुर-णयरं च पढीअ बहुगंथं॥69॥

अज्ञातवास के दौरान वे धीरे-धीरे आचार्यश्री कुंथुसागर जी की जन्मभूमि ऐनापुर पहुँच गए। वहाँ उन्होंने बहुत से ग्रंथों का अध्ययन किया।

पढिय अणेग-सत्थाणि, वक्कमीअ वेरग्गं संवेगो।
सकल्लाणस्स रूई, पुण्णुदयेण फुडीअ चित्ते॥70॥

अनेक शास्त्रों को पढ़कर उनमें वैराग्य व संवेग भाव उत्पन्न होने लगा। अत्यंत पुण्य के उदय से उनके चित्त में निजात्मकल्याण की रुचि प्रकट होने लगी।

गंभीररूवेण सो, अइपीडिदो असज्झ-विसमजरेण।
विहाय जीवण-आसं, जवीअ दु णमोयार-मंतं॥71॥

किन्तु तभी उन्हें असाध्य मोतीझरा निकला जिससे वे गंभीर रूप से पीड़ित हो गए। रोग इतना असाध्य हो गया कि उन्होंने अपने जीवन की आशा छोड़ दी और णमोकार मंत्र का जाप करने लगे।

मित्तेण सेडवालं, पहुच्चाविदो य पिदर-समीवम्मि।
सव्वा चिंतिदा तत्थ, पस्सित्तु रुग्गवत्थं तस्स॥72॥

उनकी यह दशा देखकर उनके मित्र ने उन्हें उनके माता-पिता के पास शेडवाल पहुँचा दिया। उनकी इस रुग्ण अवस्था को देखकर वहाँ सभी बहुत चिंतित हुए रोने लगे।

किण्णु सुह-सज्झायस्स, पहावेण पसंतो धम्मलीणो।
जवीअ णमोयारं दु, अहण्णिसं णिम्मल-चित्तेण॥73॥

किन्तु ऐसी दशा में भी शुभ स्वाध्याय के प्रभाव से वे प्रशांत और धर्मध्यान में लीन थे। निर्मल चित्त से वे निरंतर णमोकार मंत्र का ही जप कर रहे थे।

ओग्गहीअ संकप्पं, सिरीसंतिणाह-पडिमा-सम्मुहे।
गहमि बंभचरियवदं, जदि हं जीवस्सामि चिय तो॥74॥

उस बीमारी के समय उन्होंने श्री शांतिनाथ भगवान् की प्रतिमा के सम्मुख यह संकल्प लिया कि यदि मैं इस बीमारी से बचकर जीवित रहूँगा तो मैं आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगा।

पावकम्म-मुवसमिदं, समयेण सह होही वत्तलाहो।
पुण्णेण लहिदं तेण, महावीरकित्ति-साणिज्झं॥75॥

समय के साथ पाप कर्म का उपशम हुआ और उन्होंने आरोग्य लाभ प्राप्त किया। कुछ समय पश्चात् पुण्य से उन्होंने आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज का सान्निध्य प्राप्त किया।

पस्सिय सूरिं चरियं, वेरग्गुप्पायग-देसणं सुणिय।
सत्तरस-वस्साउम्मि, विरत्तो भव-देह-भोयादु॥76॥

आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी व उनके चरित्र को देखकर एवं उनकी वैराग्य को उत्पन्न करने वाली देशना को सुनकर वे 17 वर्ष की आयु में ही संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो गए।

तिण्णि-वस्स-पच्छा पुण, आगदो महावीरकित्ति-संघो।
एणापुरं सुरिंदो, पहुच्चीअ गुरु-दंसणत्थं॥77॥

तीन वर्ष पश्चात् अर्थात् जब सुरेन्द्र 20 वर्ष के हो गए थे तब आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी का संघ एनापुर आया। गुरु के दर्शन करने के लिए वे सुरेंद्र ऐनापुर पहुँचे।

तदा बेपडिमावदं, गहिदं तेणं सूरि-पसादेणं।
णिवेदीअ अणंतरं, संजमं धारिदु-मप्पहिदाय॥78॥

तब उन्होंने आचार्यश्री की कृपा से दो प्रतिमा व्रत ग्रहण किए। अनंतर आत्म-हित के लिए संयम धारण करने का निवेदन भी उन्होंने आचार्यश्री से किया।

सो दु रायणीदिण्हू, णेव दिक्खाजोग्गो अहो सामी!।
कहिदं गामजणेहिं, आयण्णिय णिवेदणं ताण॥79॥
पत्ताहार-दाणं दु, तव कज्जं णेव बुद्धि-दाणं भो!।
हिदयर-दिक्खा-विसये, विअक्कणंकज्जंअम्हाण॥80॥(जुम्मं)

तब गाँव के श्रेष्ठीजन आदि लोग आचार्यश्री के पास आकर कहने लगे कि हे स्वामी! इसे दीक्षा न दें। यह सुरेंद्र बड़ा राजनीतिज्ञ है, यह दीक्षा के योग्य नहीं है। उन सबका निवेदन सुनकर आचार्यश्री ने कहा अहो! आपका काम पात्रों को आहार देना है, बुद्धि देना नहीं। हितकारी दीक्षा के विषय में विचार करना, दीक्षा देना न देना हमारा काम है।

आवीअ संजोगेण, उणवीस-सय-छायालीस-वस्से।
दक्खिणे सेडवाले, सूरि-महावीरकित्तिस्स दु॥81॥

संयोगवशात् आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज 1946 में दक्षिण भारत में शेडवाल ग्राम में पधारे।

मुणिवयणेहि सुरिंदो, होच्चा पहाविदो दु परिवट्टीअ।
स-जीवणक्कमं तदा, आयरीअ सेट्ठसंजदोव्व।।82।।

तब सुरेन्द्र रोज मुनिराज के प्रवचन सुनते। मुनिराज के वचनों से प्रभावित होकर उनका जीवनक्रम परिवर्तित हो गया, तब वे श्रेष्ठ संयमी के समान आचरण करने लगे।

गंभीरं धीर-णाण-पिवासाजुत्तं तक्कसत्तीए।
अच्छरिज्ज-जुदो तस्स, वत्तित्तं वि पस्सिय सूरी।।83।।

उनके गंभीर, धीरता, ज्ञान की तीव्र पिपासा एवं तर्क शक्ति से युक्त व्यक्तित्व को देखकर तब आचार्यश्री भी आश्चर्य में पड़ गए।

वेरग्गफलस्सुदी
(वैराग्य की फलश्रुति)

इगवीसवस्सवत्था-जुद-सुरिंदेण पत्थिदं दिक्खाइ।
इगदिणं मुणि-सम्मुहे, विरायभाव-परिपूरिदेण॥84॥

जब सुरेन्द्र लगभग 21 वर्ष के थे तब एक दिन वैराग्य भाव से परिपूरित हो उन्होंने आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज के सम्मुख दीक्षा की प्रार्थना की।

सुणित्तु तस्स पत्थणं, तरुणस्स हस्सिद-सूरिणा कहिदं।
णिय-पिदरस्सअणुमदिं,गहसुकुणेसुदिढ-परिणामं॥85॥

उस युवा की प्रार्थना को सुनकर आचार्यश्री बड़े हर्षित हुए और कहा–अपने परिणामों को दृढ़ कर लो और अपने माता-पिता की अनुमति ग्रहण कर लो।

विहारदिणे सुरिंदो, हवेज्ज अणुगामी सूरीवरस्स।
पहुच्चियतमदड्डि-मणुरुंधीअमुणि-दिक्खाएपुण॥86॥

चातुर्मास समाप्त हुआ। जिस दिन आचार्यश्री का विहार हुआ उस दिन सुरेन्द्र भी उनके अनुगामी हो गए। (रोकने के बहुत प्रयासों के बाद भी वे नहीं रुके)। आचार्यश्री के साथ वे तमदड्डी पहुँचे और वहाँ पुनः मुनि दीक्षा की प्रार्थना की।

गुरु-अण्णाए गहिदा, खुल्लय-दिक्खा तत्थ सुरिंदेणं।
फग्गुण-सुदि-तेरसम्मि, उणवीससय-छादालाए॥87॥

(आचार्यश्री ने सीधे मुनि दीक्षा न देकर उन्हें क्षुल्लक दीक्षा ही देने को कहा।) इस प्रकार वहाँ तमदड्डी में फाल्गुन सुदी तेरस (15 अप्रैल) सन् 1946 में सुरेंद्र ने गुरु के आदेश से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की।

उच्छाहेण दायिदो, सिरिपासकित्ती सुहणामो तस्स।
बहुगुणा पस्सिदूणं, लहिदुं कित्तिं पासजिणोव्व।।88।।

गुरु महाराज (आ. श्री देशभूषण जी मुनिराज) ने उनके बहुत से गुणों को देखकर श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की कीर्ति प्राप्ति के लिए उन्हें क्षु. श्री पार्श्वकीर्ति यह शुभ नाम दिया।

खुल्लयपस्सकित्तिस्स, एगसिलोग-सुमरण-णियमं तस्स।
दायिदं पडिदिवसम्मि, सूरिणा जीवणपज्जंतं।।89।।

क्षुल्लक दीक्षा के अनंतर आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज ने श्री पार्श्वकीर्ति जी को प्रतिदिन एक श्लोक याद करने का नियम जीवनपर्यन्त के लिए दिया।

विणयभत्ति-भावजुदो, गुरुं पडि पालीअ जावज्जीवं।
दससहस्साहिया चिय, सिलोगा तस्स मत्थगम्मि दु।।90।।

वे क्षुल्लकजी अपने गुरु के प्रति विनयभक्ति भाव से युक्त थे। उन्होंने गुरु द्वारा प्रदत्त नियम का यावज्जीवन पालन किया। दस हजार से अधिक श्लोक उनके मस्तिष्क में थे अर्थात् उन्हें याद थे।

णाण-साहणा-रदस्स, खुल्लय-पस्सकित्ति-वस्साजोगो।
गुरुणा सह संपण्णो, णंदेणं तदा कोण्णूरे।।91।।

दीक्षोपरांत ज्ञान व साधना में रत क्षुल्लक पार्श्वकीर्तिजी का चातुर्मास गुरु के साथ आनंदपूर्वक कोन्नूर में संपन्न हुआ।

गुरु-अण्णाए हि गदो, विविह-अदिसयाइ-तित्थजत्ताए।
वण्णि-णेमिसायर-अइ-बुड्ढेण संमिलीअ मग्गे।।92।।

पुनः वे गुरु की आज्ञा लेकर विविध अतिशयादि तीर्थक्षेत्रों की यात्रा के लिए निकले। यात्रा मार्ग में वे अतिवृद्ध श्री नेमिसागर वर्णीजी से मिले।

ठाइत्तु किंचि यालं, कुव्वीअ अज्झयणाइं तेण सह।
अणुभवे पुच्छणे सो, कहीअ सव्वदा सुमरेज्जा।।93।।

कुछ समय उनके साथ ठहरकर बहुत अध्ययनादि भी किया। उनकी वयोवृद्ध अवस्था को देखकर क्षुल्लकजी ने उनसे उनके अनुभव की कुछ बातें पूछी तो उन्होंने कहा हमेशा एक बात याद रखना।

जदि गहसि बे रोट्टगं, तो समायस्स वि गहसु दोसद्दं।
कक्कलं च पहुच्चीअ, धम्मत्थल-जत्तं करंतो।।94।।

यदि समाज की दो रोटी ग्रहण करते हो, पचाते हो तो समाज के दो शब्दों को भी ग्रहण करो अर्थात् दो बातें भी पचाना। पुनः क्षुल्लकजी धर्मस्थल की यात्रा करते हुए कारकल पहुँचे।

तत्थ दु बंभप्पा अणुरोहं करीअ खुल्लय-पवयणस्स।
खुल्लयेण पज्जरिदं, णो जाणामि पवयण-करणं।।95।।

वहाँ विद्वान् प्रोफेसर जी. ब्रह्मप्पा ने क्षुल्लकजी के प्रवचन के लिए क्षुल्लकजी से अनुरोध किया। यह सुन क्षुल्लकजी ने कहा—मुझे प्रवचन करना नहीं आता।

बंभप्पेणं कहिदं, किं रोट्टगस्स ओग्गहिदा दिक्खा।
णेमिसायरं सुमरिय, ण उत्तरीअ सज्झाय-रदो।।96।।

तब प्रो. ब्रह्मप्पा बोले कि क्या रोटी खाने के लिए दीक्षा ली है। स्वाध्याय में रत क्षुल्लकजी ने श्री नेमिसागर वर्णीजी की बात का स्मरण कर उन्हें कोई उत्तर नहीं दिया।

सज्झाओ साहणा य, तस्स खुल्लयस्स मुक्ख-कज्जाइं।
अणासत्त-णिप्पक्खो, अज्झप्पियो धम्म-णिट्ठो य।।97।।

स्वाध्याय और साधना ही उन क्षुल्लकजी के प्रमुख कार्य थे। वे स्वयं अनासक्त, निष्पक्ष, अध्यात्मप्रिय और धर्मनिष्ठ थे।

कण्णड-सक्किद-पागद-अपब्भंस-महरट्ठी-हिंदीणं च।
आइ-भासाण णादू, सेट्ठ-वत्ता महाणाणी य।।98।।

वे कन्नड़, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी व हिंदी आदि भाषाओं के ज्ञाता, श्रेष्ठ वक्ता व महाज्ञानी थे।

तदा संपुण्णदेसो, पसिद्धो सो सुट्ठु वत्तारूवे।
तस्स पवयण-सहाए, अद्धलक्खजणा हवेज्जा दु॥99॥

उस समय वे श्रेष्ठ वक्ता के रूप में संपूर्ण देश में प्रसिद्ध हुए। उनकी प्रवचन सभा में पचास-पचास हजार लोग हुआ करते थे।

सूरिसंतिसायरस्स, उणवीससयपंचावण्ण-वस्से।
सल्लेहणाइ कुंथलगिरिं पहुच्चीअ सुभत्तीइ॥100॥

सन् 1955 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज की सल्लेखना चल रही थी। उस समय भक्तिपूर्वक क्षुल्लकजी कुंथलगिरी पहुँचे।

कहीअ भो सूरिवरो! खमदु मे मज्झं सव्व-दोसाणं।
गहिस्सेसि मुणिदिक्खं, जदा तदा खमामि हं तुज्झ॥101॥

क्षुल्लकजी ने कहा अहो आचार्य देव! मेरे सभी कृत दोषों के लिए मुझे क्षमा करें। आचार्यश्री ने कहा—जब आप मुनि दीक्षा ग्रहण करोगे तभी क्षमा करूँगा।

वस्साजोग्गं किच्चा, रायट्ठाणे बेलगामं गदं।
आइरिय-संतिसायर-अस्समे सेट्ठ-अहिट्ठादा॥102॥

अथानंतर राजस्थान में चातुर्मास करके आगामी चातुर्मास हेतु वे बेलगाम (कर्नाटक) पहुँचे। वहाँ शेडवाल स्थित 'आचार्यश्री शांतिसागर आश्रम' के श्रेष्ठ अधिष्ठाता बने।

तत्थ सत्तवस्साणं, सव्व-ववत्था ववत्थिदा समेण।
आवसियं णो बोहिय, सगउवट्ठिदिं अहुणा अत्थ॥103॥
देविंदकित्ति-भट्टारग-अग्गहेण पहुच्चीअ हुमचं।
असामण्ण-धम्म-पहावणाइ गुंजिदो कण्णाडो॥104॥(जुम्मं)

वहाँ सात वर्षों के अत्यंत श्रम से सभी व्यवस्थाएँ व्यवस्थित हो गईं। अब यहाँ अपनी उपस्थिति को आवश्यक न समझ, भट्टारक

देवेन्द्रकीर्ति जी के आग्रह से वे हुमचा पद्मावती पहुँचे। उनके माध्यम से असामान्य धर्म-प्रभावना से संपूर्ण कर्नाटक गुंजायमान हो गया।

रक्खिदुं संभालिदुं, हुमचं पत्थिदो भट्टारगेणं।
किण्णु ण अंगीकरीअ, सो गच्छीअ रायट्ठाणं॥105॥

वहाँ भट्टारकजी ने कर्नाटक में हुमचा क्षेत्र की रक्षा के लिए, उसे संभालने के लिए क्षुल्लकजी से प्रार्थना की किन्तु क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी ने वह स्वीकार नहीं किया और वे राजस्थान चले गए।

कोण्णूर-हुमच-कुंभोजेसु अट्ठा सेडवाले हुमचे।
बे सुजाणगढे बेल-गामे कुंदकुंद-अद्दिम्मि॥106॥

क्षुल्लक अवस्था में उन्होंने 1946 से क्रमशः कोण्णूर (कर्नाटक), हुमच (कर्नाटक), कुंभोज (महाराष्ट्र) में चातुर्मास किए पुनः आठ चातुर्मास शेडवाल में किए। 1957 का चातुर्मास हुमच (कर्नाटक) में पुनः दो चातुर्मास सुजानगढ़ (राजस्थान) में किए। पुनः बेलगाम (कर्नाटक) में एवं कुंदकुंदाद्रि (कर्नाटक) में हुए।

सिमोगा-कण्णाडम्मि, इत्थं हंदि सत्तरस-चउमासा।
खुल्लयावत्थाए दु, संपण्णा बहु-पहावणाइ॥107॥

1962 में क्षुल्लक अवस्था का अंतिम चातुर्मास शिमोगा (कर्नाटक) में संपन्न हुआ। इस प्रकार क्षुल्लक अवस्था में अत्यंत धर्म प्रभावना के साथ सतरह चातुर्मास संपन्न हुए।

चउमास-पच्छा पहुच्चीअ दंसणत्थं चिय ढिल्लि सो।
उणवीससयतिसट्ठी-वस्से देसभूसण-पदेसु॥108॥

चातुर्मास के पश्चात् 10 जुलाई 1963 में क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज के दर्शन के लिए दिल्ली उनके चरणों में पहुँचे।

होही सुणाण-वत्ता, पहाविदो देसभूसणो सूरी।
तस्स गहण-णाणेणं, पुच्छीअ कहं होज्जा मुणी॥109॥
पत्थीअ तक्कालम्मि, मुणि-दिक्खाइ देसभूसण-हुत्ते।
सूरी ण पडिमंतीअ, हसंतो चिय मंदं-मंदं॥110॥ (जुम्मं)

वहाँ उनके व आचार्यश्री के मध्य में गूढ ज्ञान वार्ता हुई। आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज उनके गहन, गंभीर ज्ञान से अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने क्षुल्लकजी से पूछा–17 वर्ष हो गए क्षुल्लक दीक्षा लिए हुए, अब मुनि कब होओगे? क्षुल्लकजी के मन में मुनि दीक्षा की तीव्र भावना तो थी ही अतः उन्होंने तत्काल ही आचार्यश्री के सम्मुख मुनि दीक्षा की प्रार्थना की। क्षुल्लकजी की प्रार्थना सुनकर आचार्यश्री मंद-मंद मुस्कुराने लगे किन्तु उत्तर कुछ नहीं दिया।

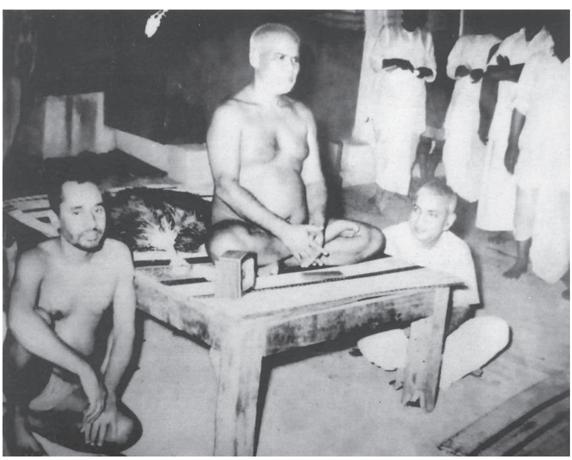

किंचिवि दिण-पच्छा पुण, अणुरुंधीअ सूरिवर-सम्मुहम्मि।
साहूसंतिपसादो, तस्स अद्धंगिणी अवि तत्थ॥111॥

कुछ दिन पश्चात् 22 जुलाई, 1963 को क्षुल्लकजी ने आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज के सम्मुख पुनः मुनि दीक्षा के लिए अनुरोध किया। तब वहाँ साहू शांतिप्रसाद जैन जी एवं उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रमारानी जी भी उपस्थित थीं।

साहू कहीअ सामी, संसारो दु अइ-विचित्तो तम्हा।
खुल्लयवत्था सेट्ठा, तुमं तरुणो अइ-धीमंतो॥112॥

साहू शांतिप्रसाद जी ने क्षुल्लकजी की प्रार्थना सुनी तो चुपके से कहने लगे अहो स्वामी! ये संसार बड़ा विचित्र है। आप युवा हैं, अति बुद्धिमान हैं, आपकी क्षुल्लक अवस्था ही श्रेष्ठ है, आप इसी अवस्था में रहें।

किं बंधसि कम्मं दिच्चा परामस्समिदं अहो भद्दो!।
णिच्छलोममणिण्णयो,सिलालेहोव्वअपरिअट्टो॥113॥

उनकी बातें सुन क्षुल्लकजी कुछ विचारकर बोले हे भद्र पुरुष! आप इस प्रकार का परामर्श देकर कर्मों का बंध क्यों करते हैं, मैं निश्चल हूँ और मेरा मुनि दीक्षा ग्रहण करने का यह निर्णय भी शिलालेख के समान बदलने वाला नहीं है।

संसारेण सह चरदि, कायरो किण्णु अप्पुल्लेणं सह।
चलावदि णरो जो सो, संसारं परिवट्टिस्सामि॥114॥

जो संसार के साथ चलता है वह कायर है, कमजोर है किन्तु जो पुरुष अपने साथ संसार को चलाता है वह पुरुषार्थी पुरुष है। मैं इस संसार को बदल दूँगा, मानव जीवन को नई समीचीन दिशा दूँगा।

तस्स णिच्छल-णिण्णयं, सुणित्तु वेरग्गपुण्ण-वत्तव्वं।
संपडिवज्जीअ तस्स, पत्थणं दियंबर-दिक्खाइ॥115॥

उनके इस वैराग्यपूर्ण वक्तव्य और निश्चल निर्णय को सुनकर आचार्यश्री ने उनकी दिगंबर-दीक्षा की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

जहाजादो दियंबरो

(यथाजात दिगंबर)

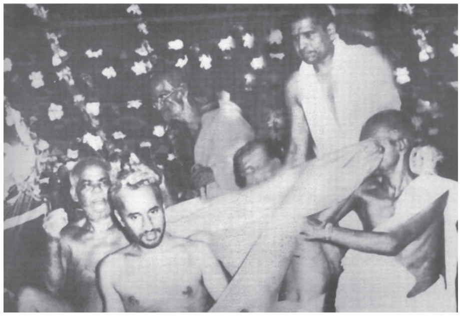

सावण-सुक्क-पणमीइ, सुहे उणवीस-सय-तिसट्ठि-वस्से।
भारद-रायहाणीइ, पदायिदा मुणिदिक्खा तस्स॥116॥
परेड-मइदाणे-भव्वत्तेण लक्खजणणिअरमज्झम्मि।
गुंजिदो दु आयासो, गुरु-सिस्स-जयजयकारेहिं॥117॥(जुम्मं)

शुभ श्रावण शुक्ल पंचमी (25 जुलाई) 1963 को भारत की राजधानी में परेड मैदान में अति भव्यता से लाखों लोगों के समूह के मध्य उन क्षुल्लक श्री पार्श्वकीर्ति जी को मुनि दीक्षा प्रदान की गई। उस दीक्षा के समय गुरु व शिष्य की जय-जयकारों से संपूर्ण आकाश गुंजायमान हो गया।

पसण्णभावं अगाहणाणं पस्सिय पदायिदो णामो।
मुणिवर-विज्जाणंदो, गुरु-सूरि-देसभूसणेणं॥118॥

उनके चेहरे पर प्रसन्नभाव व उनका अगाध ज्ञान देखकर उनके गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने उनका नाम मुनि विद्यानंद रखा।

भारद-गोरवाइरिय-देसभूसणो अदिसय-विण्णाणी।
जिणसासणपहावगो, णदो पहाणमंति-आदीहि॥119॥

भारतगौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज अतिशय विज्ञानी, जिनशासन प्रभावक थे। प्रधानमंत्री आदि भी उनके समक्ष नतमस्तक हुआ करते थे।

तस्स सिस्सो अविहोज्ज, अक्कोव्व जिणसासणे जगपुज्जो।
जुगसिट्ठा अच्चंतो, बंभणाणि-अज्झप्पजोगी।।120।।

उनके शिष्य मुनि विद्यानंद भी जिनशासन रूपी आकाश में सूर्य के समान दैदीप्यमान हुए। वे जगपूज्य, युगसृष्टा, अत्यंत ब्रह्मज्ञानी व अध्यात्म-योगी थे।

एयदा अणुरुंधिदो, इंदपत्थे पच्छा मुणिदिक्खाइ।
पवयणस्स महासहा-मंतीइ दियंबर-जइणस्स।।121।।

मुनि दीक्षा के पश्चात् एक बार दिल्ली में दिगंबर जैन महासभा के महामंत्री श्री परसादी लाल पाटनी ने मुनिराज से प्रवचन के लिए अनुरोध किया।

किंचिवि कारणेहिं दु, पगडीअ णिय-असक्कत्तं तदा हु।
कहीअ किं रोट्टगस्स, धारीअ दु मुणि-दिक्खं किण्णु।।122।।
सत्थ-मज्जादाइं दु, वियारिअ उविक्खीअ तस्स वयणं।
विसुद्धीइ संपण्णो, चउमासो गुरुणा सह तत्थ।।123।।(जुम्मं)

तब किन्हीं कारणों से उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। यह सुन वे बोले क्या रोटी के लिए मुनि-दीक्षा ली है? किन्तु तब भी शास्त्र की मर्यादादि विचारकर मुनिराज ने उनके वचनों की उपेक्षा कर दी। वहाँ गुरु महाराज के साथ चातुर्मास विशुद्धिपूर्वक संपन्न हुआ।

महव्वदं णिद्दोसं, पंचसमिदिं तिगुत्तिं पालंतो।
अणुभवीअ सुद्धप्पं, जम्हा भावी जिणवरो सो।।124।।

वे पाँच महाव्रत, पाँच समिति व तीन गुप्ति का निर्दोष पालन करते हुए निज शुद्धात्मा का अनुभव किया करते थे। वे आत्मानुभव क्यों नहीं करते आखिर भावी जिनवर जो थे।

मण्णित्ता जगजणणी, पालीअ अहिंसाइ-महव्वदाणि।
अइउच्छाहेणं सिव-सदणस्स जाणिय पयदंडिं।।125।।

वे मुनि अहिंसा आदि महाव्रतों को जगत् जननी मानकर एवं मोक्षमहल की पगदंडी जानकर अतिउत्साहपूर्वक उनका पालन करते थे।

सच्चं विस्साहारं, पालीअ सुद्धप्पाणुभूदी जं।
तेण विणा ण संभवो, सासय-सहाव-संपत्ती वि।।126।।

सत्य विश्व का आधार है। वे मुनिराज सत्य महाव्रत का पालन किया करते थे क्योंकि उसके बिना शुद्धात्मानुभूति व शाश्वत स्वभाव की संप्राप्ति भी संभव नहीं है।

किंचिवि वत्थुं ण मज्झ, सव्व-गुणा चिट्ठंति अप्पे तं वि।
परवत्थु-गहणभावं, उज्झिय अचोरियं पालीअ।।127।।

संसार में किंचित् भी कोई भी वस्तु मेरी नहीं है। आत्मा के सभी गुण आत्मा में ही रहते हैं। अतः पर-वस्तु के ग्रहण के भाव को भी त्यागकर वे अचौर्य महाव्रत का पालन करते थे।

सगअप्पे हि णिवसेज्ज, उज्झित्ता चिय चउविह-इत्थीओ।
परे णेव रज्जेज्जा, उत्तम-बंभचरिय-वद-जुदो।।128।।

उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत से युक्त जीव चार प्रकार की स्त्रियों (देवी, मुनिष्यिनी, तिर्यंचिनी, पुत्तलिका) का त्यागकर अपनी आत्मा में ही निवास करता है, वह पर में रंजायमान नहीं होता।

णिस्संगो णिम्मोहो, णिग्गंथो णो गहेज्ज परवत्थुं।
सगहिदाय सुपालीअ, असंग-वदं सुविसुद्धीए।।129।।

वे निःसंग, निर्मोह व निर्ग्रन्थ मुनिराज स्वात्म द्रव्य को छोड़कर परवस्तुओं को ग्रहण नहीं करते थे। वे स्वहित के लिए विशुद्धिपूर्वक अपरिग्रह व्रत का पालन किया करते थे।

चउकरभूमिं सोहिय, रविपयासे चलीअ पयोजणेण।
पालीअ इरिय-समिदिं, इरिया-पथ-आसव-भावेण॥130॥

वे मुनिराज सूर्य के प्रकाश में किसी प्रयोजन से ही चार हाथ भूमि को शोधकर चला करते थे। ईर्यापथ आस्रव के भाव से वे ईर्या समिति का पालन करते थे।

णियभाव-पगासणाइ, भासा-अवलंबो सया सव्वत्थ।
हिद-मिद-पिय-वयणंखलु,अमियंववदीअमुणिवरोदु॥131॥

अपने भावों के प्रकटीकरण के लिए सर्वत्र सदा ही भाषा एक अवलंबन है। वे मुनिराज अमृत के समान हित-मित-प्रिय वचन बोलते थे।

गवेसेदुं सगसुद्ध-सहावं पालिदुं जमं धम्मं च।
गहीअ सुद्धाहारं, झाणज्झयण-णिमित्तेणं च॥132॥

वे मुनिराज अपने शुद्ध स्वभाव की गवेषणा के लिए और संयम व धर्म के पालन के लिए एवं ध्यान व अध्ययन के निमित्त शुद्ध आहार ग्रहण करते थे।

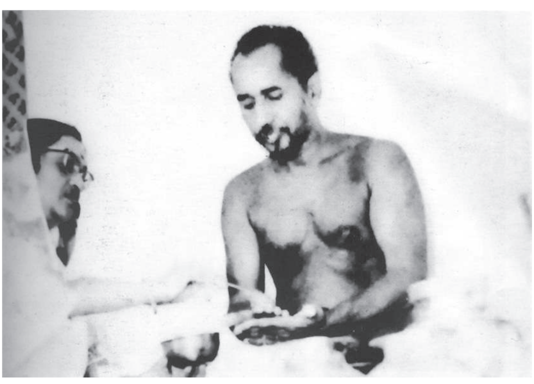

णवहाभत्तीइ दत्त-सुद्धाहारं गहेज्ज सावगेहि।
सङ्घाइगुणजुत्तेहि, सोहिय एसणा-पालगो दु।।133।।

एषणा समिति के पालक वे श्री विद्यानंद मुनिराज श्रद्धादि गुणों से युक्त श्रावकों के द्वारा नवधाभक्तिपूर्वक दिए गए शुद्ध आहार को शोधकर ग्रहण करते थे।

गहीअ धरीअ वत्थुं, जदणेणं सिरि-विज्जाणंदमुणी।
आदाण-णिक्खेवणं, सुपालीअ सव्वत्थ सया हि।।134।।

श्री विद्यानंद मुनिराज यत्नपूर्वक वस्तुओं को ग्रहण करते थे और रखते थे। वे सर्वत्र सदा ही आदान-निक्षेपण समिति का पालन किया करते थे।

पस्सिय फासुग-ठाणं, जीवाइ-रहिदं सय उच्चारीअ।
जदणेणं उस्सग्गं कम्म-उस्सग्गस्स पालीअ।।135।।

वे सदा जीवादि से रहित प्रासुक स्थान देखकर ही यत्नपूर्वक मल-मूत्र का त्याग करते थे। कर्मों के उत्सर्ग के लिए उत्सर्ग समिति का पालन किया करते थे।

रायदोस-णिवत्तीइ, सव्वदा अट्ठविहफास-वत्थूसु।
जयित्ता फासिंदियं, लहीअ अप्पफासं सुहदं।।136।।

आठ प्रकार की स्पर्श वाली वस्तुओं में रागद्वेष की निवृत्ति के लिए स्पर्शनेन्द्रिय को जीतकर वे आत्मा का सुखद स्पर्श प्राप्त करते थे।

तित्त-कसायंब-कडुअ-महुर-पंचविसया रसणिंदियस्स।
गहीअ रसणक्ख-जयी, आहारं जयिय समत्तेण।।137।।

रसना इन्द्रिय के पाँच विषय हैं—चरपरा, कसायला, खट्टा, कड़वा व मधुर। वे रसना इन्द्रियजयी मुनिराज समत्व भाव से इन्द्रिय विषयों को जीतकर आहार ग्रहण करते थे।

सुगंध-दुग्गंधा बे-विसया पसिद्धा घाणस्स लोए।
धरेज्ज समत्तं तेसु, रायदोसणिवत्तीए चिय।।138।।

लोक में घ्राणेन्द्रिय के दो विषय प्रसिद्ध हैं—सुगंध और दुर्गंध। राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए यति उनमें समत्व भाव धारण किया करते थे।

चक्खुस्स पंचविसया, पुणो उत्तरोत्तर-असंखभेया।
रायदोसणिवत्तीइ, धारीअ समभावं तेसुं॥139॥

चक्षु इंद्रिय के पाँच विषय हैं। पुनः उसके उत्तरोत्तर असंख्यात भेद होते हैं। रागद्वेष की निवृत्ति के लिए मुनिराज ने उनमें समता भाव धारण किया।

कण्णिंदिय-विसयेसुं, णेव कया वि रज्जीअ सत्तेसुं।
तं पंचिंदिय-जेदुं, णमामि विज्जाणंदजोगिं॥140॥

सात प्रकार के कर्ण इन्द्रिय के विषयों में जो कभी रंजायमान नहीं हुए उन पंचेन्द्रिय-जयी श्री विद्यानंदजी योगीराज को नमस्कार करता हूँ।

महुरकंठेण पढीअ, तिसंझासु चउवीसतित्थयराण।
णासस्स चउगदीणं, थुदिं अइ-विसुद्ध-चित्तेणं॥141॥

वे अति विशुद्ध चित्त से, मधुर कंठ से चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति तीनों संध्याकालों में चारों गतियों के नाश के लिए किया करते थे।

करीअ पडिक्कमणं दु, तिजोगेहि सगज्जिद-अहं खयिदुं।
अण्णाण-पमादेहिं, कसायेण वा विसुद्धीए॥142॥

अज्ञान, प्रमाद वा कषाय से अपने द्वारा अर्जित पापों के क्षय के लिए वे तीनों योगों से विशुद्धिपूर्वक प्रतिक्रमण करते थे।

देहादु ममत्तभाव-मुज्झिय सुमरीअ पंचगुरुगुणा दु।
तच्चचिंतणं जावं, कुव्वीअ तिजोग-सुद्धीए॥143॥

देह से ममत्वभाव का त्यागकर वे पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण किया करते थे। वे तीनों योगों की शुद्धिपूर्वक तत्त्वचिंतन व जप किया करते थे।

पावकम्मक्खयेदुं, काउस्सग्गो दु पावगोव्व सया।
आसण्णभव्वजीवा, तं करिदुं सक्का भावेहि॥144॥

पाप कर्म के क्षय के लिए कायोत्सर्ग सदैव अग्नि के समान है। आसन्न भव्यजीव ही भावपूर्वक उस कायोत्सर्ग को करने में समर्थ होते हैं।

मज्झ वदं णिद्दोसं, होदु अणागदयाले अवि तम्हा।
सावज्जकज्ज-चागं, पुव्वे करीअ पच्चक्खाणं॥145॥

भविष्यकाल में भी मेरे व्रत निर्दोष ही होवें ऐसा विचारकर वे पूर्व में ही सावद्य कार्य का त्याग करते थे। यही प्रत्याख्यान है।

देहो ण मे सहावो, असरीरी-सहावं चिय सिद्धोव्व।
लहिदुं काउस्सग्गं, कुव्वीअ जिणमुद्दाधारी॥146॥

ये शरीर मेरा स्वभाव नहीं है। सिद्धों के समान अशरीरी स्वभाव को प्राप्त करने के लिए वे जिनमुद्राधारी कायोत्सर्ग किया करते थे।

तिलतुसमेत्तं संगं, णो चित्तेण गहीअ मुणी कया वि।
जहाजाद-दियंबरो,पिच्छि-कमंडलु-धारगो तह॥147॥

वे यथाजात दिगंबर, पिच्छी-कमंडलु धारक मुनि मन से तिलतुष मात्र भी परिग्रह ग्रहण नहीं करते थे।

अचेलक्को य वत्थाभूसण-चागी सुंदरो मज्जीअ।
चित्तसुद्धीए णाण-णीरेण णेव बहि-सलिलेण॥148॥

अचेलक्य गुण के धारी, वस्त्राभूषण के त्यागी, आत्म-सौन्दर्य के धारक मुनिराज चित्त की शुद्धिपूर्वक ज्ञान रूपी जल से स्नान किया करते थे किन्तु बाह्य नीर के द्वारा कभी नहीं करते थे।

रयणत्तय-सरिदाए, अवगाहिदु-मण्हाण-गुणं धरीअ।
भयवद-सरूवो सो दु, सुरासुराइ-पुज्जो णिच्चं॥149॥

उन्होंने रत्नत्रय रूपी नदी में अवगाहन के लिए अस्नान गुण धारण किया। वे मुनि विद्यानंद भगवान का रूप थे और सुर-असुरादि से पूजित हुए थे।

देहादीदु णिरीहो, धुवीअ सग-सुंदर-दंतावलिं ण।
अहिंसावद-रक्खाइ, धुवंति मुणी णेव रायेण॥150॥

देह आदि से अत्यंत निरीह मुनिराज अपनी सुंदर दंतावली को नहीं धोते थे। अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए कदाचित् मुनिराज दाँत धोते हैं किन्तु राग से कभी नहीं।

करेदुं संजमतवज्झाण-विड्ढीइ पणविह-सज्झायं।
गहीअ इगभुत्ति-मट्ठपहरे वदपालगो सया हि॥151॥

वे व्रत पालक मुनिराज संयम, तप व ध्यान की वृद्धि के लिए पाँच प्रकार के स्वाध्याय के लिए आठ पहर में सदैव एक भुक्ति ही ग्रहण किया करते थे।

जावदु तावदु जंघाबलं गहिस्सामि सुद्धाहारं दु।
सेट्ठदियंबरमुणीव, करीअ चिय ठिदिभोयणं सो॥152॥

जब तक जंघाबल है तब तक मैं श्रेष्ठ दिगंबर मुनि के समान शुद्धाहार को ग्रहण करूँगा। इस प्रकार चिंतन कर वे मुनिराज खड़े होकर ही आहार ग्रहण किया करते थे। अर्थात् स्थिति भोजन किया करते थे।

देहसम-परिहरणत्थ-मुज्जा-संगहणत्थं सुधम्मस्स।
सुवंति अप्पयालस्स, खिदिआदीसुं च जदणेणं॥153॥
रयणत्तयविड्ढीए, विवित्तो य पमादरहिदो सुवीअ।
अप्पयालस्स चिय जदि, आवसियं मुणिवरिंदो तो॥154॥ (जुम्मं)

देह के श्रम के परिहार के लिए, ऊर्जा के संग्रह के लिए व धर्म के लिए वे मुनिराज अल्पकाल के लिए यत्नपूर्वक पृथ्वी आदि पर शयन किया करते हैं, उसी प्रकार रत्नत्रय की वृद्धि के लिए वे विवेकयुक्त, प्रमाद रहित मुनींद्र यदि आवश्यक होता तो अल्पकाल के लिए विश्राम किया करते थे।

सव्वदियंबरमुणीण, होज्ज अजायगविट्टी णियमादो।
तदो जीव-रक्खाए, बे-ति-चउमासे कुव्वंते॥155॥
उववासेणं सहिदं, सकरेहि वा पराण केसलोअं।
करीअ वि मुणिंदो सो, देहादो रायं खयेदुं॥156॥ (जुम्मं)

सर्व दिगंबर मुनियों की नियम से अयाचकवृत्ति होती है अत: जीवों की रक्षा के लिए वे दो, तीन या चार माह में उपवास से सहित अपने वा दूसरों के हाथों से केशलोंच करते हैं। वे मुनिराज देह से राग के क्षय के लिए केशलोंच किया करते थे।

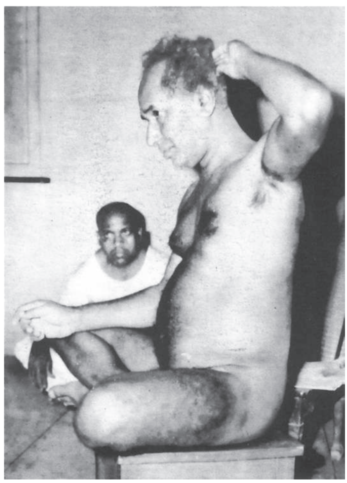

मूलगुणट्ठवीसा दु, सगप्पस्स पावेदुं अट्ठगुणा।
सगसत्तीइ पालीअ, णिच्चं सवर-हिद-भावणाइ॥157॥

निजात्मा के आठ गुणों को प्राप्त करने के लिए एवं स्वपर-हित की भावना से वे मुनिराज शक्तिपूर्वक अट्ठाईस मूलगुणों का पालन किया करते थे।

अणंतरं चउतीसा, उत्तरगुणा पालीअ विसुद्धीइ।
बावीस-परिसहजयं, बारसतवं कम्मक्खयिदुं॥158॥

अनंतर कर्म क्षय के लिए बाईस परीषहजय एवं बारह तप, इस प्रकार चौंतीस उत्तरगुण का पालन मुनिवर विशुद्धिपूर्वक किया करते थे।

संकिलिट्ठ-परिणामा, जीवस्स छुहावेयणीयुदयेण।
णवरि छुहं जयीअ चिय, समत्तेण कम्मक्खयेदुं॥159॥

जीव के क्षुधा वेदनीय के उदय से कभी संक्लेश परिणाम होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि वे मुनिराज कर्म-क्षय के लिए समत्व भाव से क्षुधा परीषह जीतते थे।

देहस्स उण्हयाले, जलं सुस्सेदि तिव्वक्ककरेहिं।
णाणामियं पिबंतो, सो जयीअ तिसं विसुद्धीइ॥160॥

ग्रीष्मकाल में सूर्य की तीव्र किरणों से देह का जल भी सूख जाता है। किन्तु ज्ञानामृत का सेवन करते हुए वे मुनिराज विशुद्धिपूर्वक तृषा परीषह को जीतते थे।

सीदयालम्मि सीददि, सीदेणं तहवि झाण-पावगेण।
जयीअ सीदपरिसहं, कम्म-णिज्जराइ संवरस्स॥161॥

शीतकाल में सर्दी से जीव दु:खी होते हैं तथापि ध्यान रूप अग्नि से वे शीत परीषह को कर्मनिर्जरा व संवर के लिए जीतते थे।

काणणे उण्हयाले, वणप्फदी वि दहदि उण्हत्तेणं।
तदा वि जयीअ उण्हं, जिणभत्ति-सीयल-सलिलेणं॥162॥

ग्रीष्मकाल में वन में ऊष्णता से वनस्पति भी जलती है तब भी वे मुनिराज जिनभक्ति के शीतल नीर से गर्मी को जीतते थे।

दंसमसगाइ-कीडा, दुक्खंति णवरि कंखदि मुणिंदो ण।
तण-रक्खं जयीअ तं, झाण-तच्चचिंतण-बलेणं॥163॥

दंशमशक आदि कीट जीव को दु:ख देते हैं किन्तु वे मुनीन्द्र तन की रक्षा नहीं चाहते थे, वे ध्यान व तत्त्वचिंतन के बल से उस दंशमशक परीषह को जीतते थे।

भव-तण-भोय-विरत्तो, बालोव्व सहजो कंखा-रहिदो य।
जयीअ णगिण-परिसहं, सव्वदुरिदं कम्मक्खयिदुं॥164॥

संसार-शरीर व भोगों से विरक्त, बालक के समान सहज और

आकांक्षा से रहित वे मुनिराज सर्व पापों के क्षय के लिए नग्न परीषह जीतते थे।

भववड्ढगकारणादु, विरत्तो दु पंचिंदिय-विसयादो।
सगप्पसरूवे रदो, अरदि-रदि-परीसहं जयीअ॥165॥

संसारवर्द्धक कारणों व पंचेन्द्रिय विषय से विरक्त और निजात्म स्वरूप में रत वे मुनिराज अरति-रति-परीषह को जीतते थे।

रागेणं त्थी-रूवं, पस्सिय रायजुद-चित्तं रागीण।
वीदराय-अणगारो, विरदचित्तादु णेव रायी॥166॥

रागपूर्वक स्त्री के रूप को देखकर रागियों का चित्त राग से युक्त हो जाता है। किन्तु वीतरागी अनगार विरक्त चित्त होने से कभी रागी नहीं हुए।

णो चिंतदि पज्जायं, सव्वे जाणित्तु परमप्प-सत्तिं।
जयदि इत्थी-परिसहं, मुणिवरो तिलोयपुज्जो अवि॥167॥

श्रेष्ठ आत्मा सभी में परमात्म शक्ति को जानकर पर्याय का चिंतन नहीं करता। अत: द्रव्यदृष्टि धारक त्रिलोकपूज्य मुनिवर सदैव स्त्री-परीषह को जीतते हैं।

पदत्ताण-हीण-मुणी, चलीअ सम-विसम-पहे समत्तेण।
कंडगादिं सहंतो, णेव करीअ अट्टं चित्तं॥168॥

पदत्राण से रहित मुनि सम व विषम अथवा अनुकूल व प्रतिकूल मार्ग पर कंटक आदि को सहन करते हुए समत्वभाव से चला करते थे, वे कभी आर्त्त चित्त नहीं किया करते थे अर्थात् वे चर्या परीषह विजेता थे।

णिप्पयोजण-गमणं ण, मेत्तं वंदण-जत्तादीणं चिय।
समत्त-दिव्वत्थेणं, पह-पडिऊलदं जयीअ सो॥169॥

वे मुनिराज मात्र वंदना, यात्रा आदि के लिए गमन किया करते थे, वे निष्प्रयोजन गमन कभी नहीं किया करते थे। वे समत्व रूपी दिव्यास्त्र के द्वारा पथ की प्रतिकूलताओं को जीतते थे।

चिट्ठीअ दु पउमासण-पज्जंकासणादीहि झायेदुं।
देहकट्ठं कया अवि, णेव मण्णदि अप्पकट्ठं च॥170॥

वे पद्मासन, पर्यंकासन आदि के द्वारा ध्यान के लिए बैठा करते थे। वे शरीर के कष्ट को कदापि आत्मा का कष्ट नहीं मानते थे।

रिणमोयणं व णियमा, सोक्ख-कारणं मण्णीअ कट्ठं वि।
णिसज्जा-परीसहं दु, जयीअ चिय धम्मज्झाणस्स॥171॥

वे मुनिराज कष्ट को सुख का कारण मानते थे क्योंकि कष्ट आने पर वे विचारते थे कि ''मैं ऋण से मुक्त हो रहा हूँ'' इस प्रकार धर्मध्यान के लिए वे निषद्या परीषह को जीतते थे।

संसारी सुवदि देह-सुहस्स अणुऊल-सेज्जादीसुं च।
कट्ठं सहंतो सेज्ज-णिमित्तेण परिसहं जयीअ॥172॥

संसारी जीव अनुकूल शय्या आदि पर देह-सुख के लिए शयन करते हैं। वे मुनिराज कष्ट को सहन करते हुए शैय्या के निमित्त से हुए परीषह को जीतते थे।

जदि दुट्ठ-जणो वदेज्ज, कडुगं परुसं अलीगं णिंदं च।
पोग्गलं दु चिंतंतो, तेसुं धरीअ समत्तं तं॥173॥

यदि कोई दुष्टजन, कटुक, परुश, अलीक व निंद्य वचन बोलता तो वे मुनिराज उन शब्दों को पौद्गलिक चिंतन करते हुए उनमें समत्व-भाव धारण किया करते थे।

सगप्प-सुद्धगुणा चिय, वड्ढंति अप्पे सव्वत्थ सया हि।
वयणं विसुद्धि-हेदू, गहिय कोह-परिसहं जयीअ॥174॥

आत्मा में सर्वत्र सदा ही स्वात्मा के शुद्ध-गुण वृद्धिगत होते हैं। वे मुनिराज विशुद्धि हेतु वचनों को ग्रहण कर क्रोध परीषह को जीतते थे।

ओसहि- दायग-णेहल-मादू व सक्कराइ सह पुत्तस्स।
सहीअ कडुगवयणाणि, कम्मणिज्जराइ सुणाणेण॥175॥

जैसे माँ अपने बालक के रोग को दूर करने के लिए उसे शक्कर के साथ मिलाकर स्नेहपूर्वक कड़वी औषधि देती है उसी प्रकार वे मुनिराज कर्मों की निर्जरा के लिए कड़वे वचनों को सहा करते थे।

को वि पुव्वभववइरी, जदि हरदि पाणं चिंतदि मुणी तो।
मम कम्मक्खयेदुं च, गहिदं सगमूलियं तेणं॥176॥

कोई भी पूर्वभव का बैरी यदि मुनिराज के प्राणों का हरण करता है तो मुनिराज चिंतन करते हैं कि मेरे कर्मक्षय के लिए ही उसने अपने मूलधन को ग्रहण किया है।

उवसग्गेण खयंते, कम्मं ण किंचिवि अप्प-हाणी मम।
चिंतंतो जिणवयणं, वहं परीसहं जयीअ सो॥177॥

उपसर्ग से कर्मों का क्षय होता है, इससे मेरे आत्मा की हानि किंचित् भी नहीं है। इस प्रकार जिनवचनों का चिंतन करते हुए वे वध परीषह को जीतते थे।

छुआ-रोय-दुक्खेहिं, पाणे कंठगदे णेव जायेज्ज।
बहु-पडिऊलदासुंपि, जायणा-परिसह-जयी मुणी॥178॥

क्षुधा, रोग वा दुःखों से प्राणों के कंठगत हो जाने पर भी अथवा बहुत प्रतिकूलताएँ होने पर भी जो कभी याचना नहीं करते, वे याचना-परीषहजयी मुनिराज हैं।

मरणादु अहियकट्ठं, जायणं मण्णेदि सया साहू।
तं णिरीहवित्तीए, जीवदि णेव जायदि कया वि॥179॥

साधु मरण से अधिक कष्ट याचना को मानता है। अतः मुनिराज सदैव निरीहवृत्ति से जीते हैं, कभी भी याचना नहीं करते।

बहुतवं वि किच्चा जदि, ण लहदि सुद्धाहार-मिड्ढि-मादिं।
पस्सिय संपत्तिड्ढी, थोवतवेण सीददि ण जयी॥180॥
सेट्ठ-साहुस्स इड्ढिं, णो कंखेदि अण्णुवलद्धि-मादिं।
किंचिवि लाहं साहू, समत्तेणं च अलाह-जयी॥181॥ (जुम्मं)

यदि बहुत तप करके भी मुनिराज शुद्धाहार व ऋद्धि आदि को प्राप्त नहीं करते अथवा दूसरों के द्वारा अल्प तप से प्राप्त ऋद्धियों को देखकर जो दुखी नहीं होते वे अलाभ-परीषहजयी मुनिराज हैं। अलाभ-परीषहजयी मुनिराज समत्व भाव से श्रेष्ठ साधु को प्राप्त ऋद्धि की, अन्य की उपलब्धि आदि अथवा किंचित् भी लाभ की आकांक्षा नहीं करते।

असादवेयणिज्जत्त-रोयो दुहमूलं जदि सरीरम्मि।
समत्तं धारदि वाहि-परिसह-जयी जिणवयणेहिं॥182॥

असातावेदनीय कर्म से उत्पन्न दुःख का मूल रोग यदि शरीर में होता है तो व्याधि परीषहजयी मुनिराज जिनवचनों से समत्व-भाव धारण करते हैं।

तिण-कंडग-फासेणं, पत्त-कट्ठेहि संकिलिट्ठ-भावा।
णेव कुव्वदि तिणफास-परीसह-जयी मुणी कया वि॥183॥

तृण-कंटकादि के स्पर्श से वा उनसे प्राप्त कष्टों से तृणस्पर्श-परीषह-जयी मुनिराज कदापि संक्लेश भाव नहीं करते।

सेदेण गहिद-रजेण, कंडु-आदिस्स-वेयणं मलेणं।
असुइ-देहे मुणिंदो, तहा मलपरीसहं जयीअ॥184॥

इस अशुचि देह में पसीना से ग्रहण की गई रज से या मल से उत्पन्न हुई खुजली आदि की वेदना मल परीषह है, उसको वे श्री विद्यानंद मुनिराज जीतते थे।

किदायरं बहुजणेहि, सक्कारं पूयणं पुरक्कारं।
ण लहदि जोग्गे वि तह वि, परीसह-जयी सीददि णेव॥185॥

कदाचित् मुनिराज योग्य होने पर भी बहुजनों के द्वारा किए गए आदर, सत्कार, पूजा या पुरस्कार को प्राप्त नहीं करते तथापि वे किंचित् भी दुःखी नहीं होते, ऐसे वे सत्कार-पुरस्कार-परीषहजयी मुनिराज होते हैं।

विसिट्ठ-णाण-संजुदे,णाणा-विज्जा-कला-संजुत्ते वि।
णाहं णदो य धीरो, पण्णा-परीसह-जयी सो दु॥186॥

विशिष्ट ज्ञान से संयुक्त होने पर भी, नाना विद्या व कलाओं से युक्त होने पर भी जो अहंकार नहीं करते वे विनम्र, धीर मुनि प्रज्ञा-परीषहजयी कहलाते हैं।

कडुअआगमज्झयणं,जदि विसिट्ठ-खओवसम-अभावेण।
लहदि णाणं ण दूभदि, पुव्वकम्मुदयं चिंतंतो॥187॥

आगम का अध्ययन करके भी यदि विशिष्ट ज्ञान के क्षयोपशम का अभाव होने पर मुनिराज ज्ञान प्राप्त नहीं करते तो पूर्वकृत कर्मोदय का चिंतन करते हुए वे कभी दुःखी नहीं होते।

अज्झयणे चिंतणे वि, णो लद्धे णाणे किंचिवि दु णेव।
किलिसेदि मुणिवरिंदो,खलु अण्णाण-परीसह-जयी॥188॥

आगम का अध्ययन व चिंतन करने पर भी ज्ञान प्राप्त नहीं होने पर अज्ञान-परीषहजयी मुनिराज कभी संक्लेश परिणामों से युक्त नहीं होते।

पक्खमासुववास-मुग्गतवं कुणंतो लहदि इड्ढिं णो।
तवदि समत्तेणंसय,मुणी अदंसण-परिसह-जयी॥189॥

पक्ष, मास इत्यादि का उपवास या उग्र तप करते हुए भी यदि मुनिराज ऋद्धि प्राप्त नहीं करते, सदैव समत्व-भाव से तप करते हैं तब वे अदर्शन-परीषहजयी मुनिराज कहलाते हैं।

बावीस-परीसहा दु, धीर-वीर-मुणि-विज्जाणंदेणं।
समत्तेणं दु सहिदा, संवर-णिज्जरा मुत्तीए॥190॥

श्री विद्यानंद मुनिराज ने कर्मों के संवर, निर्जरा व मोक्ष के लिए बाईस परीषहों को समत्व भाव से सहन किया।

तवो इच्छाणिरोहो, इंदिय-दमणं वि आगमे भणिदो।
मण-अक्ख-जयेण विणा,कहं तवो होज्ज अव्वदीण॥191॥

इच्छाओं का निरोध करना तप है। इंद्रियों का दमन भी तप है। ऐसा जिनागम में कहा गया है। मन व इंद्रियों के जीते बिना अव्रतियों के तप कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। अव्रती तप की भावना भा सकते हैं, चिंतन कर सकते हैं, उपवासादि कर अभ्यास कर सकते हैं किन्तु तप तो महाव्रतियों के ही होता है।

बहिरंतर-भेयादो, तवो बेविहो जिणसमये भणिदो।
बहिरंग-तवं कुणिदुं, समत्थो अवि मिच्छाइट्ठी।।192।।

बाह्य व अंतरंग के भेद से जिनागम में तप दो प्रकार का कहा गया है। बाह्य तप करने में मिथ्यादृष्टि भी समर्थ होता है।

अंतर-तव-भावणाइ, कुव्वदि बहिर-तवं सम्माइट्ठी।
अंतरंगतवं विणा, बहिरंग-तवो ण सिव-हेदू।।193।।

सम्यग्दृष्टि जीव अंतरंग तप की भावना से बाह्य तप करता है। अंतरंग तप के बिना बहिरंग तप मोक्ष का हेतु नहीं होता है।

धम्मज्झाणेण विणा, तवो णिरत्थगो सय मुणेदव्वो।
अणेगवारं वि बीअ-विहीण-खेत्त-आअंछणं व।।194।।

धर्मध्यान के बिना तप सदा वैसे ही निरर्थक जानना चाहिए जैसे बीज से रहित खेत को अनेक बार भी जोतने पर फसल प्राप्त नहीं होती, वह निरर्थक ही है।

उववास-अवमोदरिय-वित्तिपरिसंखाण-रसचागतवा।
विवित्त-सेज्जासणं च, कायकिलेसो बहिर-तवा।।195।।

उपवास, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त-शैय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं।

खज्ज-सज्ज-लेह-पेय-चउविह-असण-उज्झणं उववासो।
वियडि-अबंभ-णासगो, समत्तेण विसुद्धभावेहि।।196।।

खाद्य, स्वाद्य, लेह्य व पेय इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है। समत्वभाव व विशुद्धभावपूर्वक किया गया उपवास विकृति व अब्रह्म का नाशक होता है।

सुतव-विड्ढीए णूण-सुद्धाहार-गहणं सगछुहादो।
ऊणोदर-तव-खादो, पमादं खयिदुं विसुद्धीइ॥197॥

प्रमाद के क्षय के लिए, सम्यक् तप की वृद्धि के लिए विशुद्धि से अपनी भूख से कम शुद्ध आहार ग्रहण करना ऊनोदर नामक विख्यात तप है।

महुर-तित्त-कडु-कसाय-अंब-रस-आमिल्लणं सत्तीए।
अप्पविसुद्धीए सया, रसपरिचागतवो सेट्ठो हु॥198॥

मधुर, तिक्त, कटुक, कसायला व खट्टे रस का आत्मविशुद्धि से शक्तिपूर्वक त्याग करना श्रेष्ठ रसपरित्याग तप है।

गुड-तिल्ल-घिद-दहि-दुद्ध-पणरसाण वा लवणजुद-छ-रसाण।
ससत्ति-मणुगूहंतो, णिल्लुंछणं रसचाग-तवो॥199॥

गुड़, तेल, घृत, दही व दूध इन पाँच रसों का अथवा ये पाँच व नमक सहित इन छह रसों का अपनी शक्ति को न छिपाते हुए त्याग करना रसपरित्याग तप है।

वित्तिं कुणदि जो कट्टु, दव्व-खेत्त-यालाइ-मज्जादं च।
आहारं गहिदुं सो, वित्तिपरिसंखाण-जुत्तो य॥200॥

जो आहार ग्रहण करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, कालादि की मर्यादा करके वृत्ति करता है वह वृत्तिपरिसंख्यान तप से युक्त है।

वित्तिपरिसंखाणं, सग-सत्ति-विड्ढीइ कम्मक्खयेदुं।
णो सम्माणस्स कुणदि, पर-पराभव-भाव-रहिदो य॥201॥

पर के पराभव के भाव से रहित मुनिराज सम्मान के लिए नहीं अपितु अपनी आत्मशक्ति की वृद्धि एवं कर्मक्षय के लिए वृत्ति-परिसंख्यान तप करते हैं।

पउम-वीर-वज्ज-बंभ-गोड-पल्लंकादि-आसणेहिं च।
तच्चचिंतणं कुणदि, पसत्थ-झाणं सया जोगी॥202॥

पद्मासन, वीरासन, वज्रासन, ब्रह्मासन, गोड़ासन, पर्यंकासनादि आसनों से योगीराज सदा तत्त्वचिंतन व प्रशस्तध्यान करते हैं।

होदि कट्ठं जदि तो वि, णेव विसट्टेदि झाणजोगादो।
कुणदि तिव्व-तवं देह-कट्ठं णो अप्पुल्लो मणदि।।203।।

यदि मुनिराज को कष्ट भी होता है तो भी वे ध्यान-योग से स्खलित नहीं होते। वे मुनिराज शरीर के कष्ट को अपना नहीं मानते एवं तीव्र तप करते हैं।

उण्हसीदबाहाए, जलविट्ठीइ चवलाजुद-पवणेहि।
रोय-पहुदि-जणिद-कट्ठ-सहणं दु कायकिलेसतवो।।204।।

ऊष्ण वा शीत की बाधा होने पर, चमकती बिजली के साथ वायु से जलवृष्टि होने पर अथवा रोगादि जनित कष्टों का सहन करना कायक्लेश तप है।

सव्वतवा पकुव्विदा, मुणि-विज्जाणंदेण विसुद्धीए।
अणुगूहंतो सत्तिं, झाणज्झयण-रद-संजमिणा।।205।।

ध्यान व अध्ययन में रत संयमी मुनिश्री विद्यानंदजी के द्वारा अपनी शक्ति को न छिपाते हुए विशुद्धिपूर्वक सभी तप किए गए।

पायच्छित्तं विणओ, वेज्जावच्चं सज्झाओ कमसो।
काउस्सग्गो झाणं, छव्विहंततवो सिवहेदू।।206।।

प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान ये क्रमशः छह प्रकार के अंतरंग तप हैं जो मोक्ष का हेतु हैं।

अंतरतवेणं विणा, बहितवो मुत्तिअं विणा सिप्पीव।
अहवा विज्जुदं विणा, विज्जुद-उवयरणं व णेया।।207।।

अंतरंग तप के बिना बाह्य तप वैसा ही जानना चाहिए जैसे मोती के बिना सीप अथवा विद्युत् के बिना विद्युत् उपकरण।

अंतरवीयेण विणा, णारिएल-बादाम-पहुदीणं च।
आवरणं व केवलं, बहिरो विणा अंतरतवेण।।208।।

अंतरंग तप के बिना बाह्य तप वैसा ही है जैसे अंदर बीज (गिरि) के बिना नारियल या बादाम आदि का केवल छिलका।

सम्मत्त-जम-वदेसुं, अण्णाण-पमाद-कसायेहिं वा।
खयिदु-मुप्पण्ण-दोसा, करेज्ज जदी पायच्छित्तं।।209।।

सम्यक्त्व, नियम और व्रतों में अज्ञान, प्रमाद या कषाय से उत्पन्न दोषों के क्षय करने के लिए यतिजन प्रायश्चित्त करते हैं।

धम्मफल-धम्मेसु सम्मत्ताइगुणेसु ताण धारगेसु।
धरेज्जा विणयभावं, सुद्धप्पगुणं विआसेदुं।।210।।

धर्म, धर्म के फल में, सम्यक्त्वादि गुणों में एवं उनके धारकों में मुनि शुद्धात्म गुणों के विकास के लिए विनयभाव धारण करते हैं।

दंसण-णाण-चरिय-तव-उवयार-भेयादु पणहा विणयो।
तवसीहि पालिदव्वो, विणयधम्मो सगसत्तीए।।211।।

दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप व उपचार के भेद से विनय पाँच प्रकार की कही गई है। अपनी शक्ति के अनुसार तपस्वियों के द्वारा विनयधर्म सदैव पालन किया जाना चाहिए।

उवयार-विणयं विणा, ण ववहारधम्म-संभवो कया वि।
धम्मायदण-पुज्जेसु, विणयं करेज्ज सिवसिद्धीइ।।212।।

उपचार-विनय के बिना व्यवहारधर्म कदापि संभव नहीं है। मोक्ष की सिद्धि के लिए धर्मायतनों में व पूज्यजनों में विनय करनी चाहिए।

सण्णाण-पगासणाइ, विणओ परमतवो मोक्खद्दारं।
मण्णेज्ज रहचक्कं व, वट्टेदुं ववहारधम्मं।।213।।

सम्यग्ज्ञान के प्रकाश के लिए विनय परमतप है। विनय ही मोक्ष का द्वार है। व्यवहार-धर्म के प्रवर्तन के लिए विनय ही रथ के पहिये के समान मानना चाहिए।

संजमविड्ढीइ खेद-सम-किलंताणं सय परिहारस्स।
महापीदीइ मुणीण, अणुवज्जणं वेज्जावच्चं।।214।।

संयम की वृद्धि के लिए, खेद, श्रम व क्लांति के परिहार के लिए महाप्रीतिपूर्वक मुनियों की सेवा-शुश्रूषा करना वैय्यावृत्ति है।

धम्मं वड्ढेदु कट्ठं णासिदुं संजमीणं णिच्चं।
सगभावविसुद्धीए, वेज्जावच्चं पकुव्वेज्जा।।215।।

संयमियों के धर्म की वृद्धि के लिए और कष्टों के नाश के लिए अपने भावों की विशुद्धिपूर्वक वैय्यावृत्ति करनी चाहिए।

विड्ढीए झाण-णाण-तव-संजम-वेरग्ग-जिणभत्तीण।
मण-वयणकायेहिं च, आहि-वाहि-आइं हरेदुं।।216।।
अमूढदिट्ठी उवसम-भाव-जुत्तो संवेगी किवालू।
आसण्णभवी सक्को, कुणिदुं सया वेज्जावच्चं।।217।। (जुम्मं)

संयमीजनों के ज्ञान, ध्यान, तप, संयम, वैराग्य व जिनभक्ति की वृद्धि के लिए, आधि-व्याधि आदि के नाश के लिए मन, वचन, काय से अमूढ़दृष्टि, उपशम भाव से युक्त, संवेगी, कृपालु व आसन्नभव्य जीव ही सदा वैयावृत्ति करने के लिए समर्थ है।

सव्वं रोयं सोगं, खयिदुं सक्को वेज्जावच्च-तवो।
देदि अच्चंत-सुंदर-देहं उत्तम-संघडणं च।।218।।

वैय्यावृत्ति तप सभी रोग व शोक का नाश करने में समर्थ है। यह तप उत्तम संहनन व अत्यंत सुंदर देह को देता है।

सुहणाम-मुच्चगोदं, देज्ज सुहाउं सादावेयणीयं।
णासिदुं पावपइडिं, सव्वुक्किट्ठ-तवो धम्मो दु।।219।।

वैय्यावृत्ति नामक यह सर्वोत्कृष्ट-तप व धर्म नित्य ही शुभ नाम, उच्चगोत्र, सादा वेदनीय व शुभायु प्रदान करता है। पाप प्रकृतियों के नाश के लिए यह तप सर्वोत्कृष्ट है।

जिणसुत्ताणं पढणं, चिंतणं सुणणं जाणणं हिदाय।
परकल्लाणत्थं वा, धम्मदेसणं पि सज्झाओ।।220।।

हित के लिए जिनसूत्रों का पढ़ना, चिंतन करना, सुनना, जानना व पर कल्याण के लिए धर्म उपदेश देना भी स्वाध्याय है।

सगहिद-भावणं विणा, पढणं गंथस्स कहं सज्झाओ।
मेत्तं परुवएसस्स, अज्झयणं णेव सज्झाओ।।221।।

स्वहित की भावना के बिना ग्रंथ पढ़ना स्वाध्याय कैसे कहा जा सकता है? मात्र परोपदेश के लिए अध्ययन करना स्वाध्याय नहीं है।

परमतवो सज्झाओ, णियमा धम्म-सुक्कज्झाण-हेदू।
माणत्थपदाकंखी, अज्झयणसीलो णो णाणी।।222।।

स्वाध्याय परम तप है। वह नियम से धर्म व शुक्लध्यान का हेतु है। सम्मान, धन, पद, प्रतिष्ठा का आकांक्षी अध्ययनशील व्यक्ति ज्ञानी नहीं कहलाता।

णेव असंजदाणं दु, सज्झाय-तवो सया संजदाणं।
बीयेण विणा तरू व, संजमेण विणा सज्झाओ।।223।।

यह स्वाध्याय तप असंयतों के नहीं होता। यह तप संयमियों के लिए ही कहा गया है। संयम के बिना स्वाध्याय वैसे ही है जैसे बीज के बिना वृक्ष।

सव्वसंग-मुज्झित्ता, देहादो ममत्तं तिजोगेहिं।
काउस्सग्गो णेयो, परिलीणं तच्चचिंतणम्मि।।224।।

तीनों योगों से सर्व परिग्रह का त्यागकर, शरीर से ममत्व का त्यागकर तत्त्वचिंतन में लीन रहना कायोत्सर्ग जानना चाहिए।

विरत्तमणेण करिदुं, काउसग्गं सक्को भावि-सिद्धो।
रयणत्तयसंजुत्तो, विसय-कसाय-पावहीणो दु।।225।

विषय-कषाय व पाप से हीन, रत्नत्रय से युक्त भावी सिद्ध ही विरक्त-मन से कायोत्सर्ग करने में समर्थ होता है।

जिणाणं स-चित्ते जो, धारदे संजमं ओग्गहिदूणं।
पुणो सुद्धोवजोगी, तस्स सज्झाणं सिव-हेदू।।226।।

जो संयम को ग्रहण करके जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा को अपने चित्त में धारण करता है पुनः शुद्धोपयोगी होता है उसका सद्ध्यान ही मोक्ष का हेतु है।

आणा-अपाय-विवाग-संठाण-विचय-धम्मज्झाणाइं।
विचयोत्थिचिंतणंतं,अण्णावेक्खाइदसविहाणि।।227।।

धर्मध्यान के चार भेद हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। यहाँ विचय का अर्थ है—चिंतन करना। अन्य अपेक्षा से यह धर्मध्यान दस प्रकार का भी होता है।

जिणाणा-पालणं संजम-पालणं सण्णाणे पवित्तिं।
पकुव्वेदि णिद्दोसं, आणाविचय-धम्मज्झाणी।।228।।

जिनाज्ञा का पालन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है, उस आज्ञाविचय धर्मध्यान को करने वाला सम्यग्ज्ञान में निर्दोष प्रवृत्ति और संयम का पालन करता है।

सव्व-भवदुहकारणं, खयिदुं चिंतेदि दुक्खं अपायं।
तेण णासेणं विणा, दुह-णासणं संभवो णेव।।229।।

सर्व भवदु:ख-कारणों के क्षय के लिए संयमी उन दु:खों का चिंतन करते हैं वही अपायविचय धर्मध्यान है। उन भव-कारण के नाश के बिना दु:ख का नाश करना संभव नहीं है।

कम्मोदयेण जीवा, भमंति चुलसीदिलक्खजोणीसुं।
लहंतिणाणादुहाणि,चिंतणंचियविवाग-विचयं।।230।।

कर्म के उदय से जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हैं एवं नाना दु:खों को प्राप्त करते हैं। यह चिंतन करना विपाकविचय धर्मध्यान है।

जीवादी-छद्दव्वा, जत्थ विज्जंति लोगो सो तिविहो।
तस्स सरूव-चिंतणं, संठाण-विचयं णादव्वं।।231।।

जीव आदि छह द्रव्य जहाँ विद्यमान होते हैं वह लोक कहलाता है। वह लोक ऊर्ध्व, मध्य व अधोलोक के भेद से तीन प्रकार का है। उस लोक के स्वरूप का चिंतन करना संस्थानविचय धर्मध्यान जानना चाहिए।

उड्ढे विमाणिग-सुरा, मज्झम्मि णिरयहीण-तिगदि-जीवा।
अहे सुरा णेरइया, थावर-काया सव्वलोए।।232।।

ऊर्ध्व लोक में वैमानिक देव, मध्यलोक में नरकगति को छोड़कर अन्य तीन गति के जीव, अधोलोक में नारकी व देव निवास करते हैं और स्थावर जीव सर्व लोक में रहते हैं।

आणावायोवाया, विवागं संठाणं लोग-हेदू।
जीवाजीव-विराया, दसविहं अवि धम्मज्झाणं।।233।।

धर्मध्यान दस प्रकार का भी है—आज्ञाविचय, अपायविचय, उपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, लोकविचय, हेतुविचय, जीवविचय, अजीवविचय और विरागविचय।

मोहोवसमे खीणे, सेढीए आरूढ-सुजोगीणं।
जं झाणं तं सुक्कं, सिवकारणं होदि णियमेण।।234।।

मोह के उपशम होने पर वा क्षीण होने पर श्रेणी पर आरूढ़ योगियों के जो ध्यान होता है वह शुक्लध्यान कहलाता है, वह नियम से मोक्ष का कारण होता है।

मण्णंति के वि सूरी, पढमं सुक्कं चडंतो सेणीइ।
अट्ठम-गुणट्ठाणादु, एयारस-गुणट्ठाणंतं।।235।।

कई सूरी मानते हैं कि प्रथम शुक्लध्यान श्रेणी पर चढ़ते हुए अष्टम गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है।

पढममुवसंतमोहे, खीणे विदियं सजोगम्मि तिदियं।
सुक्कज्झाण-मजोगे, चदुत्थं जाणेज्ज णियमेण।।236।।

कई आचार्यों के अनुसार उपशांत मोह में प्रथम शुक्लध्यान, क्षीण मोह में द्वितीय शुक्लध्यान, संयोगकेवली गुणस्थान में तृतीय शुक्लध्यान और अयोगकेवली गुणस्थान में नियम से चौथा शुक्लध्यान जानना चाहिए।

पिथगत्तं वितक्कं च, वीयारं एगत्त-अवीयारं।
सुहुम-किरिय-पडिपादी, विओवरद-किरिया-णिवत्ती।।237।

शुक्लध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं—प्रथम पृथक्त्व-वितर्क-वीचार, द्वितीय एकत्व-वितर्क-अवीचार, तृतीय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और चतुर्थ व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

अट्टं रुद्दं असुहं, विहाय करीअ सय धम्मज्झाणं।
मुणिविज्जाणंदं हं, तवपूदं णमामि भत्तीइ।।238।।

आर्त्त व रौद्र इन अशुभ ध्यानों को छोड़कर श्री विद्यानंद मुनिराज सदैव धर्मध्यान किया करते थे। तप से पवित्र उन श्री विद्यानंद मुनिराज को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।

मुणिविज्जाणंदेणं, पालिदा मूलुत्तरगुणा इत्थं।
सगप्पस्स गुरुसिस्सो, अपमत्तभावजुदो कयाइ।।239।।

इस प्रकार श्री विद्यानंदजी मुनिराज मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन किया करते थे। वे कदाचित् अप्रमत्तभाव से युक्त योगी अपनी आत्मा के गुरु व शिष्य भी थे।

सदाहिय-चरिय-गंथा, तिसट्ठिसलागाण चरिमदेहीण।
भावि-तित्थयराणं च, पढीअ पढावीअ पणिहीइ।।240।।

उन्होंने त्रेसठ शलाका पुरुष, चरम शरीरियों व भावी तीर्थंकरों के सौ से अधिक चरित्र ग्रंथों को एकाग्रतापूर्वक पढ़ा और पढ़ाया।

कम्मसिद्धंतं णाय-मज्झप्पगंथं णयं वागरणं।
चउ-अणुजोगं च कव्व-छंदाइ-गंथं चिय पढीअ।।241।।

उन्होंने कर्म सिद्धांत, न्याय, अध्यात्म ग्रंथ, नय, व्याकरण, चार अनुयोग एवं काव्य छंदादि ग्रंथों का अध्ययन किया।

मूलायारं मूलाराहणं मूलायारपदीवं च।
आयारसारं मरण-कंडिगं च अत्तमीमंसं।।242।।
भगवदि-आराहणं च, भावसंगहं कत्तिगाणुवेक्खं।

सुहासिद-रयणावलिं, सिद्धंतसार-कम्मपइडिं॥243॥
जंबुदीव-पण्णत्तिं, तिलोय-पण्णत्तिं तिलोयसारं।
रायवत्तिगं सिलोग-वत्तिगं तच्चत्थ-वित्तिं च॥244॥
गोम्मड-जीवकंडं च, कम्मकंडं तह सव्वत्थ-सिद्धिं।
लद्धि-सारं च खवणा-सार-मह सिद्धिविणिच्छयं पि॥245॥
तच्चवियारं सार, सावयायारं धम्मरसायणं।
लहुतच्च-फोडं तहा, सुहासिद-रयण-संदोहं च॥246॥
अट्ठसदिं च सहस्सिं, लघीयत्तयं लोय-विभागं तह।
सिआवाय-मंजरिं च, पउमणंदि-पंचविंसदिगं॥247॥
णयचक्कं च परिक्खामुहं तह पमेयकमलमत्तंडं।
सच्च-सासण-परिक्खं णायदीविगं थुदिविज्जं च॥248॥
पमेयरयणमालं च, आलावपद्धतिं तह भूवलयं।
जुत्ताणुसासणं बारसाणुवेक्खं बहुपाहुडं॥249॥
आराहणासारं दु, णाणण्णवं कल्लाणकारगं य।
परमप्प-पगासं तह, कलाव-जिणिंद-वागरणं च॥250॥
अमियासीदिं पमाण-परिक्खं णीदि-वक्कामिय-गंथं।
गणिद-सार-संगहं च, अज्झप्पतरंगिणिं गंथं॥251॥
वेज्जगगंथं आगम-सारं पुरिसट्ठ-सिद्धि-उवायं च।
तच्चणुसासणं कहा-कोसं तह अंगपण्णत्तिं॥252॥
जोगसारं च समाहि-सदगं परमप्पझाण-तरंगिणिं।
अज्झप्पामियकलसं, रहस्स-पायच्छित्त-गंथं॥253॥
णीदि-विण्णाण-गंथं, वत्थु-जोदिस-मंत-तंतादीणं।
लोय-ववहार-पसिद्ध-बहु-पोत्थआइं अवि पढीअ॥254॥

उन्होंने मूलाचार, मूलाराधना, मूलाचारप्रदीप, आचार-सार मरण-कंडिका, आप्तमीमांसा, भगवती आराधना, भाव-संग्रह, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, सुभाषित-रत्नावली, सिद्धांतसार, कर्मप्रकृति,

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, त्रिलोक प्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, तत्त्वार्थवृति, गोम्मटसार जीवकांड, गोम्मटसार कर्मकांड, सर्वार्थसिद्धि, लब्धिसार, क्षपणसार, सिद्धि-विनिश्चय, तत्त्वविचार-सार, श्रावकाचार, धर्म रसायन, लघुतत्त्वस्फोट, सुभाषित रत्न संदोह, अष्टशती, अष्टसहस्री, लघीयस्त्रय, लोकविभाग, स्याद्वाद मंजरी, पद्मनंदि-पंचविंशतिका, नयचक्र, परीक्षामुख, प्रमेय कमलमार्तण्ड, सत्य-शासन-परीक्षा, न्यायदीपिका, स्तुतिविद्या, प्रमेय रत्नमाला, आलापपद्धति, भूवलय, युक्त्यानुशासन, बारसाणुवेक्खा, बहुत से पाहुड़, आराधनासार, ज्ञानार्णव, कल्याण-कारकं, परमात्मप्रकाश, कलाप व्याकरण, जैनेन्द्र व्याकरण, अमृताशीति, प्रमाण-परीक्षा, नीति-वाक्यामृत, गणितसारसंग्रह, अध्यात्म तरंगिणी, वैद्यक ग्रंथ, आगम सार, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, तत्त्वानुशासन, कथाकोष, अंगप्रज्ञप्ति, योगसार, समाधि-शतक, परमाध्यात्म तरंगिणी, अध्यात्म-अमृत कलश, रहस्य ग्रंथ, प्रायश्चित्त ग्रंथ, नीति विज्ञान ग्रंथ, वास्तु, ज्योतिष, मंत्र-तंत्रादि के ग्रंथ एवं लोकव्यवहार में प्रसिद्ध बहुत पुस्तकों का अध्ययन किया।

सडखंडागमगंथं, धवलं जयधवलं महाधवलं च।
इमेहि सह बहुगंथा, कसायपाहुडादिं पढीअ॥255॥

षट्खंडागम ग्रंथ, धवला, जयधवला, महाधवला व कषाय-पाहुड़ आदि को एवं इनके साथ अन्य भी बहुत ग्रंथों को पढ़ा।

अणेगज्झप्प-गंथा, पढिय चिंतिय करीअ अप्प-झाणं।
लहीअ अप्पाणंदं, तं विज्जाणंदं वंदेमि॥256॥

जिन्होंने अनेक अध्यात्म ग्रंथों को पढ़कर, उनका चिंतन कर आत्मध्यान किया एवं आत्मा के आनंद को प्राप्त किया उन श्री विद्यानंदजी मुनिराज की वंदना करता हूँ।

उणवीससयचउसट्ठि-वस्से जयपुरे होज्ज चउमासो।
तस्स पवयण-णाणेहि, अभूदपुव्व-पहावणा चिय॥257॥

वर्ष 1964 में श्री विद्यानंद मुनिराज का चातुर्मास अपने गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी के साथ जयपुर में हुआ। उनके प्रवचन व ज्ञान से वहाँ अभूतपूर्व प्रभावना हुई।

पणरस-वीस-सहस्सा, सोदा आगदा तस्स उवएसे।
मंदिरं विहाय बहिर-सहा रामलीला-परिसरे॥258॥

उनके प्रवचन में उस समय 15-20 हजार श्रोता आने लगे थे। अतः मंदिर को छोड़कर सभा बाहर रामलीला मैदान में हुआ करती थी।

मुणिवर-पुरिसट्ठेणं, संगच्छिदो जयपुर-समायेणं।
आयर-सम्माणेहिं मुलताण-जइण-समासो चिय॥259॥

मुनिश्री के पुरुषार्थ से जयपुर जैन समाज ने आदर-सम्मान से मुल्तान जैन समाज को स्वीकार किया।

विशेषार्थ—मुल्तान शहर (पाकिस्तान) से जयपुर आए जैन भाइयों को लेकर जयपुर समाज में विवाद खड़ा हुआ था। जयपुर समाज उन्हें अपने साथ मिलाने को तैयार नहीं था। यह बात मुनिवरश्री तक पहुँची। उन्होंने अगले दिन ही यह घोषणा कर दी कि वे मुलतान से आए भाइयों की कॉलोनी में विहार करेंगे और जब तक जयपुर-समाज उन्हें आदर के साथ अपने साथ मिला न लेगी तब

तक वे यहीं रहेंगे। मुनिश्री के इस पुरुषार्थ से जयपुर समाज ने पूरे आदर-सम्मान से मुल्तान जैन समाज को स्वीकार किया।

तस्स पवयणे मंती, उवट्ठिदा विदु-जणा रज्जवालो।
अपार-जण-समूहो दु, इदिवित्तम्मि पढमवारं च।।260।।

उन मुनिश्री के प्रवचन में मंत्री, राज्यपाल व विद्वत्‌जन भी उपस्थित हुआ करते थे। किन्हीं दिगंबर मुनिराज के प्रवचन में ये अपार जनसमूह इतिहास में पहली बार देखने को मिला था।

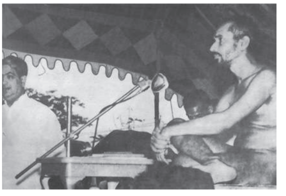

सुप्पसिद्धो मुणिंदो, जंगम-विस्सविज्जालय-णामेण।
समायार-पत्तेसु वि, पयासिदो तस्स सो णामो।।261।।

वे मुनींद्र श्री विद्यानंदजी अपने अथाह ज्ञान व प्रभावी वक्तृत्व शैली से 'चलते-फिरते विश्वविद्यालय' नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। उस समय समाचार-पत्रों में भी उनका यह नाम प्रकाशित किया गया।

पवयणत्थं मुणिवरो, संकमीअ ठाणिय-कारागारे।
पढमावसरो हि जदा, उवदेसिदं मुणिणा हु तत्थ।।262।।

मुनिवरश्री प्रवचन के लिए स्थानीय कारागार में भी गए। यह प्रथम अवसर था जब किन्हीं मुनि ने जेल में जाकर कैदियों को उपदेश दिया।

पस्सिय मुणि-णेउण्णं, विहरिदु-मणुमोएज्ज सातंतेण।
जिणधम्मपहावणाइ, धम्मे थिरिमाइ भव्वाणं।।263।।

मुनिवरश्री की निपुणता को देखकर, जिनधर्म की प्रभावना के लिए और भव्यों को धर्म में स्थिर करने के लिए गुरु ने उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक विहार की अनुमति दी।

बे आरक्खगा तदा, गुत्तरूवेण चलीअ विहारम्मि।
मुणिवर-सुरक्खाए दु, पच्छा णादो णिउत्ता ते।।264।।
तक्कालीण-मंतिवर-णिरंजणणाहेण भत्ति-सड्ढाइ।
रज्ज-सम्माण-जुत्तो, जयपुरणयर-वस्साजोगो।।265।। (जुम्मं)

तब जयपुर से विहार के समय दो सुरक्षाकर्मी गुप्त रूप से मुनिराज की सुरक्षा में विहार में साथ में चले। बाद में मुनिवरश्री को ज्ञात हुआ कि वे गुप्त सुरक्षाकर्मी तत्कालीन मंत्री श्री निरंजननाथ आचार्य ने भक्ति व श्रद्धा से नियुक्त किये थे। इस प्रकार जयपुर नगर का वह चातुर्मास राजकीय सम्मान से युक्त था।

विहरंतो पहुच्चीअ, पण-कल्लाण-पदिट्ठा-उच्छवस्स।
संतिवीरणयरस्स दु, सिरि-महावीरदिसय-खेत्तं।।266।।

तत्पश्चात् श्री विद्यानंदजी मुनिराज शांतिवीर नगर के पंच- कल्याण ाक प्रतिष्ठा महोत्सव के लिए विहार करते हुए अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी पहुँचे।

आयोजण-थल-णियडं, गच्छंतो चिय चलचित्त-गीदं।
सुणिय पलोट्टीअ तादु, णिय-ठाणं सिरीमुणिरायो।।267।।
पहुच्चीअ मुणि-णियडं, आयोजग-पदिट्ठाइरियादी हु।
अविवेगेण तज्जिदा, मुणिवरेण तहा सव्वा ते।।268।।
णिय-दोसं संगच्छिय, खामित्ता सिरिमुणिपदे पत्थीअ।
चलिदु-मायोजणथलं, खम्मित्तु संकप्पेण मुणी।।269।।
थुदि-आइ-मुद्दिगाए, गच्छीअ तत्थ विज्जाणंदमुणी।
सावय-सावियाणंच,देसीअउक्किट्ठ-भावेहि।।270।।(चउक्कं)

पंचकल्याणक के कार्यक्रम चल रहे थे। मुनिवरश्री आयोजन स्थल की ओर जा रहे थे। कार्यक्रम स्थल के निकट जाते हुए उन्होंने फिल्मी गाने सुने। फिल्मी गानों की यह आवाज पांडाल से ही आ रही थी। अतः उन्हें सुनकर मुनिश्री अपने स्थान की ओर लौट पड़े। जब आयोजक और प्रतिष्ठाचार्य आदि को यह ज्ञात हुआ तो वे सभी मुनिराज के समीप पहुँचे और अपनी

गलती के विषय में पूछा, तब मुनिवरश्री ने उन सभी को उनके अविवेक के लिए डाँटा। (उन्होंने कहा कि पंचकल्याणक में फिल्मी गाने चलाकर आप लोग समाज को क्या संदेश देना चाहते हैं? क्या आपके पास ऐसे विद्वान् नहीं हैं जो माइक पर धर्म के संबंध में कुछ कह सकें, कोई स्तुति, कोई भजन पढ़ सकें? प्रतिष्ठा में इतना खर्च करते हो, क्या यह व्यवस्था नहीं कर सकते?)

यह सुनकर सभी ने अपने दोष को स्वीकार कर मुनिराज से क्षमा माँगी और उन मुनिवर के चरणों में आयोजन स्थल की ओर चलने की प्रार्थना की। उन सभी को क्षमा कर श्री विद्यानंदजी मुनिराज एक संकल्प के साथ आयोजन स्थल गए कि कुछ भी हो मैं जैन भजन, स्तुति आदि का ग्रामोफोन रिकॉर्ड अवश्य बनवाऊँगा एवं उत्कृष्ट भावों के साथ वहाँ श्रावक व श्राविकाओं को धर्मोपदेश दिया।

उणवीससयपणसट्ठि-वस्से चउमासो चंदणयरस्स।
छदामी-लाल-मंदिर-परिसरे ताण-मणुरोहेण॥271॥

ईसवी सन् 1965 में मुनिश्री का चातुर्मास सेठ छदामीलाल और अन्य समाज के अनुरोध से चंद्रनगर-फिरोजाबाद के छदामीलाल जैन मंदिर परिसर में हुआ।

आवीअ पहादे सत्तादु अट्ठंतं सव्वधम्मजणा।
पवयणम्मि तस्स पासणाह-गीदं गायंता चिय॥272॥

सुबह सात से आठ बजे तक मुनिराज के प्रवचन हुआ करते थे। श्री पार्श्वनाथ स्वामी का भजन 'तुमसे लागी लगन...' गाते हुए सभी धर्मात्मा लोग उनके प्रवचन में सुबह-सुबह आते थे। (तब एक अभूतपूर्व दृश्य सड़कों पर देखने को मिलता था)।

घंटघर-चउपहे चिय, आयोजिदं पवयणं सुणिय तस्स।
वंदिदो मउसुलेहिं, सूफी-संत-रूवे जोगी॥273॥

मुनिश्री का प्रवचन जब घंटाघर के चौराहे पर आयोजित किया गया

तब 'ईश्वर क्या और कहाँ' इस शीर्षक पर प्रवचन सुनकर मुसलमानों ने अपने सूफी संत के रूप में उन योगी की वंदना की।

विज्जालय-आदीसुं, आयोजिदं पवयणं जदिवरस्स।
सिक्ख-हिंदु-मउसुल-वइदिगादी आवीअ पेम्मेण।।274।।

तब यतिवर के प्रवचन विद्यालय आदि में आयोजित किए गए। सिक्ख, हिंदू, मुस्लिम और वैदिक आदि लोग बहुत प्रेम से मुनि के प्रवचनों में आते थे। मुनिवर का ज्ञान बहुत गहन था। उनकी धर्मसभा में सर्वधर्मावलम्बियों को ऐसा प्रतिभासित होता था कि जैसे उनके ही धर्म का प्रतिपादन हो रहा है।

विशेषार्थ—एक बार नारी शिक्षा पर महात्मागांधी विद्यालय में मुनिश्री के प्रवचन हुए। तब प्रबंधकारिणी समिति ने मुनिश्री से अनुरोध किया कि आप छात्राओं को संदेश दें कि वे चुस्त कपड़े आदि न पहनें। जब मुनिश्री ने इस बात को प्रवचन में कहा तो एक छात्रा ने बीच में खड़े होकर पूछा कि मुनिजी ये आपने कहा है या कहलवाया गया है। तब मुनिश्री ने कमेटी की ओर संकेत कर दिया। इस पर छात्रा ने कहा कि आप इनसे कहें कि ये पगड़ी पहनें, लंबा कोट पहनें। इस पर मुनिश्री ने कहा कि ये झगड़ा आपके और उनके बीच में है, मैं तो कुछ पहनता ही नहीं। आप जानें और ये जानें। इस पर सब जोर-जोर से हँसने लगे।

सुपहावणा गुंजिदा, रायहाणी-पज्जंतं समणस्स।
चंदणयरं पहुच्चिय, पत्थीअ तत्थ चउमासस्स।।275।।
अइभत्तीए ढिल्ली-जइण-पंचायद-पदाहियारी य।
अणुमोएज्जमुणिरायोछसट्ठी-चउमासस्सतदा।।276।।(जुम्मं)

मुनिश्री की प्रभावना की ये गूंज भारत की राजधानी दिल्ली तक भी पहुँची। दिल्ली जैन पंचायत के पदाधिकारियों ने फिरोजाबाद पहुँचकर मुनिश्री से आगामी चातुर्मास दिल्ली में करने के लिए निवेदन किया। मुनिश्री ने उनका निवेदन स्वीकार कर 1966 के वर्षायोग की अनुमति दिल्ली में करने हेतु प्रदान की।

आगरा-जामाए दु, सम्मुहे होज्जा पवयणं मुणिस्स।
सहस्साहिया सोदा, सुणीअ तदा भत्ति-सड्ढाइ।।277।।

अनंतर आगरा नगर में जामा मस्जिद के सामने वाले मैदान में मुनिराज के प्रवचन हुए। तब भक्ति-श्रद्धा से हजारों से अधिक श्रोताओं ने मुनिराज के प्रवचन सुने। मुनिराज के ये प्रवचन मुस्लिम समाज ने ही आयोजित किए थे।

समीवत्थ-णयरेसु, कुणंतो धम्मपहावणं पविसीअ।
भारद-रायहाणीइ, पवयणं हु पयाणखेत्तम्मि।।278।।

चातुर्मास उपरांत मुनिराजश्री ने समीपस्थ नगरों में धर्म प्रभावना करते हुए भारत की राजधानी दिल्ली में प्रवेश किया वहाँ उनके प्रवचन

बालाश्रम के प्रांगण में होते थे। किन्तु बढ़ते हुए श्रोताओं की संख्या को देखकर मुनिराज के प्रवचन दिल्ली के परेड ग्राउण्ड में रखे।

दइणिग-पवयणेहि सह, आयोजिदं पज्जूसण-पव्वं पि।
तत्थ तहा पस्संतो, तेण सह अवार-जण-जूहं।।279।।

तब वहाँ उनके साथ अपार जन समूह को देखते हुए दैनिक प्रवचनों के साथ पर्यूषण पर्व भी वहीं आयोजित किया।

साहु-णिवेदणेण सम्मेद-विआस-जोयण-मारब्भीअ।
मुणिराय-सण्णिहीए, तस्स पवयण-सुप्पहावेण।।280।।

साहूजी के निवेदन पर मुनिराज के सानिध्य में उनके प्रवचन के प्रभाव से सम्मेदशिखर के विकास की योजना प्रारंभ हो गई।

विशेषार्थ–उस समय प्रवचन में साहू शान्ति प्रसाद और श्रीमती रमा रानी भी आते थे। तब उन्होंने मुनिवरश्री से सम्मेदशिखर पहाड़ की वंदना करने वाले यात्रियों की असुविधाओं के विषय में बताया और सीढ़ियों के निर्माण की भावना मुनिश्री के समक्ष व्यक्त कर दी थी।

दाणदायग-पंतिं च, पस्संतो चिय वित्तकोस-साहा।
उग्घाडिदा तत्थेव, तदा हि अट्ठाइ-रूवेणं।।281।।

मुनिश्री के प्रभाव से दान देने वालों की लंबी कतार लग गयी। उन दान दाताओं की पंक्ति इतनी बढ़ गई की वहाँ अगले दिन बैंक (PNB) की एक शाखा अस्थायी रूप से खोलनी पड़ी। और तब शुरू हो गया शाश्वत सिद्धक्षेत्र शिखरजी के विकास का कार्य।

जइण-जुवा-संगमेण, आयोजिदं पवयणं हु तत्थेव।
दो-अस्सिणुत्तरद्धे, उच्छाहेणं उल्लासेण।।282।।

दिल्ली में युवाओं के संगठन 'जैन युवा संगम' ने मुनिवरश्री के प्रवचन 2 अक्टूबर को परेड ग्राउंड में उत्साह व उल्लास से आयोजित किए।

भारद-सक्किदिं णरत्तं गंधी-दंसणं चिय देसीअ।
आगासवाणीइ ढिल्ली-केंदेण पसारिदं तं॥283॥

तब मुनिवरश्री ने भारतीय संस्कृति, मानवता और गांधी दर्शन इनका उपदेश अपार जनसमूह को दिया। यह किन्हीं मुनिराज का पहला प्रवचन था जो 4 अक्टूबर को प्रातः 7:45 पर आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से प्रसारित किया गया।

ठविद-समण-जइण-भयण-पयारग-संघेण मुणिपेरणाइ।
मग्गदंसणेण जइण-गीद-मुद्दणं कराविदं दु॥284॥

पूज्य मुनिराज की प्रेरणा से श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ की स्थापना हुई। उन्हीं के मार्गदर्शन से जैन भजनों की रिकॉर्डिंग करायी गई।

जइण-भयण-पसारणं, मुणिवर-पेरणाए णिम्मिदाणं।
आगासवाणीइ वंदण-कज्जकमे गुरुवरम्मि॥285॥

मुनिश्री की प्रेरणा से निर्मित जैन भजनों का प्रसारण वंदना कार्यक्रम के अंतर्गत आकाशवाणी पर हर बृहस्पतिवार को होने लगा।

वस्साजोग-पच्छा हु, विहरीअ विसाल-सोहा-जत्ताइ।
सहस्सहिय-सावगेहि, णह-गुंजिदो जयकारेहिं॥286॥
दूरदंसणेण पढम-सोहाजत्ता पसारिदा मुणिस्स।
अविम्हरणीया तदा, अइधम्मपहावणाजुत्ता॥287॥(जुम्मं)

मुनिश्री का चातुर्मास पूर्ण हुआ। चातुर्मास के पश्चात् मुनिराज ने विहार किया तब हजारों श्रावकों और आकाश को गुंजायमान करने वाले जयकारों के साथ मुनिवरश्री का विहार हुआ। आश्रम से यमुना पुल तक लगभग 2 कि.मी. लंबे मार्ग पर शोभायात्रा का दृश्य अद्‌भुत ही था। सहस्रों लोगों ने मुनिवरश्री को अश्रु भरे नयनों से विदाई दी।

किन्हीं दिगंबर की यह प्रथम शोभायात्रा थी जो पहली बार दूरदर्शन से प्रसारित की गई। तब वह शोभायात्रा अत्यंत धर्म-प्रभावना से युक्त और अविस्मरणीय रही।

उणवीस-सयसत्तछट्ठि-ईसवीइ मेरठे चउमासो।
कडुत्तं विणासीअदु, मेरठ-सहर-सदर-मज्झम्मि।।288।।

मुनिश्री विद्यानंदजी का चातुर्मास 1967 में मेरठ में हुआ। मुनिश्री के प्रभाव से मेरठ शहर व मेरठ सदर के मध्य कटुता भी नष्ट हो गई।

सव्वजणिग-परिसरम्मि, मुणि-पवयणं पढमवारं हि कस्स।
जइणेदरा वि सुणीअ, ठविय तिचक्किगाचालगा वि।।289।।

मेरठ में किसी दिगंबर जैन मुनि के प्रथम बार सार्वजनिक रूप से प्रवचन हुए। जैनेतर लोग भी वहाँ मुनिराज के प्रवचन में आते थे। रिक्शा वाले भी उस समय ठहरकर मुनिश्री का प्रवचन सुना करते थे।

अणेगधम्मसहा वइसाली-महापंगणे मेरठम्मि।
जुगपरिवट्टग-चउमासो करिदो दु मुणिणाहेणं।।290।।

मेरठ के प्रसिद्ध वैशाली (भैंसाली)[1] मैदान में मुनिश्री की अनेक धर्मसभाएँ आयोजित की गईं। श्री मुनिवर ने वह युगपरिवर्तक चातुर्मास मेरठ में किया।

उणवीस-सयट्ठ-सट्ठि-वस्से बडोदे वस्साजोगो हु।
धम्मं पडि सुपेरिदा, सव्वा अहिंसा-विड्ढीए।।291।।

सन् 1968 में मुनिवरश्री का चातुर्मास बड़ौत में हुआ। उन्होंने अहिंसा की वृद्धि के लिए धॅर्म के प्रति सभी को प्रेरित किया।

सहारणपुरे वस्से, उणवीससयउणहत्तरे होही।
कस्स दियंबर-मुणिस्स, चउमासो पढमवारं तत्थ।।292।।

---

1. जनश्रुति के अनुसार इस स्थान का नाम भगवान् महावीर स्वामी की जन्मभूमि के नाम पर वैशाली था।

सन् 1969, सहारनपुर में मुनिराज का चातुर्मास संपन्न हुआ। वहाँ किन्हीं दिगंबर मुनिराज का चातुर्मास पहली बार हुआ था।

सिरी मुणि-सण्णिहीए, संतिपसादेण सह जणण्णाणं।
पणवीससयम-णिव्वाणुच्छवे वत्ता पारब्भो॥293॥

मुनिश्री की सन्निधि में साहू शांतिप्रसाद जी के साथ अन्य सभी लोगों की भी भगवान् महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाण महोत्सव पर वार्ता प्रारम्भ हो गई।

सेट्ठि-भागचंद-सोणि-अजमेर-अज्झक्खत्तम्मिहोज्जा।
समायसंगठणे सम्मेलणं मुणिवर-सण्णिहीइ॥294॥

सहारनपुर में मुनिवरश्री की सन्निधि में श्रेष्ठी भागचंद सोनी की अध्यक्षता में सहारनपुर समाज संगठन पर सम्मेलन भी हुआ।

जइण-जणगणणाए दु, कज्जस्स अवि पाविदो णिद्देसो।
आवीअ णूदण-कज्ज-णिद्देसस्स समायसेट्ठी॥295॥

जिसके अंतर्गत जैन जनगणना के कार्य का निर्देश भी प्राप्त हुआ। नए कार्य के निर्देश के लिए समाज श्रेष्ठी मुनिश्री के चरणों में आते थे।

उणवीससयहत्तरे, वस्से देज्ज हेमभडणागरस्स।
उसहदेवसंगीदं-पुरक्कारं मुणि-अण्णाए॥296॥
ताइ सोहपबंधस्स, सिंगारजुगे संगीद-कव्वस्स।
जइण-रायमालाणं, जइण-परंपराण पहाणो॥297॥
विहागो दु भारदीय-संगीद-साहिच्चे लिहिदं तत्थ।
पुरक्कारा हत्तरादु उणवीस-पणहत्तरंतं॥298॥
दायिदा पणवीसाण, विदूण जइण-गीद-सोहत्थीणं।
विसेसंस-दायगाण, जइण-संगीद-खेत्तम्मि चिय॥299॥ (चउक्कं)

मुनिवरश्री की आज्ञा से 17 अप्रैल, 1970 में महावीर जयंती की पूर्व संध्या पर डॉ. हेम भटनागर, अध्यक्षा हिन्दी विभाग जानकी देवी

महाविद्यालय, दिल्ली को उनके शोध प्रबंध 'श्रृंगार युग में संगीत काव्य' के लिए पुरस्कार दिया गया। उन्होंने अपने शोध-प्रबन्ध में लिखा कि भारतीय संगीत साहित्य में जैन रागमालाओं एवं जैन परंपराओं का प्रधान विभाग है। इस प्रथम पुरस्कार के बाद वृषभदेव संगीत पुरस्कार से सन् 1970 से लेकर 1975 तक जैन संगीत शोधार्थियों को एवं जैन संगीत क्षेत्र में विशेष योगदान देने वाले 25 विद्वानों को सम्मानित किया गया।

सत्त-मई-ऊणवीस-सयहत्तर-ईसवीए विहरिदं।
हिमालयं संघेणं, अदिसय-परिणाम-विसुद्धीइ॥300॥

7 मई 1970 को संघ ने अतिशय परिणाम विशुद्धि से हिमालय की ओर विहार किया।

विशेषार्थ–सन् 1968 में बड़ौत चातुर्मास के समय साहित्यकार श्री विशम्भर सहाय 'प्रेमी' मेरठ और बद्रीनाथ के प्रमुख रावल श्री वी. केशव नम्बूदिरी जी मुनिश्री के चरणों में पहुँचे और वार्ता करते हुए मुनिश्री से बद्रीनाथ पधारने का अनुरोध किया। बस यहीं से बन गई श्री बद्रीनाथ यात्रा की भूमिका।

एक समय साहू शांतिप्रसाद जी मुनिश्री के चरणों में पहुँचे। बातों ही बातों में मुनिश्री ने बद्रीनाथ यात्रा के अपने भाव प्रकट किए। 1969 का चातुर्मास सहारनपुर में संपन्न हुआ। चातुर्मासोपरान्त बद्रीनाथ यात्रा का निश्चय हुआ।

ववत्थाण दायित्तं, संगच्छिदं साहु-दंपत्तीए।
सड्ढा-भत्ति-भावेहि, सहारणपुर-सुसावया अवि॥301॥
सहगारी विहारम्मि लालामंगलसेण-पुण्णसजगो।
आहार-ववत्थाए, ढिल्ली-सुसावया अवि तत्थ॥302॥ (जुम्मं)

मार्ग की व्यवस्थाओं का संपूर्ण दायित्व साहू शांतिप्रसादजी व श्रीमती रमारानी जी ने अपने ऊपर स्वीकार किया। वहाँ सहारनपुर के श्रेष्ठ

श्रावक भी श्रद्धा व भक्ति के साथ विहार में सहयोगी बने। लाला मंगलसेन आहार व्यवस्था में पूर्ण सजग थे। दिल्ली के श्रावक भी तब उनके साथ थे।

बद्दि-विसाले विसाल-भव्व-सागदं कुव्विदं संघस्स।
धम्महिकारीहि तत्थ, विदूहि मंदिर-समिदीए य।।303।।

धीमे-धीमे बढ़ते हुए संघ बद्रीनाथ पहुँचा। वहाँ बद्रीविशाल में धर्माधिकारी, विद्वानों और मंदिर समिति द्वारा संघ का विशाल भव्य स्वागत किया गया।

सोहाजत्ताए सह, णयिदो रज्जअदिहिगहे सो।
मई-इगतीसे बद्दिणाह-मंदिरे पविसीअ सो।।304।।

विशाल जुलूस के साथ मुनिवरश्री को राजकीय अतिथिगृह ले जाया गया। 31 मई, 1970 को मुनिश्री ने बद्रीनाथ मंदिर में प्रवेश किया।

विज्जंत-रावलेणं, दीव-पयासे पडि दंसीअ तत्थ।
पत्तेय-मंगुवंगं, विहीए ठाविद-पडिमाए।।305।।

वहाँ रावलजी विद्यमान थे। रावलजी ने वहाँ स्थापित प्रतिमा के प्रत्येक अंगोपांग को दीपक के प्रकाश में विधिपूर्वक दिखाया।

संकराइरियासणे, विराजीअ बद्दिणाह-मंदिरम्मि।
तस्स दिव्व-जत्ताए, गारविदो मुणिवर-मग्गो दु।।306।।

मुनिराज बद्रीनाथ मंदिर में शंकराचार्य के आसन पर विराजमान हुए थे। उनकी इस दिव्य यात्रा से मुनिवर मार्ग गौरवान्वित हुआ।

दियंबरत्तं णिएज्ज, सव्वुच्चासणे विज्जंत-मुणिणा।
बे-दिवसा सुपवयणं, देज्ज मंदिर-मुक्ख-सहाए।।307।।

मंदिर में मुनिश्री को सर्वोच्च आसन पर विराजमान किया गया। मुनिश्री ने मूर्ति में पूर्ण दिगंबरत्व देखा। मुनिश्री ने मंदिर के मुख्य सभागृह में दो दिन प्रवचन किए।

माणागामं पुण बारस-सहस्स-तिसय-फुड-उत्तुंगं दु।
चरणपादगादु णीलगिरिम्मि उच्चं चिय गच्छीअ।।308।।

1 जून 1970 को मुनिश्री भारत के सीमावर्ती मानागाँव गये। पुनः नीलगिरी पर चरणपादुका से भी ऊपर 12000 फुट की ऊँचाई पर गए।

बेजूणम्मि विहरीअ, सिरिणयरं पडि चिय महामुणिंदो।
बीसम-सयद्दे पढम-वारं गच्छिदं मुणिवरेण।।309।।

पुनः 2 जून 1970 को महामुनींद्र का विहार बद्रीनाथ से श्रीनगर की ओर हुआ। 20वीं शताब्दी में पहली बार किन्हीं दिगंबर मुनिराज ने बद्रीनाथ की यात्रा की।

सिरिणयरे चउमासो, ठाविदो मुणिवर-विज्जाणंदेण।
मंदिर-जिण्णुद्धारं, धम्मसाला-णिम्माणं तह।।310।।
आदि-चरण-ठावणं च, सिव-खेत्तअट्ठापदे करावीअ।
अज्जं वि ठाविदं तं, पयासिदं हु खेत्तं इत्थं।।311।। (जुम्मं)

वहाँ से विहार कर श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने श्रीनगर (1971) में चातुर्मास की स्थापना की। कसौटी पाषाण से निर्मित प्राचीन जिनमंदिर का जीर्णोद्धार एवं यात्रियों के लिए धर्मशाला का निर्माण भी कराया एवं सिद्धक्षेत्र अष्टापद में श्री आदिनाथजी के चरणों की स्थापना करायी। आज भी वे चरण बद्रीनाथ में स्थापित हैं। इस प्रकार यह अष्टापद बद्रीनाथ क्षेत्र प्रकाशित हुआ।

चउमासस्स पत्थिदं, उणवीससय बाहत्तर-वस्सस्स।
अइ-भत्तीए आगद-इंदोरणिवासीहिं तत्थ।।312।।
पत्त-मुणिवर-आसीइ, सिरिणयरे हि सव्वजणा पसण्णा।
आगदा जालापुरे, पुण अण्णाणुसारेण तेहि।।313।।
पडिवज्जिदा दु मुणिणा, ताण पत्थणा चउमासस्स।
हीरालालेण तदा, कुव्विदा विहार-सुववत्था।।314।।
ग्वालियरादो दु पुणो, इंदोरं पडि मंगल्ल-विहारो।
चोरपुराइ णिच्छिदो, ठाणं तदा सिवपुरिं पडि हु।।315।।

वहाँ श्रीनगर में इंदौर के लोग पधारे और अति भक्ति से सन् 1972 के चातुर्मास की प्रार्थना की। पुनः श्रीनगर में मुनिश्री से चर्चा कर उनका आशीष प्राप्त कर सभी लोग प्रसन्न हुए। मुनिराज ने उन सभी को श्रीनगर से विहार के बाद ज्वालापुर आने का संकेत किया। पुनः मुनिश्री की आज्ञा के अनुसार वे सभी ज्वालापुर आए। मुनिराज ने उनकी चातुर्मास की प्रार्थना स्वीकार की। तब सेठ हीरालालजी ने विहार की सभी व्यवस्थाएँ कीं। पुनः ग्वालियर से इंदौर की ओर मुनिश्री का मंगल विहार हुआ। तब इसी बीच उनके विहार का स्थान शिवपुरी की ओर चोरपुरा में निश्चित हुआ।

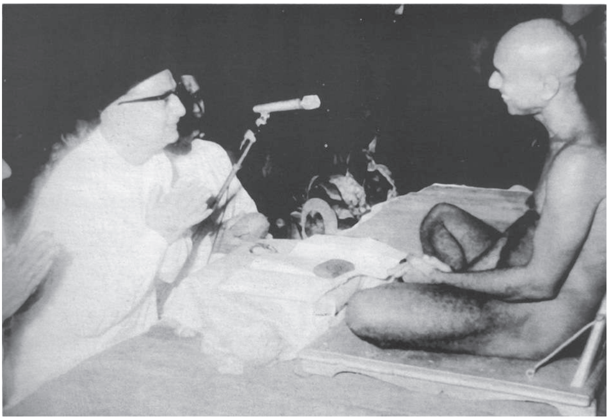

सहसा देवीअ अत्थ, णेव ठाएज्ज काए वि ठिदीए।
सव्वा विम्हदा किण्णु, विहरीअ मुणिणा सह अग्गे।।316।।

अचानक मुनिराज ने आदेश दिया कि हम किसी भी स्थिति में यहाँ नहीं रुकेंगे। मुनिश्री के शब्द सुन सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए किंतु पुनः मुनिराज के साथ आगे विहार कर दिया।

चउगीइ ठाएज्ज पुण, सव्व-सावया सुवीअ खेदादो।
परजण-गवेसंतेहि, आगदं रत्तीइ हीरालालं।।317।।

पुनः सभी लोग चौकी पर रुक गए। थके होने के कारण सभी श्रावकों को नींद आ गई। रात्रि में कोई दूसरे लोग सेठ हीरालाल जी को ढूंढते हुए यहाँ आ गए।

किण्णु हि असमत्था ते, पहादे रक्खिदो आरक्खगेहि।
णेदो सो इंदोरं, णादो जणट्ठ-वहो चोरे।।318।।

किन्तु वे लोग उन्हें ढूंढने में असमर्थ रहे। (जब रात में सब लोग सो रहे थे तब कुछ अजनबी आए और उन्होंने पंडितजी को जगाकर उनसे सेठ हीरालाल जी के बारे में पूछा। पंडितजी ने नींद में ही कहा–'आये तो थे लेकिन अब पता नहीं कहाँ हैं?' वे अजनबी चले गए।) सुबह शीघ्रता से पुलिस दल आया और सेठजी को सुरक्षित इंदौर ले गया। बाद में सुनने में आया कि चोरपुरा में आठ आदमियों का कत्ल हुआ।

अपुव्व-भविस्स-दिट्ठा-मुणिणा रुंधिदा अप्पिय-घडणादु।
होंति णिग्गंथ-तवसी, जम्हा लोयमंगलगारी।।319।।

अपूर्व भविष्यदृष्टा मुनिराज ने इस अप्रिय घटना को रोक दिया। क्योंकि निर्ग्रन्थ तपस्वी मुनिराज लोकमंगलकारी होते हैं।

पहावी-पवयणेहिं, लक्खजइण-जइणेदरागरिसिदा।
णदा मुणिवर-चरणेसु सहस्सा सणादणी-संता।।320।।

इंदौर में मुनिश्री के प्रभावकारी प्रवचनों से लाखों जैन-जैनेतर आकर्षित हुए। हजारों सनातनी संत मुनिश्री के चरणों में नतमस्तक हो गए।

राम-जीवण-चरित्ते, रामरज्जे पवयणं इंदोरे।
एगलक्खाहिय-जणा उवट्ठिदा तदा भत्तीए।।321।।

जब मुनिश्री ने इंदौर में भगवान् राम के जीवन चरित्र व रामराज्य पर प्रवचन दिए तब एक लाख से अधिक लोग वहाँ भक्तिपूर्वक उपस्थित थे।

णायालयुच्च-विज्जालय-महविज्जालय-कारागहेसु।
संगठणेसुं मउसुल-सिक्ख-हरिजणाइ-समाजेसु।।322।।
ववसायाइ-खेत्तेसु, होज्ज पवयणं ताण णिवेदणेण।
चिगिच्छियाहिवत्ताण,विदु-पदिट्ठिद-जणादीणंपि।।323।।

उच्चन्यायालय, महाविद्यालय, विद्यालय, कारागृह, विभिन्न संगठन, मुस्लिम, सिक्ख समाज, हरिजनादि समाजों में एवं व्यवसायादि क्षेत्रों में उन डॉक्टर्स, वकील, विद्वान्, प्रतिष्ठित जन आदि के निवेदन से मुनिश्री के प्रवचन हुए।

वेण्हव-विज्जालयस्स, मंडवे लक्खहिय-जणुवट्ठिदीइ।
समण्णय-वच्छल्लाइ-भाव-ठावग-पवयण-पहावी।।324।।

वैष्णव विद्यालय के प्रांगण में मुनिश्री के प्रवचन में एक लाख से भी

अधिक लोग उपस्थित थे। मुनिश्री के समन्वयता व वात्सल्य आदि भावों की स्थापना करने वाले प्रवचन अत्यंत प्रभावी थे। अर्थात् लोगों के हृदय पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा।

पणवीससयम-णिव्वाणुच्छवस्स सुजोयणा पारब्भा।
आवडीअ चारुकित्ति-भट्ठारगो अवि वत्ताए॥325॥
गोम्मडेसरम्मि बाहुबली-महामत्थगाहिसेगस्स हु।
होज्जा तदा वस्सम्मि, उणवीससय-उणहत्तरम्मि॥326॥
किण्णु उणवीससयेग-असीदि वस्से चिय सहस्सवस्सा।
पुण्णा पदिट्ठाइ तं, सुणिण्णयो तदाहिसेगस्स॥327॥(तिगं)

भगवान् महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाणोत्सव की योजनाएँ बनना प्रारंभ हो गई। उस समय मुनिश्री के चरणों में श्रवणबेलगोला के युवा भट्टारक चारुकीर्तिजी भी गोम्मटेश श्रवणबेलगोला में श्री बाहुबली भगवान् के महामस्तकाभिषेक की वार्ता के लिए आए। 12 वर्ष के अंतराल में होने वाला श्रीबाहुबली भगवान् का महामस्तकाभिषेक नियमानुसार 1979 में होना चाहिए था परन्तु 1981 में प्रतिमा की प्रतिष्ठा व निर्माण के 1000 वर्ष पूर्ण हो रहे थे। सब बातों पर विचार-विमर्श कर मुनिश्री ने 1981 में ही सहस्राब्दी महोत्सव के साथ महामस्तकाभिषेक का निर्णय किया।

हिंदि-भासं सिक्खिदुं, अणुरुंधिदं चिय भट्ठारगेणं।
सावगेहिं ववत्था, कुव्विदा मुणि-णिद्देसेणं॥328॥

तब चारुकीर्ति भट्टारक ने हिंदी भाषा सीखने के लिए मुनिश्री से अनुरोध किया। मुनिश्री ने समाज के प्रतिष्ठित लोगों के समक्ष भट्टारकजी की भावना व्यक्त की। तब मुनिश्री के निर्देश से श्रावकों ने भट्टारकजी के हिन्दी सीखने की व्यवस्था की।

चउमासो संपण्णो, अच्चंत-जिणधम्म-पहावणाए।
सुहदाणंदेणं सह, जत्थ समणो तत्थ मंगलं॥329॥

इस प्रकार अत्यंत जिनधर्म की प्रभावना के साथ सुख व आनंदपूर्वक चातुर्मास संपन्न हुआ। जहाँ श्रमण हैं, वहाँ मंगल है।

पच्छा इंदोरादो, आवंतेणं महावीर-खेत्तं।
मुणि-विज्जाणंदेणं, जिणधम्मपहावणाइ॥330॥
समायब्भुदयस्स तह, ठावणा विस्सधम्मण्णासस्स।
किदाणि बहु-कज्जाइं, साहित्तसिजग-पुरक्कारस्स॥331॥

पश्चात् इंदौर से अतिशय क्षेत्र महावीरजी आते हुए श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जिनधर्म की प्रभावना और समाज के अभ्युदय के लिए विश्वधर्म ट्रस्ट की स्थापना की एवं धर्म प्रभावना व साहित्यकारों के पुरस्कार के बहुत से कार्य किए।

मुत्तिदूदस्स लेहग-वीरेंद-जइणो पहुच्चीअ तत्थ।
सिरिमहावीर-खेत्तं, एगंतम्मि वत्ता होही॥332॥

यहाँ अतिशय क्षेत्र महावीरजी में जब मुनिश्री विराजमान थे तब मुक्तिदूत के लेखक वीरेन्द्र जैन वहाँ पहुँचे। उनकी मुनिश्री से एकांत में वार्ता हुई।

महावीरुवण्णासं लिहिदुं भासिदं चिय मुणिवरेणं।
ठाविद-वीर-णिव्वाण-गंथ-पगासण-समिदीए हु॥333॥

मुनिश्री ने उनके मुक्तिदूत नामक महाकाव्य की प्रशंसा की एवं उनको महावीर उपन्यास उन्हीं के द्वारा स्थापित वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति के तत्त्वाधान में लिखने के लिए कहा।

दीह-पवासे मुणिस्स, महावीरखेत्ते दंसणत्थीण।
बहुवेगरेलयाणं, वड्ढिद-संखं च पस्संतो॥334॥
ठविदुं तदा देवीअ, सासणं मुणि-दंसण-सुविहाए दु।
जम्हा मुणि-दंसणेण, खयंति अहकम्माणि णियमा॥335॥ (जुम्मं)

महावीरजी अतिशय क्षेत्र पर मुनिश्री के दीर्घ प्रवास के समय दर्शनार्थियों की संख्या बहुत हो गई थी। भक्तों की इस बढ़ती हुई

संख्या को देखते हुए सरकार ने मुनिश्री के दर्शन की सुविधा के लिए एक्सप्रेस रेलों को भी यहाँ ठहरने के लिए आदेश दिया। क्योंकि मुनि दर्शन से पापकर्मों का क्षय नियम से होता है।

उणवीस-सय-बाहत्तर-वस्से मुणि-चउमासो होज्ज तत्थ।
चालीस-दिवसंतंदु,मउण-साहणा कुव्विदा अवि।।336।।

सन् 1972 में मुनिश्री का चातुर्मास वहाँ महावीरजी में हुआ था। तब मुनिश्री ने चालीस दिन तक मौन साधना भी की।

विहरीअ मेरठं पडि, मुणिंदो आगमिस्स-चउमासस्स।
मथुराचउरासीए, विज्जंतमुणिवरस्स णियडे।।337।।
देसभूसण-सूरिस्स, पत्तं आहरीअ सुमेरचंदो।
मेरठ-गमण-पुव्वम्मि,ढिल्लीए चिय मिलेज्जा सो।।338।।

सव्व-संपदायाणं, विसालसहा चिय साहु-सेट्ठीणं।
आवसियो उवट्ठिदी, तुज्झ ढिल्ली-वासो दु तहा।।339।।
महावीर-णिव्वाणुच्छवस्स जोयणा करेज्जा जस्सिं।
गुरु-अण्णाए समणो, परिवट्टीअ णिय-कज्जकमा।।340।। (चउक्कं)

पश्चात् आगामी चातुर्मास के लिए मुनिराज ने मेरठ नगर की ओर विहार किया। मेरठ जाते हुए बीच में मथुरा चौरासी पड़ा। कुछ समय के लिए मुनिश्री यहाँ पर ठहरे। मथुरा चौरासी में विद्यमान श्री विद्यानंद मुनिराज के निकट पं. सुमेरचंद जी उनके गुरु आचार्यश्री

देशभूषणजी मुनिराज का पत्र लेकर आए। उस पत्र में लिखा था कि मेरठ जाने के पूर्व वे उनसे दिल्ली में मिलें। आगे संदेशा था कि दिल्ली में सभी संप्रदायों के साधुओं और समाज श्रेष्ठियों की विशाल सभा का आयोजन हो रहा है। उस सभा में भगवान् महावीर के 2500वें निर्वाण महोत्सव की योजनाएँ तैयार की जाएँगी। उसमें आपकी उपस्थिति और दिल्ली निवास आवश्यक है। गुरु की आज्ञा प्राप्त कर मुनिश्री ने अपने कार्यक्रम परिवर्तित कर दिए।

णव-वास-पच्छा सिस्स-गुरु-मिलणं कम्मो-धम्मसालाइ।
ढिल्लीइ विसाल-सहायोजिदा रत्त-दुग्ग-हुत्ते।।341।।

9 साल बाद 1973 में गुरु-शिष्य का मिलन कम्मोजी की धर्मशाला दिल्ली में हुआ। जिस दिन के लिए गुरुदेव ने मुनिश्री को याद किया था वह दिन भी शीघ्र आ गया। दिल्ली के लाल किले के सामने परेड ग्राउंड में विशाल सभा आयोजित की गई।

उच्छवज्झक्खा तस्स, सुपहाणमंती इंदिरागंधी।
सहाए केंदीय-सिक्खा-मंती पडिणिहि-रूवेण।।342।।

उस विशेष उत्सव की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी थीं। सभा में उनके प्रतिनिधि के रूप में केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री डी.पी. यादव उपस्थित थे।

सव्व-मंचासीणाहि, सिदंबर-तुलसी-सुसीलादीहिं।
सेट्ठीहि विणिवेदिदं, विज्जाणंद-मुणि-पवयणस्स।।343।।

उस समय श्वेतांबर मुनि आचार्य तुलसी जी, आचार्य सुशील मुनि आदि भी मंचासीन थे। इन सभी साधुओं ने एवं श्रेष्ठीवर्गों ने श्री विद्यानंदजी मुनिराज के प्रवचन के लिए निवेदन किया। [दरअसल उस दिन सभा का शुभारंभ यादवजी ने किया। सरकारी योजनाओं को बताते हुए उन्होंने जैन समाज के धनाढ्य होने की चर्चा भी एक आलोचक की दृष्टि से की, जिससे उपस्थित समाजश्रेष्ठियों और त्यागीवर्ग के मन पर आघात लगा। सभा के संचालक के पास त्यागीवर्ग व श्रेष्ठियों की ओर से पर्चियाँ आने लगीं कि इनके बाद श्री विद्यानंदजी मुनिराज का प्रवचन कराएँ।]

सव्व-णिवेदणे समण-विज्जाणंदेणं उवदेसिदा हु।
पाईणत्तं च जइण-धम्मस्स जइण-सक्किदीए।।344।।

सबके निवेदन पर श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जैन धर्म की प्राचीनता और जैन संस्कृति का उपदेश दिया।

अडदालीस-सहस्सा, पोत्थिया पढिदा विज्जाणंदेण।
इदिवत्त-मुग्घाडिदं, जइणप्पदा सागाहारो।।345।।

श्री विद्यानंद मुनिराज अब तक 48000 पुस्तकें पढ़ चुके थे। मुनिश्री ने जैनों का इतिहास उद्घाटित किया और बताया कि विश्व को यह शाकाहार जैनों की ही देन है।

वयं सिहेज्ज देसस्स, कोडी-पयाए सहजोगं।
सा अम्हेहि सह सया, धम्मिगा कत्तव्वणिट्ठा य।।346।।
वयं संगच्छेज्जा, पया-सहजोगं किण्णु सासणस्स।
सत्थ-भूमिगाइतस्स,साहुवादं देज्ज भावेहि।।347।। (जुम्मं)

उन्होंने कहा हम देश की करोड़ों की प्रजा का सहयोग चाहते हैं। वह जनता सदा हमारे साथ है। भारत की जनता धार्मिक और कर्त्तव्यनिष्ठ है। हम प्रजा का सहयोग स्वीकार करेंगे किन्तु शासन की स्वस्थ भूमिका के लिए उसे शुभ भावपूर्वक साधुवाद देंगे।

ण मेत्तं पुण्ण-देसं, णवरि संसारं दु उवदेसंतो।
णव-मग्ग-णिद्देसणं,देज्जतस्सणव-जागरियाइ।।348।।

श्री मुनिवर ने उपदेश देते हुए इस पूरे देश को ही नहीं अपितु वर्तमान विश्व को ही, उसकी नव जागृति के लिए नवीन मार्ग का निर्देशन दिया। [कार्यक्रम के पश्चात् मुनिश्री ने चातुर्मास के लिए मेरठ की ओर विहार कर दिया।]

कुव्विदा दु सेदंबर-दियंबर-समाय-विवाद-समत्ती।
हत्थिणायपुर-तित्थे, मेरठ-चउमासम्मि मुणिणा॥349॥

1973 के मेरठ चातुर्मास में मुनिराज ने हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर श्वेतांबर व दिगंबर समाज के बीच चल रहे विवाद को समाप्त कर दिया।

णाण-वड्ढणुच्छवस्स, उवलक्खे धम्मसहायोजिदा हु।
रायहाणीए ऊणवीससयचउहत्तर-वस्से॥350॥

चातुर्मासोपरान्त विभिन्न स्थानों पर धर्म प्रभावना करते हुए मुनिश्री अप्रैल 1974 में भारत की राजधानी नई दिल्ली पहुँचे। 22 अप्रैल को वहाँ ज्ञानवर्धनोत्सव के उपलक्ष्य में एक धर्मसभा आयोजित की गई।

णिव्वाणमहुच्छवम्मि, लोयसुकल्लाणकारग-वीरस्स।
एगत्तेणं सव्वा, समप्पिदा होज्ज सुभावेहि॥351॥

मुनिश्री ने कहा कि लोककल्याणकारक महावीर स्वामी के निर्वाण महोत्सव पर सभी लोग एकता व अखंडता से शुभ भावपूर्वक समर्पित रहेंगे।

केंदीय-सत्थ-मंती, रत्तदुग्गे-मुक्ख-अदिहि-रूवम्मि।
भासीअ संतोसो दु, इह देसे एरिसो संतो॥352॥

इस अवसर पर केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. कर्णसिंह लालकिला के मैदान में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। मुनिश्री की ओजस्विता से परिचित मंत्रीजी ने सभा में कहा कि मुनि विद्यानंदजी जैसे संत इस देश में हैं, इसी से संतोष है।

ठाणं सोहकज्जस्स, वियारिदुं पागदाइ-विसयेसुं।
रायहाणीइ कहिदं, विदूहिं चउहत्तर-वस्से॥353॥

सन् 1974 की बात है। यह सर्व विदित है कि मुनिश्री विद्वानों को विशेष वात्सल्य व सम्मान प्रदान करते थे। विद्वानों ने मुनिश्री से भारत की राजधानी दिल्ली में प्राकृत आदि विषयों पर शोधकार्य के लिए स्थान के विचार करने के लिए कहा।

णिव्वाणुच्छववसरे, कुंदकुंदभारदीइ किदो।
भूमि-कयो विसेस-सहगारी णाणग-रामो तदा॥354॥

भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाणोत्सव के शुभ अवसर पर कुंदकुंद भारती के लिए भूमि क्रय की गई। भूमि क्रय करने में तब विशेष सहयोगी श्री नानक राम जौहरी जी रहे।

[जैन बालाश्रम दरियागंज दिल्ली में दिगंबर साधु परम पूज्य आचार्यश्री धर्मसागरजी, भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी और पूज्य मुनिश्री विद्यानंदजी तथा श्वेतांबर साधु आचार्य तुलसी जी, मुनि सुशीलजी आदि अनेक साधु, साध्वी व समाज श्रेष्ठियों की उपस्थिति में कई बैठकें निर्वाण महोत्सव के संबंध में हुईं।]

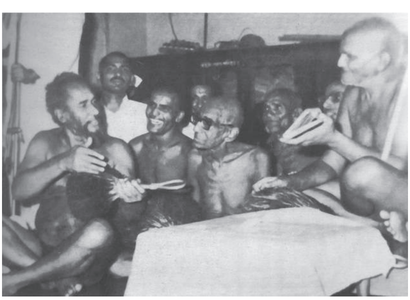

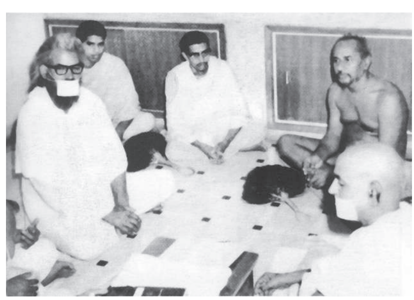

णिव्वाणमहुच्छवस्स, सहासु कहिदं विज्जाणंदेणं।
एग-पणवण्णी धया, पदीगो धम्मचक्कं गंथो।।355।।

निर्वाण महोत्सव की सभाओं में श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने कहा कि जैन धर्म का एक पंचरंगी ध्वज, एक प्रतीक, एक ग्रंथ और धर्म चक्र होना चाहिए।

सव्वेहि-मणुमण्णिदं, संगच्छिदं णिग्गंथ-मुणिवयणं।
सुणिच्छिदो दु सहाए, सव्वकज्जकमो उच्छवस्स।।356।।

सभी ने निर्ग्रंथ मुनिराज के वचनों की अनुमोदना की और उन्हें स्वीकार किया। सभा में निर्वाणोत्सव के सभी कार्यक्रम निश्चित किये गए।

तेरसणवंबरम्मि य, णिग्गंथपरिसदो चउदसम्मि चिय।
गोदम-सुमदि-दिणंपणरसेसमणसक्किदि-परिसदो।।357।।
सोलसे भव्वसोहा-जत्ता रामलीला-परिसरम्मि य।
धम्मचक्कवट्टण-मिंदिरा-गंधीए सत्तरसे।।358।।
अट्ठदस-णवंबरादु, बीसंतं पवयणं च साहूणं।
रत्तदुग्गपरिसरम्मि, उब्बोहणं अवि णेदूणं।।359।। (तिगं)

13 नवंबर 1974 को निर्ग्रन्थ परिषद, 14 नवंबर को गौतम गणधर स्मृति दिवस, 15 नवंबर को श्रमण संस्कृति परिषद, 16 नवंबर को भव्य शोभायात्रा, 17 नवंबर को रामलीला ग्राउण्ड दिल्ली में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी जी के द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तन, 18 नवंबर से 20 नवंबर तक लाल किला के मैदान में साधुओं के मंगल प्रवचन और राजनेताओं के उद्बोधन, इस प्रकार ये सभी कार्यक्रम निश्चित हुए।

भव्वजत्ता-उच्छवो, लक्खजणपूरिदा उहय-भागम्मि।
पहस्स तादु तिगुणिदा, जणा सत्तट्ठ-घडिगंतं च।।360।।

16 नवंबर, 1974 को भव्य शोभायात्रा महोत्सव हुआ जिसमें संपूर्ण दिल्ली महावीरमय हो गयी। इस शोभायात्रा में लगभग एक लाख लोग उपस्थित रहे। उससे भी तिगुने लोग सड़क के दोनों ओर सात-आठ घंटे तक जमे रहे।

सययं पुप्फविट्ठी दु, णारी पंचवण्णिसाडीजुदा य।
विविह-चित्तावलिजुदा,आविअज्झावसज्जिदासा।।361।।

उस जुलूस में लगातार पुष्पवर्षा होती रही, नारियाँ पंचरंगी साड़ियाँ पहनी हुई थीं। यात्रा विविध रंगबिरंगी झाँकियों से युक्त थी। वह पूरी शोभायात्रा दुल्हन के समान सजी हुई थी।

ण मेत्तं जइणा णवरि, जइणेदरा अवि उच्छाहिदा तं।
णियावणं पिहाएत्तु, सम्मिलिदा सोहाजत्ताइ।।362।।

इस जुलूस के लिए न मात्र जैन अपितु जैनेतर भी अति उत्साहित थे इसलिए अपनी-अपनी दुकान बंदकर सभी लोग शोभायात्रा में अत्यंत उत्साह के साथ सम्मिलित हुए।

तियकोस-दीह-जत्ता, पारब्भीअ दसवायण-पहादे।
जत्ताइ अंत-भागो, पहुच्चीअ सत्तवायणे दु।।363।।

यह जुलूस तीन कोस लंबा था। यह जुलूस सुबह 10 बजे प्रारंभ हुआ और इस यात्रा का अंतिम छोर शाम को लगभग 7 बजे लालकिला पहुँचा।

उसचक्कं वट्टंतो, अपरिग्गहं जीवणम्मि धरेज्जा।
गंधी कहीअ जम्हा, गंथो सया किलेस-मूलं।।364।।

17 नवंबर को रामलीला मैदान में धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हुए श्रीमती इन्दिरागांधी जी ने कहा कि भगवान् महावीर स्वामी का अपरिग्रह अपने जीवन में धारण करना चाहिए क्योंकि परिग्रह सदैव क्लेश का मूल है।

विस्ससंतिठावणा दु, सक्को महावीर-मूलमंतेण।
अहिंसा-असंगाणं, थिरा सया अज्झप्प-मग्गे।।365।।

उन्होंने जोर देकर कहा विश्वशांति की स्थापना भगवान् महावीर स्वामी के अहिंसा व अपरिग्रह के मूलमंत्र से ही शक्य है। सुख-शांति के लिए लोग सदैव अध्यात्म मार्ग पर स्थिर रहें।

ढिल्ली-रायगिहादो, इंदोर-सवणबेलगोलादो य।
णिव्वाणुच्छव-पव्वे, पवट्टणं दु धम्मचक्कस्स।।366।।

भगवान् महावीर स्वामी के 2500वें निर्वाणोत्सव के पावन पर्व पर दिल्ली, राजगृह, इंदौर व श्रवणबेलगोला इन चार स्थानों से धर्मचक्र का प्रवर्तन हुआ।

तदा दहेज-कुरीदिं, पणासेदुं सामाइग-दोसं दु।
आहविदं मुणिणा जं, कुरीदी समायस्स कुट्ठं व।।367।।

इस अवसर पर मुनिश्री ने दहेज की कुरीति को खत्म करने का आह्वान किया। क्योंकि कुरीति समाज के लिए कुष्ठ रोग के समान है।

आयंस-पाढगो

(आदर्श पाठक)

मग्गसिर-वदि-दसमीइ, उणवीस-सय-चउहत्तरे वस्से।
वीर-तव-कल्लाणम्मि, गोम्मडेस-पदिट्ठा-दिवसे।।368।।

सूरि-देसभूसणेण, पदायिय उवज्झायपदं मुणिस्स।
पायो लुआ वस्सादु, सुजीविदा पद-परंपरा दु।।369।।

मंगसिर कृष्ण दशमी (8 दिसंबर) के दिन वर्ष 1974 में, उसी दिन श्रवणबेलगोला में गोम्मटेश्वर बाहुबली भगवान् की प्रतिष्ठा हुई थी, भगवान् महावीर स्वामी का दीक्षा कल्याणक भी था, तब भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने मुनि श्रीविद्यानंदजी को उपाध्याय पद प्रदान किया। उपाध्याय पद प्रदान कर वर्षों से लुप्त प्रायः पद परंपरा को पुनर्जीवित कर दिया। मुनिश्री विद्यानंदजी 20वीं शताब्दी के प्रथम उपाध्याय बने।

जत्थ जत्थ गदं मए, तत्थ तत्थ जिणधम्मपहावणा दु।
सुणिदा दु मुणिणा किदा, संपत्तो सुजोग्गसिस्सो दु॥370॥
तस्स दंसणं णाणं, पस्संतो पाढग-पदासीणो दु।
किदो मए हरिसेणं, एवंविह सूरिणा कहिदं॥371॥(जुम्मं)

इस अवसर पर आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने इस प्रकार कहा कि मैं जहाँ-जहाँ भी गया, वहाँ-वहाँ मैंने मुनि विद्यानंद के द्वारा की गई जिनधर्म प्रभावना को सुना। मैंने एक सुयोग्य शिष्य प्राप्त किया, उनके निर्मल दर्शन व अपार ज्ञान को देखते हुए मैंने अति हर्षपूर्वक इन्हें उपाध्याय पद पर आसीन किया है।

अइ-सोहग्गवंतो दु, लहिदो गुरु-देसभूसणोव्व मए।
अच्चंताणंदेणं संपण्णो आयोजणं तं॥372॥

पुनः आचार्य गुरुदेव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए पूज्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने कहा कि मैं अति सौभाग्यशाली हूँ जो मैंने आचार्यश्री देशभूषणजी के समान गुरु को प्राप्त किया। यह आयोजन महावीर वाटिका, दरियागंज में अति आनंद के साथ संपन्न हुआ।

पाढग-परमेट्ठीणं, पणवीस-मूलगुणा विसेसेणं।
एयारसंग-चउदस-पुव्वज्झेदू वंदणीया॥373॥

उपाध्याय परमेष्ठियों के विशेष रूप से 25 मूलगुण होते हैं। 11 अंग व 14 पूर्व के अध्येता सदा वंदनीय हैं।

बारसंगाणं अंस-रूव-णाणं गहेज्ज जह-सत्तीइ।
जिणसासण-पहावणा, करिदा सण्णाणेण तेणं॥374॥

उन्होंने यथाशक्ति द्वादशांग का अंग रूप ज्ञान ग्रहण किया। उन उपाध्याय ने सम्यक् ज्ञान के द्वारा जिनशासन की प्रभावना की।

आयारं सुत्तकिदं, ठाण-समवाय-वक्खापण्णत्ती।
णादकहा य उवासग-अज्झयणं अंतयडदसं च॥375॥
अणुत्तरदसं च पण्हवागरणं तहा विवागसुत्तं दु।
कहिद-मेयारसंगं, भणिदं सव्वण्हु-जिणवरेहि॥376॥(जुम्मं)

आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृकथा, उपासकाध्ययन, अंतःकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग ये ग्यारह अंग सर्वज्ञ जिनवरों के द्वारा कहे गए हैं।

बारसम-दिट्ठिवादं, पंचविहं तहा जिणवरुद्दिट्ठं।
परिकम्मं सुत्तं, पढमणुओग-पुव्वगद-चूलिगा।।377।।

जिनेंद्रप्रभु के द्वारा बारहवाँ अंग दृष्टिवाद निर्दिष्ट किया गया है। यह दृष्टिवाद अंग पाँच प्रकार का है—परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

परिकम्मं पंचविहं, सूर-चंद-जंबुदीव-पण्णत्ती।
दीवसिंधुपण्णत्ती, वक्खारपण्णत्ती जाणेज्ज।।378।।

परिकर्म पाँच प्रकार का जानना चाहिए—सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्रप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति तथा व्याख्याप्रज्ञप्ति।

पंचविहा चूलिगा दु, जलगदा थलगदा आयासगदा।
माया-रूवगदा जिण-पणीद-गंथेहि विण्णेया।।379।।

आप्त-प्रणीत ग्रंथों से चूलिका पाँच प्रकार की जाननी चाहिए—जलगता, स्थलगता, आकाशगता, मायागता और रूपगता।

उप्पादपुव्व-मग्गायणीय-वीरियत्थि-णत्थि-पवादं।
णाण-सच्चप्पवादं, आदा तह कम्मप्पवादं।।380।।
पच्चक्खाणं विज्जाणुवादं कल्लाण-पाणावायं।
किरियाविसालं लोय-बिंदुसारं चउदसपुव्वं।।381।।
गहिदुं अपुव्वणाणं, अज्झयेज्जा सव्वंगं पुव्वं च।
जहासत्तीए जहा-कमेण मुणी विज्जाणंदो।।382।। (तिगं)

उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्यानुप्रवाद, अस्ति-नास्ति-प्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुप्रवाद, कल्याण ावाद, प्राणावाद, क्रियाविशाल और लोकबिंदुसार इन चौदह पूर्व रूप अपूर्वज्ञान को ग्रहण करने के लिए श्री विद्यानंदजी मुनिराज

ने यथाशक्ति यथाक्रम से वर्तमान में संप्राप्त सर्व अंगों व पूर्वों का अध्ययन किया।

पाढग-विज्जाणंदो, पढीअ चिंतीअ उवदिसीअ तस्स।
सारं च चेयणाए, पयासेदुं चिय अण्णगुणा॥383॥

उपाध्याय श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने चेतना के अन्य गुणों को प्रकाशित करने के लिए उनके सार को पढ़ा, चिंतन किया और उपदेश दिया।

वेरग्गुप्पत्तीए, जणणीव बारसणुवेक्खा तेणं।
पडिसंचिक्खिदा तदा, णव-वेरग्ग-संविड्ढीए॥384॥

वैराग्य की उत्पत्ति के लिए द्वादश अनुप्रेक्षाएँ जननी के समान हैं। उन मुनिराज ने नव वैराग्य की वृद्धि के लिए उन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया।

सव्वदव्वा अणिच्चा, सव्वदा पज्जायाणुसारेणं।
दव्वट्ठिग-णयेणं च, सव्वा णिच्चा मुणेदव्वा॥385॥

सभी द्रव्य पर्याय के अनुसार सर्वदा अनित्य हैं, द्रव्यार्थिक नय से वे सभी द्रव्य नित्य जानने चाहिए।

जं किंचिवि पस्सेमि दु, लोए पोग्गल-दव्वा सव्वा ते।
सगकालाणुसारेण, उहट्टंति सव्वपज्जाया॥386॥

इस लोक में जो कुछ भी देखता हूँ वे सभी पुद्‌गल द्रव्य हैं। द्रव्यों की सभी पर्यायें अपने समय के अनुसार नियम से नष्ट हो जाती हैं।

उस्सिक्कंति सरीरं, भूवदी अहिराया मंडलीगा।
चक्की य अद्धचक्की, लोगदिसायी तित्थयरो वि॥387॥

राजा, अधिराजा, मंडलीक, चक्रवर्ती, अर्द्धचक्रवर्ती व लोकातिशायी तीर्थंकर भी अपने शरीर का परित्याग करते हैं।

चक्किस्स णवणिही चउदसरयणं बलि-आदीणं रयणं।
कामदेवस्स देहो, किंचिवि णो सस्सदो लोए॥388॥

चक्रवर्ती की नौ निधि, चौदह रत्न व बलभद्र आदि के रत्न, कामदेव की देह कुछ भी लोक में शाश्वत नहीं है।

इंदस्स महाविहवो, अलद्धो अण्णजीवेहिं लोए।
पुण्णे खीणे खयदे, सो वि णेव सस्सदो कया वि।।389।।

इंद्र का महावैभव लोक में अन्य जीवों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् उनके समान वैभव अन्य जीवों के नहीं होता। पुण्य क्षीण होने पर वह वैभव भी नष्ट हो जाता है। वह कदापि शाश्वत नहीं है।

इट्ठाणिट्ठवत्थूणि, लहदे पुण्ण-पाव-कम्मुदयादो।
कम्मे खीणे खयंति, वत्थूणि णियमेणं लोए।।390।।

जीव पुण्य व पाप-कर्म के उदय से इष्ट व अनिष्ट वस्तुओं को प्राप्त करता है। और कर्म के क्षीण होने पर लोक में वस्तुएँ नियम से नष्ट हो जाती हैं।

अहो भव्वुल्लो सगप्पस्स सहावो सासयो हु णेयो।
ण कुणदु हस्स-विसादं, रायदोसं वि णिव्वाणस्स।।391।।

अहो भव्यजीव! अपनी आत्मा का स्वभाव ही शाश्वत जानना चाहिए। मोक्ष के लिए हर्ष-विषाद व राग-द्वेष मत करो।

अणिच्चभावणादिं च, जाणदि जहत्थरूवेण जो मणदि।
सीददि भवे सो ताइ, णाणेण विणा अणंतदुहं।।392।।

जो जीव अनित्य भावना आदि को जानता है, यथार्थरूप से मानता है वह संसार में दुःखी नहीं होता। उस अनुप्रेक्षा के ज्ञान के बिना जीव अनंत दुःख ही प्राप्त करता है।

लोए छद्दव्वा बहु-जदणेहिं णेव णस्सदि एगो वि।
दव्वत्तादी दु अण्ण-सामण्ण-विसेसगुणा ताण।।393।।

लोक में छह द्रव्य हैं। बहुत यत्न करने पर भी एक भी द्रव्य को नष्ट नहीं किया जा सकता। उन द्रव्य के द्रव्यत्व आदि अन्य सामान्य गुण व विशेष गुण भी हैं।

दव्वस्स गुण-णाणेण, विणा ण सक्को सोहिदुं सगप्पं।
बीयेणं विणा कहं, फलाइ-सहिद-रुक्खुप्पत्ती।।394।।

द्रव्य के गुणों के ज्ञान के बिना कोई भी जीव अपनी आत्मा को शुद्ध करने में समर्थ नहीं होता। उचित ही तो है—बीज के बिना फल आदि से सहित वृक्ष की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती। इत्यादि प्रकार से मुनिराज अनित्य भावना का चिंतन किया करते थे।

विणा सगपुण्णेणं दु, को वि णेव कस्स वि सरणं लोए।
चिंतणेणं सह मुणी, उवदिसीअ कल्लाणत्थं दु।।395।।

अपने पुण्य के बिना इस संसार में कोई भी किसी के लिए शरण नहीं है। इस चिंतन के साथ वे मुनिराज कल्याण के लिए अशरण भावना का उपदेश दिया करते थे।

पुण्णं णेव सस्सदं, हवेदि पावेणं पीडिदं तं पि।
जह णो सस्सद-दिवसो, णो रत्ती सस्सदा कया वि।।396।।

पुण्य शाश्वत नहीं है यह भी पाप से पीड़ित होता है। जिस प्रकार दिन शाश्वत नहीं है, रात्रि शाश्वत नहीं है उसी प्रकार पुण्य भी शाश्वत नहीं है।

पणपरमेट्ठी ताणं, बिंबाणि जिणधम्मो जिणवयणाणि।
परमट्ठेणं सरणं, अप्पकल्लाणत्थं सया हि।।397।।

आत्मकल्याण के लिए पंच परमेष्ठी, उन पंचपरमेष्ठी के बिंब, जिनधर्म, जिनवचन सदा ही परमार्थ से शरण हैं।

गहदि जो वि सद्दिट्ठी, जिणगुरुसरणं णेव ववहारम्मि।
सो ण लहदि परमट्ठं, कज्जलावेदि भवे भट्टो।।398।।

जो कोई भी सम्यग्दृष्टि व्यवहार में जिनेन्द्रप्रभु की व निर्ग्रन्थ गुरु की शरण ग्रहण नहीं करता वह परमार्थ को भी प्राप्त नहीं करता। वह भ्रष्ट संसार में डूब जाता है।

णिच्छयसरणं लहिदुं, पढमो गहेज्ज ववहारसरणं दु।
जम्हा कारणं विणा, णेव दु कज्जसिद्धी कया वि।।399।।

निश्चय शरण को प्राप्त करने के लिए पहले व्यवहार शरण को ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि कारण के बिना कार्य की सिद्धि कदापि नहीं होती।

णाम-धारग-पंडिदा, जे के वि सद्द-उम्मादी खलु ते।
बुड्डंति भवसायरे, सयं मज्जावंति अण्णा वि।।400।।

जो कोई भी शब्दोन्मादी, नाम धारक पंडित हैं वे स्वयं भी संसार सागर में डूबते हैं और अन्यों को भी डुबा देते हैं।

उहय-णयाणुसारेण, चलेज्ज सिवमग्गे सगसत्तीए।
सावयेहि सगधम्मो, पालिदव्वो खलु समणेहिं।।401।।

उभय नय अर्थात् व्यवहार व निश्चय नय के अनुसार अपनी शक्ति से मोक्षमार्ग पर चलना चाहिए। श्रावक व श्रमणों को अपने धर्म का पालन करना चाहिए।

सग-भावाणुसारेण, परिणमंते दव्वा संसारम्मि।
जीवपोग्गलदिरित्तो, णो को वि विजहदि सगसीलं।।402।।

संसार में सभी द्रव्य अपने-अपने भावों के अनुसार परिणमन करते हैं। जीव व पुद्गल द्रव्य के अतिरिक्त कोई भी द्रव्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता।

मिच्छत्ताइ-वसेणं, जीवो भमदि भवघोरकंतारे।
दव्व-खेत्त-याल-भाव-भव-परिवट्टणं पकुव्वेदि।।403।।

मिथ्यात्व आदि के वशीभूत होकर जीव संसार रूपी घोर वन में भ्रमण करता है, वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव व भव परिवर्तन करता है।

विज्जंता तिलोयम्मि, कम्मणोकम्मवग्गणा विविहा य।
बंधदि मुंचदि अणंतवारं कमेणं संसारी।।404।।
पुण ताउ वग्गणाउ हि, जदा ताणं भावाणुसारेणं।
गहदि तदा णादव्वं, एगंदव्व-परिवट्टणं हु।।405।। (जुम्मं)

लोक में विविध कर्म व नोकर्म वर्गणाएँ विद्यमान हैं। संसारी जीव उन्हें क्रम से अनंत बार बांधता है व छोड़ता है। पुनः जब उन्हीं (प्रारंभ में ग्रहण की गई) वर्गणाओं को उन्हीं भावों के अनुसार ग्रहण करता है तब वह एक द्रव्य परिवर्तन जानना चाहिए।

लोगे ण पदेसेसो, जत्थ जादि ण मरदि अणंतवारं।
जइ-यालम्मि कमेणं, तई इग-खेत्त-परिवट्टणं।।406।।

लोक में एक भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ जीव अनंतबार जन्म-मरण न करता हो। जितने काल में जीव लोक के प्रत्येक प्रदेश पर क्रमशः जन्म व मरण करता है उतना काल एक क्षेत्र परावर्तन जानना चाहिए।

अवसप्पिणि-उवसप्पिणि-पत्तेय-समये कमेण जम्मेदि।
मरदि जदा तदा एग-यालपरिवट्टणं जाणेज्ज।।407।।

जब जीव अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के प्रत्येक समय में क्रम से जन्म व मरण कर लेता है तब वह एक कालपरिवर्तन जानना चाहिए।

जावइआ चदुगदीण, जहण्णे आउम्मि होंति समया दु।
तावइअ-वारं मरदि, जम्मदि जीवो लहदि दुक्खं।।408।।
लहदि जहण्णाऊदो, अणंतभवा वरट्ठिदि-पज्जंतो।
चदुगदीणं कमेणं, समयं समयं वड्ढमाणं।।409।।
देवगदीए जीवो, भुंजदि इगतीस-सागरस्साउं।
उप्पज्जंते मिच्छादिट्ठी गेवेज्ज-पज्जंतं।।410।। (तिअं)

चारों गतियों की जघन्य आयु में जितने समय होते हैं जीव उतनी ही बार जन्म-मरण करता है व दुःख प्राप्त करता है। चारों गतियों की जघन्य आयु से लेकर उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत एक-एक समय बढ़ता हुआ क्रम से अनंत भवों को प्राप्त करता है। विशेषता यह है कि देवगति में जीव 31 सागर की आयु भोगता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव ग्रैवेयक पर्यंत ही उत्पन्न हो सकता है। यही एक भव परावर्तन कहलाता है।

जोगठाणेहि जीवो, कसायज्झयवसाय-ठाणेहिं च।
अणुभाग-ठिदिठाणेहि, परिणमदे भाव-संसारे॥411॥

जीव योगस्थान, कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभाग बन्धाध्यवसाय व स्थिति स्थान के द्वारा भाव संसार में परिणमन करता है।

चउगदीसुं हु जीवा, लहंति बहुकट्ठं दुक्खं णियमा।
सुहाभासो हि मेत्तं, हिमकणोव्व सुहं संसारे॥412॥

चारों ही गतियों में जीव नियम से बहुत कष्ट व दुःख प्राप्त करते हैं। इस संसार में वह सुखाभास भी मात्र ओस बूंद के समान है।

अण्णाणी मण्णंते, तं हि सुहं दुहपूरिद-भवम्मि जह।
महुमच्छिग-पीडिदो य, मणदि सुह-हेदू महु-बिंदुं॥413॥

इस दुःख से भरे हुए संसार में अज्ञानी जीव उस सुखाभास को ही सुख मानते हैं। जैसे मधुमक्खियों से पीड़ित व्यक्ति शहद की बूंद को ही सुख का हेतु मानता है।

संसार-दुहं पस्सिय, स-परिणदिं जाणिय होज्ज विरत्तो।
मोहमुज्झिदु-मसक्को, जो सो दु अणंतसंसारी॥414॥

संसार के दुःख को देखकर व निज परिणति को जानकर जीव विरक्त होता है। जो मोह को छोड़ने में असमर्थ हैं वे अनंत संसारी हैं।

भोत्ता हं णियमेणं, मज्झ अप्पेण सय किद-कम्माणं।
एगत्तभावणा सय, चिंतेज्जा सव्वसंसारी॥415॥

मेरी आत्मा के द्वारा किए गए कर्मों का मैं ही नियम से भोक्ता हूँ। सभी संसारी प्राणियों को सदा एकत्व भावना का चिंतन करना चाहिए।

मइ अज्जिद-कम्मफलं, णेव भुंजेदि अण्णप्पा कया वि।
अण्णप्पेहि अज्जिदं, णो भुंजेमि कत्थ वि कया वि॥416॥

मेरे द्वारा अर्जित किए गए कर्मों के फल को अन्य आत्मा कदापि नहीं भोगती। एवं अन्य आत्माओं के द्वारा अर्जित कर्म के फल को मैं कभी भी कदापि नहीं भोग सकता।

एक्को बंधदि कम्मं, पुण्णं पावं मोहपवित्तीए।
एक्को भुंजदि णियमा, सुहासुहफलं हंदि ताणं॥417॥

जीव अकेला ही मोह की प्रवृत्ति से पुण्य व पाप कर्म बांधता है और अकेला ही उनके शुभ व अशुभ फलों को नियम से भोगता है।

एक्को जम्मदि मरदे, एक्को जणदि णिरये सग्गे।
मणुजे तिरिये एक्को, मए सह अण्णा ण गच्छेज्ज॥418॥

जीव नरक-स्वर्ग-मनुष्य व तिर्यंच में अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त करता है। मृत्यु उपरांत मेरे साथ अन्य कोई भी नहीं जाएगा।

एक्को कुव्वदि कम्मं, एक्को भुंजेदि ताण कम्मफलं।
सव्वकम्मं खयित्ता, एक्को लहदे परम-मोक्खं॥419॥

जीव अकेला ही कर्म करता है और अकेला ही उन कर्मों के फल को भोगता है। सर्व कर्मों को क्षय कर जीव अकेला ही परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

एयत्त-चिंतगो खलु, समत्थो सगसिद्धत्तं लहेदुं।
जस्स चित्त-मेयत्तं, ण सो भमदि भवे दीहंतं॥420॥

एकत्व भावना का चिंतन करने वाला ही स्वसिद्धत्व को प्राप्त करने में समर्थ है। जिसका चित्त एकत्व भाव से युक्त नहीं है वह संसार में दीर्घकाल तक परिभ्रमण करता है।

ण मे असणं वसणं ण, ण धणधण्णं ण पुत्तं कलत्तं ण।
णो पिदरं णो भादू, णो भगिणी ण मित्तादी वा॥421॥

ये भोजन, वस्त्र, धन-धान्य मेरे नहीं हैं, ये पुत्र, ये स्त्री मेरे नहीं हैं। ये माता-पिता, भाई-बहन अथवा मित्र आदि मेरे नहीं हैं।

णो मे बालावत्था, ण मे जोव्वणं बुड्ढावत्था णो।
णाहं इत्थी पुंसो, ण संढो सुर-णर-तिरियादी॥422॥

यह बाल अवस्था मेरी नहीं है, यह यौवन और वृद्धावस्था भी मेरी नहीं है। मैं न तो स्त्री हूँ, न पुरुष, न नपुंसक हूँ और न ही देव, मनुष्य या तिर्यंचादि हूँ।

मज्झ दव्वकम्मं णो, णो भावकम्मं च णोकम्मं णो।
णाहं धम्माधम्मो, णाहं पोग्गलो णो यालो।।423।।

ये द्रव्यकर्म मेरे नहीं हैं, ये भावकर्म व नोकर्म भी मेरे नहीं हैं। मैं न धर्म द्रव्य हूँ, न अधर्म द्रव्य हूँ, न पुद्‌गल द्रव्य हूँ और न काल द्रव्य हूँ।

मे अप्पे णण्णप्पा, अण्णप्पे णेव मज्झ अत्थित्तं।
ण मे अण्णदव्वगुणा, णो मज्झ विहावपज्जाया।।424।।

मेरी आत्मा में कोई अन्य आत्मा नहीं है। अन्य आत्मा में मेरा कोई अस्तित्व नहीं है। न मुझमें अन्य द्रव्य या गुण है। कोई भी विभाव पर्याय मेरी नहीं है।

तिरियो वा णेरइयो, जीवो सुरो णरो ववहारेणं।
मण्णदि पोग्गलविहवा, अप्पुल्लो भवण-पुत्तादी।।425।।

व्यवहार से जीव तिर्यंच, नारकी, देव या मनुष्य है। व्यवहार से जीव पुद्‌गल वैभव, भवन व पुत्रादि को अपना मानता है।

परमट्ठिय-णय-णाणं, विणा मेत्तं ववहारेण मुत्ती।
णो संभवो ववहारणय-णाणं विणा णिच्छयेण।।426।।

पारमार्थिक नय के ज्ञान के बिना मात्र व्यवहार से और व्यवहार नय के ज्ञान के बिना मात्र निश्चय से मुक्ति संभव नहीं है।

सगसुद्धप्पं मुणित्तु, परभावं उज्झदि जीवो जो सो।
सगसुद्धप्प-सहावं, पाविदुं सक्केदि णियमेण।।427।।

जो जीव अपनी शुद्धात्मा को जानकर परभावों का त्याग करता है वह नियम से अपनी शुद्धात्मा के स्वभाव को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

असुई दु सहावादो, देहो सय पूरण-गलण-सहाविं।
पोग्गलं सोहिदुं हं, असक्को णावसियो कयावि।।428।।

शरीर स्वभाव से अपवित्र है। पुद्‌गल का स्वभाव पूरण व गलन

है। उस पुद्गल को शुद्ध करने में मैं अशक्य हूँ और यह कदापि आवश्यक भी नहीं है।

सरीर-मामयालयं, खीणसहावी जिण्णसहावी वा।
तम्मि देहम्मि णाणी, को रंजदि विम्हरिय अप्पं॥429॥

शरीर रोगों का घर है। यह शरीर क्षीणस्वभावी अथवा जीर्णस्वभावी है। आत्मा को भूलकर कौन ज्ञानी उस देह में रंजायमान होता है? अर्थात् ज्ञानी देह में रंजायमान नहीं होता।

जो देहे अणुरत्तो, रत्तो संसारे सो विसेसेण।
कहं दीह-संसारी, महण्णाणी तह मूढो णो॥430॥

जो देह में अनुरक्त है, संसार में विशेष रूप से आसक्त है तो वह दीर्घसंसारी, महाअज्ञानी और मूर्ख कैसे नहीं है? अर्थात् अवश्य है।

राय-दोसेहि बुड्ढदि, संसारे सुइ-सहावजुत्तप्पा।
रायं दोस-मुज्झिदुं, जो सक्को भावि-सिद्धो सो॥431॥

पवित्र स्वभाव से युक्त आत्मा राग व द्वेष से ही संसार में डूबती है। जो राग व द्वेष का त्याग करने में समर्थ है वही भावी सिद्ध है।

मिच्छत्ताविरदि-जोग-कसाया पमादो आसव-हेदू।
ताण चागेणं विणा, असंभवो आसव-णिरोहो॥432॥

मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय और प्रमाद ये आस्रव के हेतु हैं। उनके त्याग के बिना आस्रव का निरोध असंभव है।

आसवो बंध-हेदू, बंधो संसारभमण-कारणं च।
मुत्तजीवाणं हंदि, होदि एगा णिब्बंध-दसा॥433॥

आस्रव बंध का कारण है और बंध संसार के भ्रमण का कारण है। मुक्त जीवों की ही एक निर्बंध दशा होती है।

जागरिओ भो णाणी! किं सुवसि तुमं विसयकसायेसुं।
जिणसुदमुणि-णिमित्तेण, उवकसेज्ज धम्मं जदणेण॥434॥

अहो ज्ञानी! जागृत होओ, तुम विषय-कषायों में क्यों सोते हो। जीव

यत्नपूर्वक जिनेंद्रदेव, जिनश्रुत व निर्ग्रन्थ गुरुओं के निमित्त से धर्म प्राप्त करता है।

जिणसुदमुणीहिं विणा, को समत्थो पाविदुं जिणधम्मं।
पुण्णुदयेण विणा जिण-सत्थ-साहु-पत्ती असक्का।।435।।

जिनेन्द्रदेव, श्रुत व निर्ग्रन्थ मुनियों के बिना जिनधर्म को प्राप्त करने में कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं। पुण्य के उदय के बिना जिनदेव, शास्त्र व निर्ग्रन्थ साधु की प्राप्ति-संगति अशक्य है।

पढमं करेज्ज मंदं, सग-कसायं विरज्जित्तु विसयादु।
रंजेज्ज परमेट्ठीसु, सुणेज्ज सया जिणसत्थाइं।।436।।

सर्वप्रथम अपनी कषायों को मंद करना चाहिए। विषयों से विरक्त होकर परमेष्ठी के गुणों में रंजायमान होना चाहिए एवं सदैव जिनशास्त्रों को सुनना चाहिए।

महु-पहुदि-पदत्थोव्व दु, मिच्छत्तादी चिय मोहदि जीवं।
ताणं समणेण विणा, असंभवो आसव-णिरोहो।।437।।

मदिरा आदि पदार्थ के समान ही मिथ्यात्व आदि जीव को मोहित कर देते हैं। उनके शमन के बिना आस्रव का निरोध असंभव है।

मोक्खमग्गस्स पहाण-आहारो संवरासवणिरोहो।
णिरुंभिदु-मासवं दिढ-दारं व सम्मत्ताइ-गुणा।।438।।

मोक्षमार्ग का प्रधान आधार आस्रव का निरोध-संवर है। सम्यक्त्व आदि गुण आस्रव को रोकने के लिए दृढ़ कपाट के समान हैं।

सम्मत्तसमिदिगुत्ती, धम्माणुवेक्खा परीसह-जओ य।
संवर-कारणं हु सो, विणा तेहिं रित्त-सिंधूव।।439।।

सम्यक्त्व, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परीषहजय ये संवर के कारण हैं। उन कारणों के बिना वह संवर सूखे समुद्र के समान ही है।

भव-भमण-करंताणं, रक्खा-कवयो संवरो अप्पाण।
संवर-संजुद-अप्पा, सक्केदि य कम्मक्खयेदुं।।440।।

संसार में परिभ्रमण करती हुई आत्माओं के लिए संवर तत्त्व रक्षाकवच है। संवर से युक्त आत्मा ही कर्म क्षय करने में समर्थ होता है।

संवर-जुद-णिज्जरा हि, मोक्खहेदू खलु जिणवरुद्दिट्ठा।
णिज्जरा संवरेणं, विणा ण मोक्खहेदू कया वि॥441॥

संवर से युक्त निर्जरा ही मोक्ष का हेतु है ऐसा जिनेंद्रप्रभु ने उपदिष्ट किया है। संवर के बिना निर्जरा मोक्ष का हेतु कदापि नहीं है।

पुव्वबद्ध कम्माणं, देसेग-सडणं णिज्जरा दुविहा।
सविवागी पडिसमयं, सडणं सव्वसंसारीणं॥442॥

पूर्वबद्ध कर्मों का एकदेश झरना निर्जरा कही जाती है। वह निर्जरा दो प्रकार की है—सविपाकी और अविपाकी। संसारी जीवों के प्रतिसमय कर्म का झरना सविपाकी निर्जरा है।

वदसमिदिगुत्तिजुदाण, हवेज्ज धम्मज्झाणाइ-बलेणं।
कम्म-सडण-मविवागी,णिज्जरा मोक्ख-कारणं चिय॥443॥

व्रत, समिति व गुप्ति से युक्त जीवों के धर्मध्यानादि के बल से कर्मों का झरना अविपाकी निर्जरा कहलाती है जो निश्चय से मोक्ष का कारण है।

मोक्खमग्गीण पढमं, चरणं संवरो णिज्जरा विदियं।
तेहि विणा मोक्खो जह, पंखेहि विणा उड्डणं खे॥444॥

मोक्षमार्गियों का प्रथम चरण संवर है और द्वितीय चरण निर्जरा है। जिस प्रकार पंखों के बिना आकाश में उड़ना संभव नहीं है उसी प्रकार संवर बिना मोक्ष संभव नहीं है।

अविवागी णिज्जरा दु, वदीणं सक्का अव्वदीणं णो।
पउर-णिज्जरं कुणदे, सेणीइ आरूढो जोगी॥445॥

अविपाकी निर्जरा मात्र व्रतियों के ही शक्य है वह अव्रतियों के कदापि शक्य नहीं है। श्रेणी पर आरूढ़ योगी प्रचुर मात्रा में निर्जरा करते हैं।

पुरिसायारो लोओ, णेयो अह-मज्झ-उड्ढ-भेयादो।
मिच्छत्ताइवसेणं, तत्थ भमदि अणाइयालादु।।446।।

ऊर्ध्व, मध्य व अधोलोक के भेद से यह लोक तीन प्रकार का जानना चाहिए। लोक पुरुषाकार है। मिथ्यात्व आदि के वशीभूत होकर जीव अनादिकाल से उस लोक में परिभ्रमण कर रहा है।

तदो कुणसु पुरिसट्ठं, भवी अवहेडिदुं मिच्छत्तादिं।
विणा रयणत्तयेणं, णेव उहट्टेदि भव-भमणं।।447।।

अतः हे भव्य जीव! मिथ्यात्व आदि के त्याग के लिए पुरुषार्थ करो। रत्नत्रय के बिना संसार का परिभ्रमण नष्ट नहीं हो सकता।

अदिसय-पुण्ण-फलंचिय,दुल्लहंमण्णिज्जेदि तिलोयम्मि।
वरं भवभमण-वड्ढग-पुण्णं ण दुल्लहं जीवाण।।448।।

त्रिलोक में अतिशय पुण्य का फल दुर्लभ माना जाता है। किन्तु जीवों के लिए संसार को वृद्धिंगत करने वाला पुण्य दुर्लभ नहीं है।

अइदुल्लहं सुपुण्णं, तं जं दायदि अरिहंताइ-पदं।
सव्वपुण्णे खीणे दु, जीवो पुण लहदि सिद्धत्तं।।449।।

किन्तु वह पुण्य अतिदुर्लभ है जो अरिहंत आदि पद को देता है। पुनः सर्वपुण्य के क्षीण होने पर जीव सिद्धत्व को प्राप्त करता है।

जहवि दुल्लहा लोए, सुगदि-आउ-गोद-देस-संगदी य।
वत्तं सुपुण्णाउं च, सेट्ठ-कुल-बुद्धि-बंधु-आदी।।450।।
ता सव्वा लहिदूण वि, जिणदेव-गंथ-धम्म-णिग्गंथाण।।
लहण-मदिसय-दुल्लहं,अप्पहिदंतहातादोअवि।।451।।(जुम्मं)

यद्यपि अच्छी गति, श्रेष्ठ आयु, उच्च गोत्र, सुदेश, सुसंगति, आरोग्य, पूर्णायु, श्रेष्ठ कुल, बुद्धि व बंधु आदि लोक में दुर्लभ हैं तथापि उन सबको प्राप्त कर जिनदेव, शास्त्र, जिनधर्म व निर्ग्रन्थ गुरुओं का प्राप्त करना अतिशय दुर्लभ है तथा उनसे भी अधिक दुर्लभ आत्महित करना है।

सुसावय-साहु-केवलि-जीवणं उत्तरोत्तर-दुल्लहं च।
अदिसय-दुल्लहाकम्म-खयादुपत्त-सिद्धावत्था।।452।।

श्रावक जीवन, साधु जीवन और केवली जीवन उत्तरोत्तर दुर्लभ है। कर्म के क्षय से प्राप्त सिद्धावस्था अतिशय दुर्लभ है।

जिणधम्मो बेविहो दु, सावय-समण-धम्म-भेयादो वा।
ववहार-णिच्छयाणं, देस-सयलवदाणं णेयो॥453॥

श्रावक धर्म व श्रमण धर्म के भेद से जिनधर्म दो प्रकार का जानना चाहिए अथवा व्यवहार व निश्चय वा एकदेशव्रत व सकलव्रत रूप से जिनधर्म के दो भेद हैं।

देस-अणुव्वद-रूवो, सावयधम्मो देसेगसिवपहो।
ण देसवदी ववहार-णिच्छय-मोक्खमग्गी कयावि॥454॥

देशव्रत या अणुव्रत रूप श्रावक धर्म है। यह एकदेश मोक्षमार्ग कहा जाता है। वह देशव्रती व्यवहार व निश्चय मोक्षमार्गी कदापि नहीं है।

पमादजुदो ववहार-सिवमग्गी महव्वदि-सयलधम्मी।
पमत्तहीणो णिच्छय-मोक्खमग्गी दु मुणेदव्वो॥455॥

सकलव्रतों को धारण करने वाले सकलधर्मी प्रमादयुक्त महाव्रती व्यवहार मोक्षमार्गी जानने चाहिए जबकि प्रमाद से हीन अप्रमत्त महाव्रती निश्चय मोक्षमार्गी जानने चाहिए।

अपुव्वकरणाइ-सत्त-गुणट्ठाण-वत्ती खलु णिग्गंथा।
मोक्खमग्गी दु खवगो, तम्मि भवे हि लहंति मोक्खं॥456॥

अपूर्वकरणादि सात गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ क्षपक मोक्षमार्गी हैं। वे उस ही भव में मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

उवसामगो दु पदिदो कालक्खयादो भवक्खयादो य।
भमेज्ज भवी तहवि अद्ध-पोग्गल-परिवट्टणंतं दु॥457॥

उपशम श्रेणी पर आरूढ़ होने वाले उपशामक कालक्षय या भव क्षय से पतित होते हैं। वे भव्य अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल तक भी संसार में परिभ्रमण कर सकते हैं।

एयभवे बे-वारं, संपुण्णेसुं चढिदुं चउवारं।
खवगसेणिं णो कोवि, विदिय-वारं दु आरोहेदि।।458।।

जीव एक भव में दो बार व मोक्ष पर्यन्त संपूर्ण भवों में चार बार ही उपशम श्रेणी चढ़ सकता है। तथा कोई भी जीव दूसरी बार क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ता। क्षपक श्रेणी का आरोहक नियम से उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है।

मुणिवर-विज्जाणंदो, इमाओ अणुवेक्खाओ चिंतीअ।
पढावीअ भव्वासग-वर-कल्लाण-पह-थिरिमाए।।459।।

श्री विद्यानंदजी मुनिराज इन बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया करते थे एवं स्व व पर के कल्याण-पथ की स्थिरता के लिए भव्यजनों को पढ़ाया भी करते थे।

वस्सम्मि उणवीस-सय-अट्ठहत्तरम्मि तदा ढिल्लीए।
उवज्झाय-सण्णिहीइ,महावीर-सुमरदि-चिण्हस्स।।460।।
पहाणमंति-मोरार-देसाइणा दु आहार-सिलाए।
संठावणा किदा विड्ढीइ अहिंसा-भावणाए।।461।। (जुम्मं)

26 जनवरी 1978 में दिल्ली में उपाध्याय श्री विद्यानंदजी की सन्निधि में प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने अहिंसा की भावना की वृद्धि के लिए (धौलाकुआँ के निकट) महावीर स्मारक के आधारशिला की स्थापना की।

सड्ढाए विणा धम्म-पालण-मसंभवो देसाइणा दु।
कहिदं महावीरेण, धम्मस्स सव्वायारिदा दु॥462॥

इस अवसर पर प्रधानमंत्री श्री मोरारजी जी देसाई ने कहा कि श्रद्धा के बिना धर्म का पालन असंभव होता है। भगवान् महावीर स्वामी ने धर्म के लिए सभी का आह्वान किया।

कहिदं पाढगेण-मप्पसंजमेण सह विवेगावसियो।
कुरीदी णिसेहिदा य, उवदिसिदं सुकल्लाणत्थं॥463॥

उपाध्यायश्री ने अपने प्रवचनों में कहा कि आत्मसंयम के साथ विवेक आवश्यक है। उन्होंने समाज में प्रविष्ट अनेक कुरीतियों का निषेध किया एवं सभी के कल्याण के लिए उपदेश दिया।

सहस्सद्द-उच्छवस्स, तिवस्स-पुव्वे आगच्छीअ तत्थ।
कण्णाड-मुक्खमंती, संसदो तह केंदिय-मंती॥464॥
कण्णाडं आगमिदुं, पत्थिदुं दुसय-जणा कण्णाडादु।
वीरेंद-हेगडेचारुकित्ति-आइभड्डारयावि॥465॥(जुम्मं)

श्रवणबेलगोल के सहस्राब्दि महोत्सव के तीन वर्ष पूर्व (1977 में) ही कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री देवराज अरस, दिल्ली के सांसद श्री जे.के. जैन और केन्द्रीय मंत्री वी. शंकरानंद जी, उपाध्यायश्री के चरणों में कर्नाटक आने की प्रार्थना करने के लिए आए। पश्चात्

कर्नाटक से दो सौ लोग, धर्मस्थल के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी व श्रवणबेलगोल क्षेत्र के भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी और अन्य मठों के भट्टारकों ने भी मुनिराज को कर्नाटक आने के लिए प्रार्थना की।

पच्छा महुच्छवस्स दु, देज्ज णिय-अणुमदिं विज्जाणंदो।
सव्वा दु बहु-पसण्णा, वड्ढंत-उच्छाहेणं सह।।466।।

पश्चात् प्रतिनिधि मंडल की प्रार्थना स्वीकार करते हुए उपाध्याय श्री विद्यानंदजी ने महोत्सव के लिए अपनी अनुमति प्रदान की। उपाध्यायश्री के स्वीकृति प्रदान करते ही बढ़ते हुए उत्साह के साथ सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए।

महावीर-जयंदीइ, सावया पहुच्चीअ सुइपव्वम्मि।
मंति-इंदिरा-णियडे, कज्जकमस्स णिमंतेदुं दु।।467।।

उसी वर्ष महावीर जयंती के पावन पर्व पर कार्यक्रम के लिए निमंत्रण देने के लिए जैन श्रावक श्रीमती इंदिरागांधी के समीप पहुँचे।

किं मुणि-विज्जाणंदो, आविस्सेदि दु तस्सिं कज्जकमे।
रत्तीए कज्जकमो, किण्णु णियड-धम्मसालाए।।468।।
मुणीवरो उवट्ठिदो, दंसण-ववत्था सुविहाजणगा दु।
दियंबरो मुणी णेव, संचरदि अयारणं णिसीइ।।469।। (जुम्मं)

श्रीमती इंदिरागांधी जी ने चर्चा के बीच में पूछा कि क्या मुनिश्री विद्यानंदजी भी उस कार्यक्रम में पधारेंगे? उन लोगों ने उत्तर दिया कि यह कार्यक्रम तो रात्रि में है और रात्रि में मुनिश्री किसी कार्यक्रम में उपस्थित नहीं होते किन्तु कार्यक्रम स्थल के निकट की जैन धर्मशाला में ही मुनिवर उपस्थित हैं, वहाँ पर मुनि के दर्शनों की व्यवस्था सुविधाजनक होगी। अहो! दिगंबर मुनि रात्रि में अकारण संचरण नहीं करते।

सायं सत्तवायणे, पहुच्चीअ सा मुणि-दंसणत्थं दु।
एगासीदीइ महा-मत्थगाहिसेगे आवेज्ज।।470।।

शाम के समय सात बजे वे मुनिराज के दर्शन के लिए पहुँचीं। वार्ता के मध्य आचार्यश्री ने 1981 में महामस्तकाभिषेक व सहस्राब्दि महोत्सव में आने को कहा।

विशेषार्थ—जब प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी श्रीविद्यानंदजी के दर्शनार्थ आयीं तब उनके साथ उस समय प्रसिद्ध सेविका निर्मलाताई देशपांडे थीं। इसके अतिरिक्त और कोई साथ में नहीं था। दोनों को आशीर्वाद देकर मुनिश्री ने श्रवणबेलगोल के महामस्तकाभिषेक में जाने के विषय में बताया और उनसे भी आने को कहा।

भासिदं मुणिणा तदा, असंभवो मुणी उत्तरे कहीअ।
हं कारागहे होज्ज, पुणो कहीअ णो तत्थ तुमं।।471।।

जब मुनिराज ने ऐसा कहा तब श्रीमती इंदिराजी ने उत्तर में कहा—मुनिश्री! यह तो असंभव है, मैं तो उस समय जेल में रहूँगी। मुनिश्री ने पुनः कहा कि नहीं आप जेल में नहीं होंगी।

सहस्सद्दि-मुच्छवस्स, सव्ववयस्स दायित्तं हु तुमम्मि।
तुमंअविजयीहोज्जा,भयवद-बाहुबली-सामीव।।472।।

संकल्प कीजिए कि भगवान् बाहुबली की प्रतिमा के सहस्राब्दी महोत्सव के सर्व व्यय का दायित्व आप पर होगा। जिस प्रकार भगवान् बाहुबली स्वामी ने चक्रवर्ती को जीता था उसी प्रकार आप भी विजयी होंगी।

भविस्सवाणी सफला, मज्झावहि-णिव्वायणे जयी सा।
होज्ज देसस्स पहाणमंती पुण्ण-बहुमदेणं दु॥473॥

उपाध्यायश्री की भविष्यवाणी सफल हुई। सांसद भंग हुई और मध्यावधि चुनाव हुए जिसमें वे विजयी हुई। पूर्ण बहुमत के साथ श्रीमती इंदिरा गांधी जी देश की प्रधानमंत्री बनीं।

विणयंजली अप्पिदा, बेलगोलाए बाहुबलि-पदेसु।
तिदिणंतं ठाएज्जा, तत्थ अइ-सद्धा-भत्तीए॥474॥

श्रीमती इंदिरा जी ने श्रवणबेलगोला में बाहुबली स्वामी के चरणों में विनयांजलि अर्पित की। वे वहाँ तीन दिनों तक श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ठहरीं।

विशेषार्थ—इस सहस्राब्दी उत्सव और महामस्तकाभिषेक के समारोह में कर्नाटक सरकार व केन्द्रीय सरकार के सहयोग से 12 करोड़ रुपये खर्च किए गए।

वीसमसदीए पढम-एलाइरियो

(20वीं शताब्दी के प्रथम एलाचार्य)

सत्तरस-णवंबरम्मि, उणवीससय-अट्ठहत्तरवस्से।
गंधी-परिसरे पदिट्ठिदो एलाइरियपदे सो॥475॥

17 नवंबर 1978 में गांधी ग्राउण्ड में उपाध्याय श्री को एलाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

कुंदकुंदभारदीइ, सासण-पत्त-भूमीए सुद्धी य।
आहार-सिला-ठवणा,होज्जतदामुणि-सण्णिहीए॥476॥

दिल्ली से श्रवणबेलगोला की ओर विहार करने से पूर्व एलाचार्यश्री के पावन सान्निध्य में कुंदकुंद भारती के लिए शासन (डी.डी.ए.) से प्राप्त भूमि की शुद्धि और आधार-शिला स्थापना अर्थात् शिलान्यास हुआ।

उणवीसणवंबरम्मि, उणवीससय-अट्ठहत्तरवस्से।
सवणबेलगोलाए, पारब्भो मंगलविहारो॥477॥

19 नवंबर 1978 को एलाचार्यश्री का मंगल विहार श्रवणबेलगोला के लिए प्रारंभ हुआ।

जणगपुरि-जइण-मंदिर-आहारसिलाठवणा ढिल्लीए।
होज्ज मुणि-सण्णिहीए, अच्चंत-उल्लासुमंगेहि॥478॥

विहार करते हुए एलाचार्यश्री के पावन सान्निध्य में अत्यंत उल्लास व उमंग से दिल्ली में जनकपुरी जैन मंदिर का शिलान्यास संपन्न हुआ।

चित्तोडगढे करिदं, अट्ठसयवस्स-पाईण-जइणस्स।
दंसणं दियंबर-कित्ति-थंभस्स एलाइरियेण॥479॥

एलाचार्यश्री जयपुर, कोटड़ी, भीलवाड़ा और हमीरगढ़ होते हुए चित्तौड़गढ़ पहुँचे। वहाँ चित्तौड़गढ़ में एलाचार्यश्री ने 19 मई को 800 वर्ष प्राचीन दिगंबर जैन कीर्ति स्तंभ का अवलोकन किया।

महावीर-जिणालये, कलसारोहणं कुव्विदं मुणिस्स।
मज्झपदेस-पवेसो, पेरणाए मई-अंतम्मि।।480।।

कीर्तिस्तंभ के समीप स्थित महावीर जिनालय पर कलशारोहण उन्हीं की प्रेरणा से किया गया। मई के अन्तिम सप्ताह में एलाचार्यश्री का मध्यप्रदेश की सीमा में प्रवेश हुआ।

छम्मासाहिय-यालो, मज्झ-पदेसे जविदं मुणिंदेण।
इंदोरे चउमासो, विदियवार-मइ-पहावणाइ।।481।।

मुनिश्री ने 6 माह से अधिक समय मध्यप्रदेश में व्यतीत किया। इंदौर में एलाचार्यश्री का दूसरी बार चातुर्मास अत्यंत प्रभावनापूर्वक संपन्न हुआ।

चीफ जस्टिस श्री लोढ़ा जी व साथ में विश्व धर्म सम्मेलन के जनरल सेकेट्री मेजर जनरल उबान सिंह

णायगर-अहिवत्ताण, वक्खाणं दायिदं मुणिंदेणं।
भूसिदं समायेणं, सिद्धंत-चक्कि-उवाहीए।।482।।

इंदौर बार एसोसिएशन द्वारा आयोजित सभा में एलाचार्यश्री ने न्यायाधीशों और वकीलों के लिए व्याख्यान दिया, उन्हें संबोधित किया। इंदौर के इसी चातुर्मास में एलाचार्यश्री को समाज के द्वारा सिद्धांत चक्रवर्ती की उपाधि से विभूषित किया गया।

मज्झपदेसस्स मुक्ख-मंतिणा घोसिदं णिम्मावेदुं।
मज्झपदेस-भवणं दु, तित्थ-सवणबेलगोलाए।।483।।

इसी सभा में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री ने तीर्थ श्रवणबेलगोला में मध्यप्रदेश भवन निर्माण के लिए घोषणा की।

उणवीससयतिहत्तर-वस्सम्मि य विज्जाणंद-णिलयस्स।
आहारसिला-ठविदा, तित्थ-सवणबेलगोलाए।।484।।

8 वर्ष पूर्व ही सहस्राब्दी महोत्सव और महामस्तकाभिषेक की तैयारियाँ प्रारंभ हो गई थीं। 3 अगस्त 1973 में ही श्रवणबेलगोला में चारुकीर्ति जी के सान्निध्य में विद्यानंद निलय की आधारशिला स्थापित की गई थी।

सासण-साउज्जेणं, मुणि-मग्ग-णिद्देसणे सण्णिहीइ।
दक्खिण-भट्टारगाण, वीरेंद-धम्माहिगारिस्स।।485।।
महुच्छव-अज्झक्ख-सेयंस-पसादस्स हीराचंदस्स।
पंचसय-पदिणिहीणं, देसस्स होज्ज उवट्ठिदीइ।।486।।
विआरो वित्थारेण, बे-दिणंतं महुच्छव-जोयणासु।
इंदोर-समायस्स दु, णिवेदिदं सिट्ठ-मंडलेण।।487।।
उत्तर-भारदम्मि भो सामी! विसाल-पडिमा-ठावणा दु।
होज्ज गोमडदेवोव्व, दायिदा तदासी समणेण।।488।। (चउक्कं)

गोम्मटेश्वर प्रतिमा के निर्माण को 1000 वर्ष पूर्ण हो जाने पर शासन (कर्नाटक सरकार) के सहयोग से एलाचार्यश्री के मार्ग निर्देशन व सान्निध्य में दक्षिण भारत के भट्टारकों, धर्माधिकारी वीरेन्द्र हेगडे, महोत्सव समिति के अध्यक्ष साहू श्री श्रेयांस प्रसाद जी, तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष श्री लालचंद हीराचंद दोशी जी व देश के लगभग 500 प्रतिनिधियों की उपस्थिति में दो दिन तक महोत्सव की योजनाओं पर विस्तार से विचार-विमर्श हुआ। तब उस समय इंदौर समाज के शिष्ट मंडल ने एलाचार्य जी से निवेदन किया कि हे स्वामी! गोम्मटेश बाहुबली के समान एक विशाल प्रतिमा की स्थापना उत्तर भारत में भी हो। तब एलाचार्य जी ने अपना आशीष उन्हें प्रदान किया।

चूलगिरिं पहुच्चित्तु, पस्सित्ता आदिपडिमा-जिण्णं दु।
जागरिदो दु समायो, तेण तित्थखेत्त-विगासस्स॥489॥
मुणिवर-णिद्देसेणं, कराविदो हु जिण्णुद्धारो तत्थ।
विसालायोजणं चिय, होज्ज तत्थ अविम्हरणीयं॥490॥(जुम्मं)

(पुनः समाज का अत्यधिक अनुरोध देखकर एलाचार्यश्री बड़वानी की ओर गतिमान हुए।) चूलगिरी पहुँचकर विश्व की उत्तुंग 84 फुट श्री आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा को जीर्ण देखकर उन्होंने समाज को जागृत किया। तीर्थक्षेत्र के विकास के लिए मुनिराज के निर्देश से प्रतिमा का जीर्णोद्धार कराया गया। पश्चात् वहाँ एक विशाल अविस्मरणीय आयोजन हुआ।

पुण विहरंतो समणो, मुंबई-पोदणपुरं पहुच्चीअ।
विसाल-जण-समुदायो, एलाइरिय-पवेसे तत्थ॥491॥

पुनः वहाँ से विहार करते हुए श्रमणराज पोदनपुर मुंबई में पहुँचे। वहाँ एलाचार्यश्री के प्रवेश में विशाल जनसमुदाय एकत्रित हुआ।

तत्थ जदि-पवयणेहिं, महाणयरीइ दो-सत्तगंतं।
महइ-धम्मपहावणा, लक्ख-जइण-जइणेदरेसुं॥492॥

वहाँ पूज्य यतिराज के प्रवचनों से महानगरों में दो सप्ताह तक लाखों जैन-जैनतरों के मध्य जिनशासन की महती प्रभावना हुई।

विशेषार्थ–एलाचार्यश्री के किसी भी कार्यक्रम में डॉ. नेमिचंद्र जैन इंदौर का भी विशेष सहयोग प्राप्त होता रहता था।

चउपाडि-खेत्ते तस्स, पवयणम्मि अदिसय-जण-समुदायो।
संगच्छिदा अहिंसा, मुणि-दंसणाइ सिक्खादीहि॥493॥

मुंबई में चौपाटी में 14 से 19 फरवरी, 1980 में एलाचार्यश्री के प्रवचन चले। चौपाटी में उनके प्रवचन में अतिशय जन सैलाब उमड़कर आता था। मुनिश्री के दर्शन से ही सिक्ख आदि लोगों ने अहिंसा धर्म स्वीकार किया और जीवनभर के लिए मांसाहार आदि का त्याग कर दिया।

होज्ज सायर-सम्मुहे, पवयणं माणव-विस्सधम्मेसुं।
णिरुत्तर-पत्तगारा, करिदा पत्तसम्मेलणम्मि॥494॥

पूज्य एलाचार्यश्री के प्रवचन समुद्र के सामने ही मानव विश्वधर्म पर हुआ करते थे। पूरी मुंबई विद्यानंदमय हो गई। महानगर के लोग अधीर हो होकर प्रवचनों में वा दर्शन के लिए पहुँच रहे थे। वहाँ पर एक पत्रकार सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें एलाचार्यश्री ने सभी पत्रकारों को निरुत्तर कर दिया।

कण्णाडं गच्छंतो, अणेग-गाम-णयर-महाणयरेसु।
सुधम्मसहायोजिदा, वर-सागदं ठाणे ठाणे॥495॥

कर्नाटक जाते हुए अनेक ग्राम, नगर, महानगरों में एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का श्रेष्ठ स्वागत हुआ और स्थान-स्थान पर धर्मसभा आयोजित की गई।

चउदस-फरवरीदु पण-वीसंतं बंबई-पवासो पुण।
विहरीअ बेलगामं, पडि पहुच्चीअ तदा हि पुणे॥496॥

14 फरवरी से 25 फरवरी तक एलाचार्यश्री का मुंबई में अविस्मरणीय धर्मप्रभावना के साथ गरिमामयी अल्पप्रवास रहा। पुनः 25 फरवरी

को बेलगाम की ओर विहार हुआ। विहार करते हुए एलाचार्यश्री पुणे पहुँचे। (पुणे में भव्य स्वागत-प्रवेश व प्रवचन के उपरांत सतारा, कराड व शिरोली होते हुए कोल्हापुर पहुँचे।)

कोल्हापुरे ठाएज्ज, सत्तगेगस्स एलाइरियो तत्थ।
पवयणे सहस्सजणा, आवीअ दु गाम-गामादो।।497।।

एलाचार्यश्री एक सप्ताह के लिए कोल्हापुर में ठहरे। वहाँ उनके प्रवचन में गाँव-गाँव से हजारों- हजारों की संख्या में लोग आया करते थे।

सत्तदसवस्स-पच्छा, आवीअ दक्खिणे एलाइरियो।
मंदिरेसु मठेसु महरट्ठे होज्जा पवयणादी।।498।।

उत्तर भारत में 17 वर्षों तक धर्म-प्रभावना करने के पश्चात् अब एलाचार्यश्री दक्षिण भारत में आ रहे थे। महाराष्ट्र में मंदिरों और मठों में स्थान-स्थान पर उनके प्रवचनादि कार्यक्रम हुए।

चउदसप्पेल-असीदि-वस्से महलच्छि-मंदिर-पंगणे।
विसेस-पवयणंहोज्ज,पढमावसरेजइण-मुणिस्स।।499।।

संस्था के विशेष अनुरोध पर 14 अप्रैल 1980 को एलाचार्यश्री के कोल्हापुर के हिंदू देवालय महालक्ष्मी मंदिर के प्रांगण में विशेष प्रवचन हुए। पहली बार इस परिसर में किन्हीं जैन मुनि का प्रवचन हुआ था।

सिवाविज्जापीठेण,हवेज्जसिवा-जयंदि-उवलक्खम्मि।
मुणिवर-पवयणं सिवा-जोगदाणे रायणीदीइ।।500।।

कोल्हापुर के शिवाजी विद्यापीठ द्वारा शिवाजी जयंती के उपलक्ष्य में 16 अप्रैल को मुनिश्री के प्रवचन आयोजित किए गए। 'राजनीति में छत्रपति शिवाजी महाराज का योगदान' विषय पर मुनिराज का प्रवचन हुआ।

मरहट्ठ-भासाए हु, दायिद-पवयणं सहस्सजणेहिं।
सुणिदं दु धम्मभारदि-केंद-साहा ठाविदा तेण॥501॥

पूज्य श्री ने मराठी भाषा में प्रवचन दिए। हजारों लोगों ने मराठी भाषा के इस प्रवचन को बहुत आनंद के साथ सुना। आचार्य रत्न देशभूषण शिक्षण प्रसारक मंडल द्वारा संचालित इस संस्था में सभी धर्मों के अध्ययन एवं शोधकर्त्ताओं के लिए स्थापित धर्मभारती केंद्र की विशेष शाखा एलाचार्यश्री ने यहाँ स्थापित की।

एलाइरियो विज्जाणंद-सक्किदिग-भवणं सुहणामो।
णवविणिम्मिद-भवणस्स, लोयकल्लाणकारगस्स दु॥502॥

इस केन्द्र में लोककल्याण-कारक इस नवनिर्मित श्रेष्ठ भवन का शुभ नाम एलाचार्य विद्यानंद सांस्कृतिक भवन रखा गया।

विशेषार्थ-इस प्रकार कोल्हापुर जैसे सांस्कृतिक नगर में आधुनिक शास्त्रीय पद्धति से अध्ययन व संशोधन का कार्य प्रारंभ हो गया।

कुंभोज-बाहुबलिं च, पहुच्चीअ एलाइरियो विणदो।
दंसणत्थं साहुस्स, वयोवुड्ढ-समंतभद्दस्स॥503॥

विनय भावों से युक्त एलाचार्यश्री वयोवृद्ध साधु श्री समंतभद्र मुनिराज के दर्शन के लिए कुंभोज बाहुबली पहुँचे।

बेलगामे पवेसो, एयारस-मई-असीदिवासम्मि।
सागदं तत्थ भव्वं, समणस्स चायगोव्व जणेहि॥504॥

वहाँ कुछ समय बिताकर 11 मई 1980 को एलाचार्यश्री का बेलगाँव में प्रवेश हुआ। वहाँ चातक के समान भक्त लोगों ने श्रमणराज का भव्य स्वागत किया।

चारुकित्ति-भट्टारग-अण्ण-भट्टारग-मुक्खमंतीहिं।
सव्वेहि सागदं करिदं मुणिस्स वज्ज-उलूलूहि सह॥505॥

कर्नाटक की सीमा पर चारुकीर्ति भट्टारक जी अन्य दूसरे मठों के भट्टारक व तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गुंडुराव व अन्य सभी ने वाद्य की मंगल ध्वनि के साथ भक्तिपूर्वक मुनिराज का शानदार स्वागत किया।

णववहूव सुसज्जिदे, बेलगामम्मि णयणाहिरामा दु।
पवेसो सोहजत्ता, उसपहावणा पढमवारं।।506।।

नववधू के समान सुसज्जित बेलगाँव में एलाचार्यश्री का प्रवेश, शोभायात्रा सब कुछ नयनाभिराम था। बेलगाँव में पहली बार ऐसी धर्म प्रभावना हुई थी।

सवणबेलगोलाए, एगद्ध-कोस-पुव्वे ठाएज्जा।
केंदीय-मंती पहुच्चीअ सीमाए सागदस्स।।507।।

एलाचार्यश्री श्रवणबेलगोला से लगभग 1.5 कोस पहले रुके थे। वहीं नगर सीमा पर एलाचार्यश्री के स्वागत के लिए केन्द्रीय मंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी जी पहुँचे।

एलाइरिय-संघेण, जत्ताए सह पविसिदं णयरीइ।
तत्थ सेदवत्थेसुं, विज्जापीठ-बंभयारी दु।।508।।

कलसेहिं सह णारी, विसाल-जणजूहो मंगलवज्जं।
केसरियावत्थेसुं, भट्टारगा य विदूहिं सह।।509।। (जुम्मं)

एलाचार्यश्री ससंघ ने भव्य शोभायात्रा के साथ नगरी में प्रवेश किया। (नगर के बाहर लगभग 2 कि.मी. पर 'श्रमण-महाद्वार' नामक एक सुंदर द्वार बनाया गया था।) वहीं श्वेत वस्त्रों में विद्यापीठ के ब्रह्मचारी द्वार पर सबसे आगे उपस्थित थे। मंगल कलशों के साथ नारी, विशाल जनसमूह, मंगल वाद्य, विद्वानों के साथ केसरिया वस्त्रों में भट्टारक उपस्थित थे।

पुण्णो-कुंभो अग्गे, इमाए दिव्व-सोहा-जत्ताए।
वंदिदो दारे मुणी, पदिट्ठिदेहि सहस्सजणेहि।।510।।

इस दिव्य शोभायात्रा में पूर्ण कुंभ की पालकी सबसे आगे थी। प्रतिष्ठित हजारों लोगों ने द्वार पर मुनिराज की वंदना की।

विशेषार्थ–सर्वप्रथम चारूकीर्ति भट्टारक जी ने एलाचार्यश्री की वंदना की। इसके पश्चात् कोल्हापुर, नरसिंहराजपुरा और मूडबद्री के भट्टारक जी और धर्मस्थल के श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी ने एलाचार्यश्री को नमन किया। पुनः स्वागत समारोह के मुख्य अतिथि केन्द्रीय मंत्री श्री प्रकाशचंद सेठी, संसद सदस्य श्री नन्जे गौड़ा एवं श्री जे. के जैन, कर्नाटक के सहकारिता मंत्री श्री ए.बी. जखनूर, स्थानीय विधायक श्री एच. सी. कंठैया आदि ने एलाचार्यश्री जी की वंदना की। महोत्सव समिति के अध्यक्ष साहू श्रेयांस प्रसाद जी भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष सेठ लालचंद हीराचंद आदि अनेक श्रेष्ठियों व हजारों नागरिकों ने मुनिश्री का स्वागत किया। 1.5 घंटे की भव्य शोभायात्रा के बाद 'प्रवचन मण्डप' में यात्रा पहुँची।

अपार-जणसमूहो दु, कज्जकमम्मि विउल-भत्ताण तहा।
सूचेज्ज धम्मसहाइ, कहिदं चारु-भट्टारगेण।।511।।

उस अपार जनसमूह व उनके उत्साह को देखकर भट्टारक चारुकीर्ति जी ने विनम्र शब्दों में एलाचार्यश्री स्तुति करते हुए कहा कि इस धर्मसभा में यह विशाल भक्तों का समूह होने वाले महा-मस्तकाभिषेक के कार्यक्रम में अपार जनसमूह की पूर्व सूचना दे रहा है।

सत्तावीस-जुलाई-उणवीससयअसीदि-सणे ठविदो।
चउमासो तत्थ धम्म-पहावगेलाइरियेणं दु।।512।।

27 जुलाई 1980 में धर्म प्रभावक एलाचार्यश्री ने वहाँ श्रवणबेलगोला में चातुर्मास की स्थापना की।

विशेषार्थ–एलाचार्यश्री के चातुर्मास के अवसर पर विभिन्न राज्यों से श्रेष्ठीगण पधारे। महामस्तकाभिषेक के विधिवत् कार्यक्रम के संचालन

हेतु कई उपसमितियों का गठन किया गया। देश में आबाल-वृद्ध सभी में महामस्तकाभिषेक की नवीन चेतना जागृत हो गई।

महुच्छवुग्घाडो णव-फरवरी-एगअसीदि-वस्सम्मि य।
अण्ण-केंदिय-मंतीहि, मुक्खमंतिणा कण्णाडस्स॥513॥

9 फरवरी 1981 को गोमटेश बाहुबली भगवान सहस्राब्दी महोत्सव व महामस्तकाभिषेक महोत्सव का उद्‌घाटन हुआ। वह उद्‌घाटन कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री आर. गुण्डूराव-श्रीमती वरलक्ष्मी गुण्डूराव, अन्य केन्द्रीय मंत्री, केन्द्रीय संचारमंत्री श्री सी.एम. स्टीफन और कर्नाटक के सहकारिता मंत्री श्री एच.सी. श्री कण्ठैया के माध्यम से हुआ।

कहिदं मुक्खमंतिणा, अहिंसा णिस्संगो य उवजोगी।
पह-दंसगसिद्धंतो, पुण्ण-माणव-जादीए चिय॥514॥

मुख्यमंत्री जी ने गोम्मटेश्वर प्रभु के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित कर महोत्सव का उद्‌घाटन किया और कहा कि बाहुबली भगवान द्वारा प्रदत्त यह अहिंसा व अपरिग्रह संपूर्ण मानव जाति के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत है व अत्यंत उपयोगी है।

पुण्णदेस-महुच्छवो, णेव मेत्तं धम्म-जादि-एगस्स।
जइणायाराहारिद-पेम्म-सुभावावसियो जगे॥515॥

यह ऐतिहासिक महोत्सव केवल एक धर्म या जाति का नहीं है अपितु संपूर्ण देश का है। जैन आचार पर आधारित प्रेम और सद्भाव विश्व में अत्यंत आवश्यक है।

पण्णासम-दिक्खा-दिण-उच्छवायरणंकुणीअहरिसेण।
छहत्तरि-आउग-सिरी-देस-भूसणस्स सहाए दु॥516॥

इस महोत्सव में भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज चौथी बार महामस्तकाभिषेक में पधारे थे। इस समय उनकी आयु लगभग 76 वर्ष की थी। सभा में हर्षपूर्वक उनका 50वाँ दीक्षा दिवस मनाया गया।

सड्ढापत्त-मप्पिदं, पोसिय सम्मत्त-चूडामणी तं।
सिद्धंत-चक्की तेण, भासिदो दु विज्जाणंदस्स॥517॥

इस समारोह में इनकी ख्याति एक अन्तर्राष्ट्रीय संत के रूप में सामने आयी। आचार्यश्री को 'सम्यक्त्व चूड़ामणि' घोषित कर समस्त जैन समाज की ओर से उन्हें श्रद्धा-पत्र समर्पित किया गया। पूरी सभा उनके जय-जयकारों से गूंज उठी। इंदौर में मुनिवरश्री को 'सिद्धान्त चक्रवर्ती' की उपाधि समाज द्वारा प्रदान की गई थी। आचार्यश्री ने एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के लिए उस सिद्धांत चक्रवर्ती उपाधि की पुष्टि की।

महामहुच्छवस्स जण-मंगलकलसो वट्टिदो देसम्मि।
सिदंबर-असीदीए, पहाणमंतिणा आढविदो॥518॥

इस बड़े महोत्सव के लिए एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा व मार्गदर्शन पग-पग पर मिला। उन्हीं की प्रेरणा से पूरे देश में जनमंगल महाकलश प्रवर्तित हुआ। 29 सितंबर 1980 में इस कलश का शुभारंभ देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधीजी के द्वारा हुआ था।

वीसफरवरीइ पत्त-कलसस्स धणुवजोगो कज्जेसुं।
जणकल्लाणस्स तत्थ, घोसिदं एलाइरियेणं॥519॥

यह जनमंगल महाकलश 20 फरवरी 1981 को श्रवणबेलगोला पहुँचा। वहाँ एलाचार्य श्री ने घोषणा की कि इस कलश से प्राप्त धन का उपयोग जनकल्याण के लिए किया जाएगा।

आजीविगाइ सीवण-जंताणि गो देज्ज णारी-णराण।
ओसहि-चिगिच्छय-सिक्खसाला ठाविदा अदिहिगिहा।।520।।

गरीबों को रोजगार देने की योजनाएँ बनने लगीं। आजीविका के लिए नारियों को सिलाई मशीनें और पुरुषों को गायें दीं। एलाचार्यश्री के मार्गदर्शन से औषधालय, चिकित्सालय, अतिथि गृह एवं शिक्षाशालाएँ-शिक्षा के केन्द्र स्थापित किये गए।

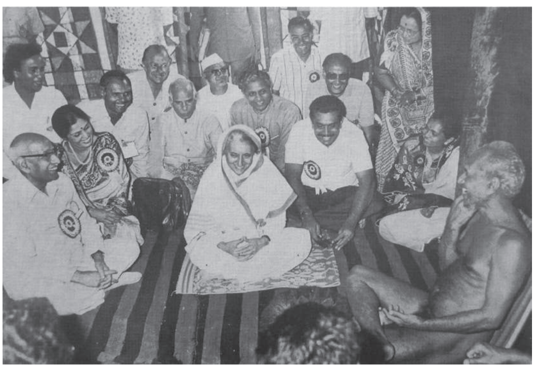

श्रवणेबेळगोल में माननीया प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जी

इगवीस-फरवरीए महाहिसेग-उग्घाडणं करिदं।
इंदिराइ सुमविट्ठी, उद्धाडिगाइ गोम्मटेसे।।521।।

22 फरवरी 1981 से प्रारंभ होने वाले महामस्तकाभिषेक का उद्घाटन 21 फरवरी को श्रीमती इंदिरागांधीजी ने किया। उन्होंने गोम्मटेश बाहुबली भगवान् पर हेलीकॉप्टर से सुमनों की वृष्टि की।

गोम्मडेसं अप्पिदुं, दायिदं णारीएलं सामिस्स।
गंधीए भत्तीए, आढविदं संभासणं पुण।।522।।

श्रीमती इंदिरा गांधी जी अपने साथ रजत नारियल लायी थीं। उन्होंने यह नारियल गोमटेश बाहुबली भगवान् को अर्पित करने के लिए

स्वामीजी को दिया। पुनः श्रीमती गाँधीजी ने भक्तिपूर्वक अपना भाषण प्रारंभ किया।

भारददेस-विआसो, जइणधम्मस्स उच्चायंसेहिं।
ण मेत्तं धम्मखेत्ते, णवरि साहित्त-कलादीसु वि॥523॥

साधुओं का वंदन-अभिनंदन कर उन्होंने कहा कि जैन धर्म के उच्च आदर्शों से ही भारत देश का विकास है। जैन धर्म के इन आदर्शों से मात्र धर्मक्षेत्र में ही नहीं अपितु साहित्य, कला आदि के क्षेत्र में भी विकास है।

सुसत्ति-सुंदरिमाए, पदीग-बाहुबलि-मुत्ती अवसरो य।
दिट्ठंतो भारदस्स, पाईण-सुह-परंपराए॥524॥

गोम्मटेश बाहुबली भगवान् की यह मूर्ति शक्ति और सौंदर्य का प्रतीक है। यह अवसर भारत की प्राचीन शुभ परंपरा का एक उदाहरण है।

पंचामिय-अहिसेगो, अट्ठोत्तरसहस्सणीर-कलसेहि।
करिदो सुमविट्ठी संतीधारा आरदी पच्छा॥525॥

22 फरवरी का नजारा बिल्कुल अलग था। दूर-दूर तक लोग ही लोग दिखाई दे रहे थे। पहले 1008 कलशों से अभिषेक हुआ, पंचामृत अभिषेक हुआ, पुनः पुष्पवृष्टि एवं शांतिधारा पश्चात् आरती की गई।

बावीस फरवरीए, अहिलासा पगडिदा गहिदुं ताइ।
जिणाहिसेगं तदा हि, पहुच्चाविदं हंदि ढिल्लिं॥526॥

22 फरवरी को ही समाचार प्राप्त हुआ कि श्रीमती इंदिरा जी ने जिनाभिषेक को ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की है। तब ही वह गंधोदक दिल्ली पहुँचाया गया।

विज्जंत-पुण्णवंता, दूरदंसणेण विस्से पस्सीअ।
जिण-बाहुबलिस्स महा-हिसेगं पुण्णं अज्जेदुं॥527॥

विश्व में विद्यमान सभी पुण्यवानों ने पुण्यार्जन के लिए श्री बाहुबली जिनदेव का महामस्तकाभिषेक दूरदर्शन के माध्यम से देखा।

वस्से बासीदीए, पदिट्ठिदा णव-बाहुबली पडिमा।
महामत्थगहिसेगो, धम्मत्थले मुणि-सण्णिहीइ।।528।।

अनंतर सन् 1982 में एलाचार्यश्री जी की शुभ सन्निधि में धर्मस्थल में भगवान् बाहुबली की नवीन प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई एवं महामस्तकाभिषेक भी संपन्न हुआ।

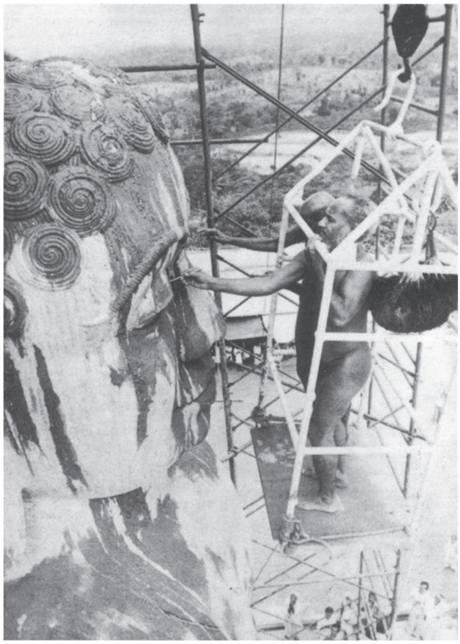

पणवीस-जणवरीदो, जिणपदिट्ठा चउफरवरी-अंतं।
करिदं मंतण्णासं, विमलसिंधु-विज्जाणंदेहि।।529।।

25 जनवरी से 4 फरवरी तक जिनप्रभु का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव संपन्न हुआ। आचार्यश्री विमलसागर जी मुनिराज एवं एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने प्रतिमा पर मंत्रन्यास किया।

विशेषार्थ–बाद में तुरई के जयघोष के साथ महामस्तकाभिषेक प्रारंभ हुआ। दोपहर में धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी एवं प्रतिमा की प्रेरणादात्री श्रीमती रत्नम्मा हेगड़े को सम्मानित किया गया व हेलीकॉप्टर से पुष्पवृष्टि की गई।

कण्णाड-मुक्खमंती, कइवय-विदू सेट्ठी उवट्ठिदा य।
भट्ठारगा उच्छवे, पणफरवरीइ अहिसेगस्स॥530॥

5 फरवरी के दिन महामस्तकाभिषेक महोत्सव में कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री गुंडूराव जी, कई विद्वान, श्रेष्ठी एवं कोल्हापुर के जैन मठ संस्था के पट्टाचार्य श्री लक्ष्मीसेन भट्टारक उपस्थित थे। बाद में श्री वीरेन्द्र हेगड़े जी ने सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

कोथलिं च गच्छंतो, मूडबिद्दीए वि किंचियालस्स।
ठाएज्ज संपादणं, अणुसंधाणं पगासणं च॥531॥
ताडपत्तगंथाणं, आढवेदुं जोयणा णिम्मिदा हु।
गुरु-परमस्सेण रमा-राणीसोहसंठाणं चिय॥532॥
साहु-संतिपसादेण, ठाविदं मुणि-पेरणाइ खेत्तम्मि।
संतिदेवी-भवणं च, णिम्माविदं णेमचंदेण॥533॥ (तिगं)

पुनः वहाँ से कोथली की ओर विहार किया। कोथली जाते हुए वे कुछ समय के लिए मूड़बिद्री ठहरे। वहाँ ताड़पत्र ग्रंथों के अनुसंधान, संपादन और प्रकाशन को प्रारम्भ करने की योजनाएँ बनने लगीं। गुरुवर पूज्य एलाचार्यश्री विद्यानंदजी के परामर्श से साहू शांतिप्रसाद जी ने मूड़बिद्री में रमारानी शोध संस्थान की स्थापना की थी। मुनिश्री की प्रेरणा से ही क्षेत्र पर श्री नेमचंद जैन जौहरी दिल्ली ने 'शान्तिदेवी भवन' का निर्माण कराया।

मूडबिद्दीए तदा, कराविदो सेट्ठो जिण्णुद्धारो।
भत्तीए सावगेहि, पाईण-जिण-गुरु-वसदीणं॥534॥

तब मूड़बिद्री में श्रावकों के द्वारा भक्तिपूर्वक प्राचीन जिनमंदिर व गुरुवसति का श्रेष्ठ जीर्णोद्धार कराया गया।

बासीदीए करिदो, चउमासो कोथलीइ मुणिंदेण।
तदा हि एगुत्तरसद-पवयणेहि णाणमिय-वरिसा॥535॥

सन् 1982 का चातुर्मास एलाचार्यश्री ने कोथली में ही किया। तब एलाचार्यश्री ने 101 प्रवचन दिये। उन प्रवचनों से ज्ञानामृत की वर्षा संपूर्ण कोथली में हुई।

सोहग्गवदि-णारीहि, णाणपदीग-दीवेहि सह जत्ता।
मुणिणिवासादु पवयण-थलंतं आयोजिदा तदा॥536॥

9 अक्टूबर को दोपहर 2 बजे से सौभाग्यवती नारियों ने ज्ञान का प्रतीक दीपक हाथ में लेकर मुनि-निवास से प्रवचन-स्थल तक एक शोभायात्रा आयोजित की।

ण सुविहाजणग-ठाणं, गमणागमणस्स तं सासणेणं।
विसाल-जण-जूहं पेच्छंतेण सुववत्था करिदा॥537॥

गमनागमन की दृष्टि से कोथली स्थान सुविधाजनक नहीं था अतः पूज्य एलाचार्यश्री के चातुर्मास में विशाल जन-समूह को देखते हुए शासन (कर्नाटक राज्य परिवहन मंडल) ने बस आदि की अच्छी व्यवस्था कर दी। महाप्रभावना से युक्त वह चातुर्मास सभी के लिए अविस्मरणीय रहा।

कुंभोज-बाहुबलिम्मि, उणवीस-सय-तेआसी-वस्सादु।
चउअसीदि-वस्संतं, होज्जा अइतिव्व-संघस्सो॥538॥

कोथली के ऐतिहासिक चातुर्मास के पश्चात् एलाचार्यश्री का मंगल विहार कोल्हापुर जिले के कुंभोज ग्राम स्थित बाहुबली क्षेत्र के लिए

हुआ था। कुंभोज बाहुबली में 1983 से 1984 तक क्षेत्र संरक्षण हेतु बहुत तीव्र संघर्ष हुआ।

कस्स वि अण्णदियंबर-मुणिस्स णेव दंसिदो साहसो दु।
संपइयालम्मि खेत्त-रक्खाए परंपराए य॥539॥

वर्तमान काल में क्षेत्र रक्षा व परंपरा की सुरक्षा के लिए किन्हीं भी अन्य दिगंबर साधु का वह साहस दिखाई नहीं देता जो उस समय एलाचार्यश्री विद्यानंदजी का देखने को मिला।

बहुअ-रायणीदि-दलं, भज्जा य महरट्ठ-मुक्खमंतिस्स।
सम्मिलिदा अहिगारी, संसदा संपदाइग-जणा॥540॥

[शासकीय सत्ता का दुरुपयोग कर यहाँ श्वेतांबर-दिगंबर के झगड़े को सांप्रदायिक आयाम देने की कोशिश की जा रही थी।] इसमें बहुत से राजनैतिक दल, महाराष्ट्र तत्कालीन मुख्यमंत्री की पत्नी श्रीमती शालिनी ताई, कई शासकीय अधिकारी, महाराष्ट्र के सांसद व कट्टर सांप्रदायिक लोग सम्मिलित थे।

सरयू-दप्फरीए, सहायो अविम्हरणीयातुल्लो।
इह तिव्वसंघस्सम्मि, पुण्ण-भत्तीइ समप्पणेण॥541॥

इस तीव्र संघर्ष में मुनिश्री की अनन्य भक्त श्रीमती शरयू दफ्तरी जी का पूर्ण भक्ति व समर्पण से सहयोग अविस्मरणीय व अतुलनीय रहा।

तत्थ धम्मविरोहीहि, उवद्दवो करिदो असोहणीयो।
खुद्दचित्तेण विज्जाणंदेणं अणसणं करिदं॥542॥

वहाँ धर्म विरोधियों ने अशोभनीय उपद्रव किया। तब एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का चित्त बहुत खिन्न हुआ। तब उन्होंने अनशन किया।

विशेषार्थ—दरअसल आचार्यश्री समंतभद्रजी पर उपद्रव करके शिवाजी का पुतला बाहुबली क्षेत्र की पहाड़ी पर खड़ा करने का षड्यंत्र था। दिगंबर जैन क्षेत्र पर गैरकानूनी तरीके से पुतला खड़ा करने

की तैयारियाँ थीं। इस अन्याय व गैरकानूनी कार्यवाही को नीचे से लेकर ऊपर तक के सभी सरकारी अफसरों का पूरा-पूरा समर्थन था। दिगंबर जैन क्षेत्र व समाज पर खुले आम अन्याय हो रहा था।

एगस्सिणुत्तरद्धे, पढमुववासो एलाइरियेणं।
एयारसादो अण्ण-चागो दु समंतभद्देणं।।543।।

1 अक्टूबर 1983 को एलाचार्यश्री ने प्रथम उपवास किया। 11 अक्टूबर से आचार्यश्री समंतभद्रजी ने अन्न का त्याग शुरू कर दिया।

दक्खिण-भारद-सहाइ, अज्झक्खा-सरयूदफ्फरीइ सह।
हरिजण-णारीहिं अवि, अमज्जादिदणसणं करिदं।।544।।

दक्षिण भारत सभा की अध्यक्षा श्रीमती शरयू दफ्तरी के साथ नेज गाँव की हरिजन महिलाओं ने भी अमर्यादित अनशन शुरू कर दिया।

वत्ता कुणिदा सासण-अहिगारीहि एलाइरियेण सह।
पढमुववास-समत्तो, किण्णु समस्सा-णिवारणं ण।।545।।

परिणामतः शासन अधिकारियों ने बाहुबली में आकर एलाचार्य जी के साथ बातचीत की। एलाचार्यश्री से चर्चा के बाद पहाड़ी पर जो सशस्त्र पुलिस वाले थे उन्हें अन्यत्र भेजा गया। एलाचार्यश्री का पहला उपवास समाप्त हुआ। किन्तु समस्या का निवारण नहीं हुआ।

पहाणा खिप्पिदा जिण-बाहुबली-विसाल-मुत्तीए चिय।
चप्पडीआलुंखिदा, भय-जुद-परिसरो णिम्मिदो य।।546।।

भगवान् बाहुबली की विशाल मूर्ति पर बहुत से पत्थर फेंके, पटाखे जलाए गए। उस परिसर को भय युक्त निर्मित कर दिया गया।

तदा विदियं अणसणं, आरंभिदं च एलाइरियेणं।
समभावेणं सोलसणवंबरादो णो कोहेण।।547।।

तब एलाचार्यश्री ने 16 नवंबर से दूसरा अनशन शुरू कर दिया। यह उपवास क्रोध से नहीं, समत्व परिणाम से युक्त होकर किया था।

घडणा-परिक्खणस्सदु, पडिणिहि-मंडलो यपेसिदो तत्थ।
इंदिराइ कुंभोजे, मुणिंद-अणसण-समत्तीए।।548।।

एलाचार्यश्री के इस दूसरे अनशन से पूरे देश में खलबली मच गई। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी द्वारा घटना के परीक्षण के लिए एक प्रतिनिधि मंडल नियुक्त किया गया। यह प्रतिनिधि मंडल घटना की जानकारी व मुनिराज के अनशन की समाप्ति के लिए कुंभोज बाहुबली पहुँचा।

विशेषार्थ–उन्होंने प्रतिनिधि मंडल में चार सांसदों श्री अशोक गहलोत, श्री जे.के. जैन, श्री भिकूराम जैन तथा राज्यसभा सदस्य श्री डी.जी. पाटिल को नियुक्त किया।

एगवीस-दिसंबरे, अणसणसमत्तीए घोसणा करिदा।
विसेस-णिवेदणेणं, पहाणमंति-इंदिराए दु॥549॥

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा जी के विशेष निवेदन से एलाचार्यश्री ने 21 दिसंबर 1983 को अपने अनशन समाप्ति की घोषणा की।

विशेषार्थ–समस्त समाज ने अपना हर्ष प्रकट किया और साथ ही प्रधानमंत्री जी को निम्न पत्र भेजा–

Smt. Indira Gandhi
Prime Minister, New Delhi

Jain Samaj is very thankful to you for favour of sending your representatives a Central Minister and Parliament Member Shri Bhikooram Jain and Shri J.K. Jain to Kumbhoj Bahubali for requesting Holy Saint Vidyanand ji to end the fast. We further request you to solve the problem of Kumbhoj Bahubali at the earliest.

सहस्सजणा आवीअ, एलाइरिय-दंसणत्थं तदा हि।
बावीस-दिसंबरम्मि, गहिदो आहारो पहादे॥550॥

उस समय एलाचार्यश्री के दर्शन के लिए हजारों लोग वहाँ आए। 22 दिसंबर 1983 को सुबह उन्होंने आहार ग्रहण किया।

तिफरवरीइ देविदं, तदा मुक्खमंतिणा महरट्ठस्स।
बाहुबलिम्मि छत्तपदि-सिवा-सुमुत्ति-संठावणस्स॥551॥

अग्गह-मुज्झेज्ज सयं, णिवारिदा हु इंदिरा-गंधीए।
समस्सा विसिट्ठा सग-विसिट्ठ-बुद्धीइ वियारित्तु॥552॥ (जुम्मं)

तब 3 फरवरी 1984 को महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने आदेश दिया कि मराठा समाज बाहुबली में छत्रपति शिवाजी का पुतला स्थापित करने का आग्रह छोड़ दे, उन्हें अन्य बिठाएँ। इस प्रकार प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधीजी ने अपनी विशिष्ट बुद्धि से विचारकर स्वयं विशिष्ट समस्या का निवारण किया।

वीसम-सयद्दीए दु, महाण-मुणिंदेण खेत्त-रक्खाइ।
जं करिदं तं सया हि, अविम्हरणीयं धम्मीहिं॥553॥

20वीं शताब्दी के महान् मुनींद्र श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने क्षेत्र रक्षा के लिए जो किया, वह सदा ही धर्मात्माओं के द्वारा अविस्मरणीय है।

रट्ठीय-गुरुकुल-दिव्ववदाण-समारोहो उल्लासेण।
किदण्हु-भावेहिं णिय-गुरुं पडि आयोजिदो तत्थ॥554॥

फरवरी सन् 1984 को कुंभोज में अपने गुरु के उपकार के प्रति कृतज्ञ भावों से एलाचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज ने राष्ट्रीय स्तर पर एक गुरुकुल दिव्यावदान समारोह अति उल्लासपूर्वक आयोजित किया।

कुंभोजम्मि बाहुबलि-खेत्ते पदिट्ठिदा तस्स पडिमा दु।
ठाविदं सोहपीढं, सूरि-देसभूसणण्णाए॥555॥

श्री समंतभद्र मुनिराज ने कोल्हापुर जिले के कुंभोज ग्राम के बाहुबली क्षेत्र में आचार्यश्री देशभूषण जी की आज्ञानुसार उन भगवान बाहुबली की भव्य उदात्त प्रतिमा की प्रतिष्ठा की और अनेकांत शोधपीठ की स्थापना की।

गुरुकुल-पद्धती पुणण्णवा करिदा मुणि-समंतभद्देण ।
अट्ठारस-ठाणेसुं, संचालिदा गुरुकुलादी य॥556॥

(वहाँ एलाचार्यश्री ने अपने उद्बोधन में बताया कि) श्री समंतभद्र महाराज ने गुरुकुल पद्धति पुनर्जीवित कर दी। उन्होंने कारंजा,

बाहुबली, खुरई, स्तवनिधि आदि 18 स्थानों पर गुरुकुल व हाईस्कूल संचालित किए।

देसस्स विदू गुरुकुल-ण्हादगुवट्ठिदा जिणिंदकुमारो।
तयदिवसायोजणम्मि, सम्माणिदा सेवाभावी।।557।।

देश के विद्वान व गुरुकुल के स्नातक इस त्रिदिवसीय आयोजन में उपस्थित हुए। यहाँ हिन्दी के ख्यातिप्राप्त साहित्यकार जैनेंद्र कुमार जी (एवं महाराष्ट्र राज्य के साहित्य व संस्कृति मंडल के अध्यक्ष सुरेंद्र बारलिंगे भी) उपस्थित थे एवं गुरुकुल के लिए सेवाभावी लोगों को सम्मानित भी किया गया।

गुरुकुल-गोरवुवाहीए चिय गारविदा माणिगचंदा।
गुरुकुल-वच्छलाए य, गजाबेणा णिय-सेवाए।।558।।

अपना संपूर्ण जीवन गुरुकुल को समर्पित करने वाले ब्र. पं. माणिकचंद चवरे और पं. माणिकचंद भिसीकर को ''गुरुकुल-गौरव'' की उपाधि से गौरवान्वित किया गया। और अपनी सेवा के लिए पं. गजाबेन को ''गुरुकुल-वत्सला'' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इनके अतिरिक्त गुरुकुल के लिए अपनी सेवा प्रदान करने वाले अन्य व्यक्तियों का सम्मान भी किया गया।

मुंबई-बोरीवल्लि-खेत्ते चिय चउमासो संपण्णो।
महा-आयोजण-जुदो, अच्चंत-धम्मपहावणाइ।।559।।

1984 का एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का चातुर्मास मुंबई बोरीवली त्रिमूर्ति में संपन्न हुआ। यह चातुर्मास अत्यंत प्रभावना और महाआयोजन से युक्त था।

उणवीस-सय-पणसीदि-वस्से इंदोरे विराइदो सो।
तत्थ आयोजिदो चिय, सट्ठि-पुत्ति महुच्छवो तस्स।।560।।

सन् 1985 में एलाचार्यश्री इंदौर में विराजमान थे। वहाँ उनका षष्ठिपूर्ति महोत्सव आयोजित किया गया।

विशेषार्थ–अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित षष्ठिपूर्ति समारोह 22 अप्रैल 1985 से 21 अप्रैल 1986 तक विभिन्न कार्यक्रम संपन्न होंगे एतदर्थ एक समिति का गठन हुआ।।

संवच्छरिय-अवही दु, सावयायार-वस्स-रूवे तदा।
गामेसु णयरादीसु, आयोजिदा घोसिदमिदं दु।।561।।
अणेग-पदंसणी गोट्ठी वक्खाणाइ-कज्जाणि देसे।
अहिंसा-पसारस्स य, सागाहार-णीदि-धम्माण।।562।।

तब घोषणा की गई कि इस सांवत्सरिक अवधि को श्रावकाचार वर्ष के रूप में हर गाँव, नगरादि में मनाया जाएगा। इस अवसर पर देश में अनेक प्रदर्शनी, गोष्ठी, व्याख्यानादि कार्य हुए। अहिंसा के प्रसार के लिए शाकाहार, नीति व धर्म के कार्य हुए।

सरयू-दफ्फरीए दु, सागाहारागरिसग-पदंसिणी।
णयणाहिरामा तदा, दंसिदा हु सहस्सजणेहिं।।563।।

श्रीमती शरयू दफ्तरी ने शाकाहार की आकर्षक व नयनाभिराम प्रदर्शिनी तैयार की। उस शाकाहार प्रदर्शिनी को हजारों लोगों ने देखा।

सागाहारो गहिदो, सहस्साहियजण-पस्संतेहिं च।
जम्हा सागाहारो, भारदीय-सक्किदि-मूलो हु ।।564।।

देखने वाले हजारों से ज्यादा लोगों ने शाकाहार ग्रहण किया क्योंकि शाकाहार भारतीय संस्कृति का मूल है।

अहिंसाथलम्मि वीरबिंब-ठावणाइ करिदो विरोहो।
उवद्दविदं अवि तत्थ, जइणधम्मविद्देसीहिं दु।।565।।
जइण-समायमुक्खेहि, सुणिय लिहिदं पत्तं आइरियेण।
राजीवगंधी गहीअ, करं खालिय अइविणयेणं।।566।।
णमंतो कहीअ जइण-समायो ण चिंतेज्ज इमे विसये।
विस्सपुज्ज-मंगल्लो, महावीरजिणबिंबो जं दु।।567।।

सन् 1985 में जब अहिंसास्थल दिल्ली में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापना का निर्णय किया गया तब जिनधर्म विद्वेषियों ने उसका विरोध किया और वहाँ उपद्रव भी किया। जब जैन समाज

के प्रमुख जनों ने यह समाचार सुना तो वे शीघ्र आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज के चरणों में पहुँचे। आचार्यश्री ने संपूर्ण वार्ता जानकर एक पत्र तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय श्री राजीव गांधी जी के लिए लिखा। उन्होंने आचार्यश्री का वह पत्र हाथ धोकर अत्यंत विनम्रतापूर्वक नमन करते हुए ग्रहण किया। पुनः पत्र पढ़कर कहा कि जैन समाज इस विषय में बिल्कुल चिंता न करें, आचार्यश्री को मेरा नमन निवेदित कर कहियेगा कि वे निश्चिंत रहें, महावीर भगवान् का वह बिंब विश्वपूज्य व सभी के लिए मंगलकारी है।

विशेषार्थ–सन् 1985 में दिल्ली में अहिंसास्थल में भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापना की घोषणा पर जिनधर्म विद्वेषियों ने उसका विरोध किया और वहाँ उपद्रव भी किया। उस समय आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज इंदौर में विराजमान थे। जब जैन समाज के प्रमुख लोग इस विवाद के निवारण हेतु उनके पास पहुँचे। तब स्थिति की गंभीरता को देख आचार्यश्री ने तत्कालीन प्रधानमंत्री माननीय श्री राजीवगांधीजी के लिए एक पत्र लिखा। जैसे ही उन्हें ज्ञात हुआ कि आचार्यश्री का पत्र आया है वे खड़े हुए, उन्होंने हाथ धोकर विनम्रतापूर्वक उस पत्र को अपने मस्तक से लगाया। उसमें आचार्यश्री ने अहिंसा स्थल के विषय में लिखते हुए कहा कि मैं अभी इंदौर हूँ, शीघ्र दिल्ली आ रहा हूँ, तब तक आप सम्हाल लेना। प्रत्युत्तर में माननीय प्रधानमंत्री जी ने कहा कि आचार्यश्री को मेरा नमोस्तु निवेदित करियेगा और कहियेगा कि आचार्यश्री निश्चिंत रहें, वे आराम से दिल्ली आएँ तब तक सब सकुशल रहेगा। मार्च 1986 में इंदौर से आचार्यश्री ने विहार किया और शीघ्र दिल्ली आ गए। दिल्ली में गुलमोहर पार्क में वे मुल्तान जैन परिवार श्री वीरेंद्र जैन, मंजू जैन जी के यहाँ ठहरे। तभी श्रीमती तेजी बच्चन (अभिनेता अमिताभ बच्चन की माँ) आचार्यश्री के चरणों में पहुँचीं एवं बराबर में ही अपने घर पर आ. श्री को अति निवेदन व विनम्रतापूर्वक लेकर आयीं। वहीं बैठकर प्रधानमंत्री श्री राजीवगांधी जी से चर्चा हुई एवं निर्णय हुआ कि अहिंसास्थल पर विराजमान भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा यथावस्थित रहेगी।

उणवीस-सय-छलसीअ-वस्से पंचकल्लाणपदिट्ठा हु।
चउवीस-मंदिराणं, मदण-बाहुबलि-मुत्तीए य।।568।।

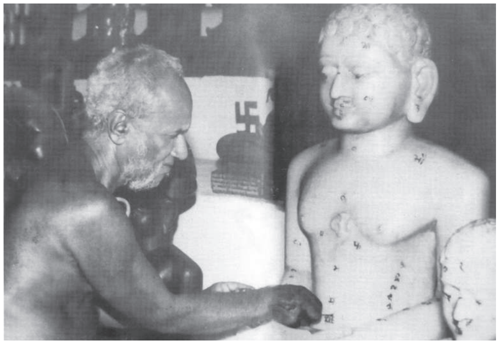

गोम्मडगिरिम्मि तदा हि, सूरि-विमलसायर-उवट्ठिदीए।
तहा एलाइरियस्स, अट्ठादु तेरसमच्चंतं।।569।। (जुम्मं)

8 मार्च से 13 मार्च तक 1986 में इंदौर में नवनिर्मित तीर्थक्षेत्र गोम्मटगिरि पर आचार्यश्री विमलसागर जी एवं एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की उपस्थिति में 24 मंदिर और कामदेव बाहुबली की मूर्ति की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की गई।

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा

लक्खाहिया सावया, उवट्ठिदा पणकल्लाणपूयाइ।
मुक्खमंति-रज्जवाल-आदी बहु-समायसेट्ठी वि।।570।।

पंचकल्याणक पूजा में लाखों से अधिक श्रावक मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा, महामहिम राज्यपाल व बहुत से समाजश्रेष्ठी आदि भी उपस्थित थे।

सागाहारो दत्तो, जइण-समायेणं पुण्णविस्सस्स।
सुसिद्धंतो अहिंसा, बिड़ला- सेट्ठिणा भासिदं दु।।571।।

उद्योगपति श्रेष्ठी श्री के.के. बिड़ला जी ने उस समारोह में कहा कि जैन समाज ने संपूर्ण विश्व को शाकाहार दिया, अहिंसा का यह सिद्धांत भी विश्व को जैन समाज ने ही दिया है।

उद्योगपति व संसद श्री कृष्ण कुमार बिरला

णाणीजइलसीहेण, सहस्साहिय-सावगेहि सह गडुअ।
सवणबेलगोलं पत्थीअ ढिल्लि च आगमेदुं।।572।।

दिल्ली के हजारों श्रावकों के साथ धर्मानुरागी महामहिम राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिंह जी ने श्रवणबेलगोला जाकर पूज्य एलाचार्यश्री को दिल्ली आने के लिए प्रार्थना की थी।

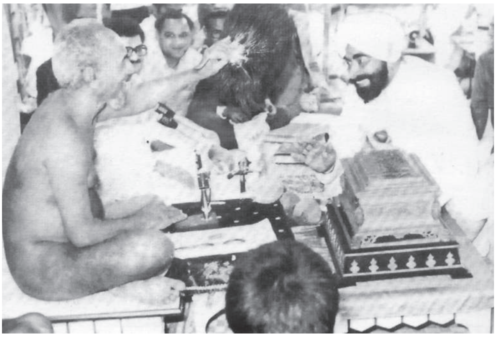

राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह

पुणो सावगेहिं जह, ढिल्ली-महापोरो आगच्छीअ।
एलाइरिय-णियडम्मि,ढिल्ली-आगमण-पत्थणाइ।।573।।

पुनः इंदौर में 1986 में दिल्ली के बहुत श्रावकों के साथ दिल्ली के महापौर श्री महेन्द्रसिंह जी दिल्ली आगमन की प्रार्थना के लिए एलाचार्यश्री के निकट आए। और एलाचार्यश्री ने भी उन सभी को स्वीकृति प्रदान की।

इंदोरादो ढिल्लिं, पलोट्टंतो चिय फिरोजाबादं।
गच्छीअ णिवेदणम्मि, मुणी चंदवाड-खेत्तं अवि।।574।।

इंदौर से दिल्ली लौटते हुए पूज्य मुनिवरश्री फिरोजाबाद की समाज के निवेदन पर फिरोजाबाद पहुँचे और वे चंद्रवाड क्षेत्र भी गए।

ठविदा चंदणयरम्मि, फलिह-पडिमा लद्धचंदप्पहस्स।
चंदवाडखेत्तादो, एलाइरियो ठाएज्जा य।।575।।
बेदिणं हु गवेसिदं, इदिवित्तं रइधूकविणा लिहिदं।
साहिच्च-मत्थ कहिदं, तदा गुरु-एलाइरियेणं।।576।। (जुम्मं)

फिरोजाबाद में चंद्रवाड क्षेत्र से श्री चंद्रप्रभ भगवान् की प्रतिष्ठित स्फटिकमणि की प्रतिमा प्राप्त हुई थी जो चंद्रनगर फिरोजाबाद में चंद्रप्रभ दिगंबर जैन मंदिर में स्थापित है। तब एलाचार्य गुरुदेव एक दिन के स्थान पर दो दिन वहाँ ठहरे, पुनः वहाँ का इतिहास खोजा और बताया कि रइधू कवि ने इसी स्थान पर बहुमूल्य साहित्य रचा।

चंदवाड-णिवासीण, विअरिदं मिट्ठण्णं जइणेहिं च।
जिण्णोद्धारस्स तदा, इग-लक्ख-धणरासी लद्धा।।577।।

एलाचार्यश्री के संकेतानुसार जैन समाज के लोगों ने चंद्रवाड के निवासियों को मिठाई बाँटी और तब लगभग एक लाख रुपये की धनराशि जीर्णोद्धार के लिए एकत्रित हो गई।

वस्सिग-मेलयस्स णिण्णयो कुणिदो य मुणि-णिद्देसेणं।
बे-अक्टूबरे तदा, समायेण जस्सिं अज्जं वि।।578।।
लक्खजणा मेलंते, उत्तर-पदेस-सासणेणं तत्थ।
णिम्माविद-मदिहिगिहं, जणकल्लाण-सुभावणाए।।579।। (जुम्मं)

मुनिश्री के निर्देशानुसार जैन समाज के द्वारा दो अक्टूबर को वार्षिक मेले का निर्णय किया गया। जिस मेले में आज भी लाखों लोग मिलते हैं। बाद में उत्तरप्रदेश सरकार के द्वारा जनकल्याण की भावना से वहाँ एक अतिथिगृह निर्माण भी कराया गया।

अट्ठावीस-जूणम्मि, पविसिदा ढिल्ली पहुच्चिदं हंदि।
रत्त-दुग्गं दु मुणिणा, विसाल-सोहा-जत्ताइ जह।।580।।

एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने 28 जून को दिल्ली में प्रवेश किया और अगले दिन विशाल शोभायात्रा के साथ उन्होंने लालकिला मैदान में प्रवेश किया।

लालकिले पर महापौर श्री महेन्द्र सिंह साथी एवं
पूर्व सांसद श्री जे.के. जैन

विशेषार्थ–यह शोभा यात्रा 29 जून को प्रातः 6:20 बजे मॉडल टाउन मंदिर से प्रारंभ होकर पहाड़गंज, सदरबाजार, चांदनी चौक होती हुई प्रातः 8:30 बजे लाल किला पर पहुँची थी।

महातित्थोव्व णयरी, भासीअ जुत्ता अपारभत्तेहि।
अद्धलक्खजणेहिं दु, कुव्विदं सागदं दुग्गम्मि।।581।।

पचास हजार से अधिक व्यक्तियों ने मुनिश्री का लालकिला पर स्वागत किया। उस समय अपार भक्तों से घिरी वह नगरी महातीर्थ के समान ही प्रतिभासित हो रही थी।

संबोहिदा सहा चिय, कत्तव्वं पडि जागरिआ करिदा।
अहिगारं णादि णरो, किण्णु णेव सगकत्तव्वं दु।।582।।

एलाचार्यश्री ने संपूर्ण सभा को संबोधित किया और उनके कर्त्तव्यों के प्रति उन्हें जागरुक किया। उन्होंने कहा कि धर्म शब्द का अर्थ है हर व्यक्ति अपना कर्त्तव्य निभाये। कर्त्तव्य विमुखता का आशय है धर्म-विमुखता। व्यक्ति अधिकारों को तो जानता है किन्तु अपने कर्त्तव्य को नहीं जानता।

देसमुहेणं लिहिदं, णिम्माविदो दु मोहणजोदडो य।
जइणेहिं हि सो पुणो, जइण-वावार-केंदो वरो।।583।।

एलाचार्यश्री ने बताया कि श्री के.पी.आर. देशमुख जी ने अपनी पुस्तक Indus Civilisation Rigveda and Hindu Culture में लिखा है कि मोहनजोड़दो का निर्माण जैनों ने ही किया था। यह जैनों का श्रेष्ठ व्यापार केन्द्र था।

देसस्सत्थववत्था, जइणेसु णिब्भरा पणसहस्सादु।
दससहस्सवस्संतं, लिहिदं दु महादेवणेणं।।584।।

मद्रास के विद्वान् श्री महादेवन ने अपनी पुस्तक में लिखा कि पाँच हजार से दस हजार वर्ष तक देश की अर्थव्यवस्था जैनों पर ही निर्भर थी।

जवाहर-लालेणं पि, लिहिदं देसस्स मूलणिवासी हु।
जइणा णिच्छयेण तं, देसं पडि अहियकत्तव्वं।।585।।

एलाचार्यश्री ने बताया कि जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक Discovery of India में लिखा कि निश्चय से देश के मूलनिवासी जैन ही होते हैं इसलिए हमारा देश के प्रति कर्त्तव्य अधिक है।

चउमास-संठावणा, कुविदा कुंदकुंदभारदीए।
आवीअमुक्ख-अदिही,उवरट्ठवदि-वेंगडरमणो॥586॥

20 जुलाई 1986 को एलाचार्यश्री ने चातुर्मास की स्थापना कुंदकुंद भारती में की। वहाँ मुख्य अतिथि के रूप में महामहिम उपराष्ट्रपति श्री आर.वी. वेंकटरमन जी पधारे।

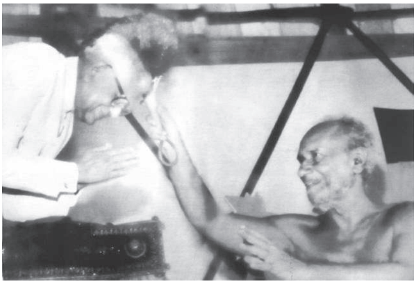

सव्व-भारद-वासीण, हिअयेसु णिम्माविदं वर-ठाणं।
एलाइरियेणं णिय-णाण-पवयणेहि विहारेण॥587॥
सयायारं अहिंसं अज्झप्पिय-णइदिग-मुल्लं जणेसु।
वड्ढीअणिय-जत्ताइ,रिसि-मुणि-परंपरा-पडिणिही॥588॥(जुम्मं)

उन्होंने अपने उद्‌बोधन में कहा कि एलाचार्यश्री ने अपने ज्ञान से, प्रवचनों से एवं विभिन्न स्थानों पर विहार कर सभी भारतवासियों के हृदयों में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाया है। अपनी यात्रा से मुनिश्री ने लोगों में सदाचार, अहिंसा, आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों को वृद्धिंगत किया। मुझे गर्व है कि ये ऋषि-मुनि परंपरा के प्रतिनिधि हैं।

महप्प-गंधिम्मि जइण-धम्मस्स विसिट्ठ-पहावो य तस्स।
गुरु-रायचंद-जइणो, जेण दु अहिंसा-विस्सासी॥589॥

उन्होंने आगे कहा कि महात्मा गांधी के जीवन में जैन धर्म का विशिष्ट प्रभाव था। उनके गुरु श्री रायचंदजी जैन थे जिससे वे अहिंसा धर्म के विश्वासी हुए।

अहिंसा-पालणस्स हि, कुव्वंति जइणसाहू चउमासं।
असंतीइ वि संति-मणुभवेज्ज तित्थाइ-कारणेण॥590॥

पुनः मुनिराज ने उपदेश दिया कि जैन साधु अहिंसा धर्म के पालन के लिए ही चातुर्मास करते हैं। भारत में होने वाले हमारे तीर्थंकर, अरिहंत, संतादि के कारण ही हम अशांति में भी शांति का अनुभव करते हैं।

उवदिसिदं मुणिंदेण, परिसरे ण ठाणं ठविदुं पदं पि।
तं सीमाए बहिरं, ठाइत्तु हि सुणेज्ज पस्सेज्ज॥591॥

उस दिन उस परिसर में पैर रखने के लिए भी जगह नहीं थी। अतः लोग सीमा से बाहर खड़े होकर ही कार्यक्रम सुन रहे थे व देख रहे थे।

विशेषार्थ–1986 में कुंदकुंद भारती में एलाचार्यश्री का यह प्रथम चातुर्मास था।

सहा जम्मजयंदीइ, भाऊराव-पाडिलस्स खलु तत्थ।
अट्ठारस-जुलाइम्मि, एलाइरिय-सण्णिहीए हु॥592॥
महरट्ठ-मुक्खमंती, अट्ठारस-संसदा विधायगा वि।
ढिल्लीइपमुहा-जणा,आदीउवट्ठिदासहाए॥593॥(जुम्मं)

महाराष्ट्र मुख्यमंत्री व अन्य

18 जुलाई 1986 में एलाचार्यश्री के सान्निध्य में भाऊराव पाटिल की जन्म जयंती की सभा आयोजित की गई। उस सभा में कुंदकुंद भारती में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री एस.बी. चव्हाण, महाराष्ट्र के 18 सांसद व विधायक आदि एवं दिल्ली के प्रमुख लोग उपस्थित थे।

पंचसद-विज्जालया, कलालया महाविज्जालया तह।
ठविदा सिक्खा-संथा, भाऊरावपाडिलेणं च॥594॥

एलाचार्यश्री ने भाऊराव पाटिल जी जैन के विषय में जो बताया वह सभी को विस्मित करने वाला था। भाऊराव पाटिलजी ने 500 विद्यालय, महाविद्यालय, कलासंस्थान एवं श्रेष्ठ शिक्षासंस्था की स्थापना की।

सिक्खाए खेत्तम्मि दु, ताइ संथाइ सिक्खत्थीण तदा।
सिक्खा-कंतीकुणिदा,लक्खेहिलहिदावर-सिक्खा॥595॥

शिक्षा के क्षेत्र में उस संस्था ने विद्यार्थियों के लिए शिक्षा की क्रांति की। लाखों बच्चों ने उस संस्थान से श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त की।

विशेषार्थ–एलाचार्यश्री के उपदेशों का यह प्रभाव हुआ कि महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री जी, जो सभा में उपस्थित थे, ने कहा कि ''कर्मवीर भाऊराव पाटिल की जन्म शताब्दी प्रान्तीय स्तर पर आयोजित करने हेतु केबिनेट में बात रखकर मैं इस कार्य के लिए एक संस्था का गठन करूँगा'' उन्होंने कहा वे इस संबंध में प्रधानमंत्री श्री राजीवगांधी जी से भी चर्चा करेंगे।

राजस्थान राज्यपाल महामहिम श्री बसन्त दादा पाटिल

वसंतदादापाडिल-रायट्ठाण-मण्ण-रज्जवालेण।
मुणिणा सह वियारं, कडुअ कहिदं तं णमंतेण॥596॥

सासणस्स कत्तव्वं, जम्मसयद्दि-उक्कित्तणं दु तस्स।
तव सुमग्ग-दंसणस्स, तुज्झ किदण्हू वयं सया हि।।597।।

इसी संबंध में राजस्थान के राज्यपाल श्री वसन्तदादा पाटिल जी ने एलाचार्यश्री के साथ 20 अगस्त को विचार करके पुनः उनको नमस्कार करते हुए कहा कि कर्मवीर भाऊराव पाटिल जैन जैसे देश के महान् व्यक्तित्व का जन्मशताब्दी महोत्सव मनाना शासन का कर्त्तव्य है। आपके श्रेष्ठ मार्ग-दर्शन के लिए हम सदा ही आपके कृतज्ञ रहेंगे।

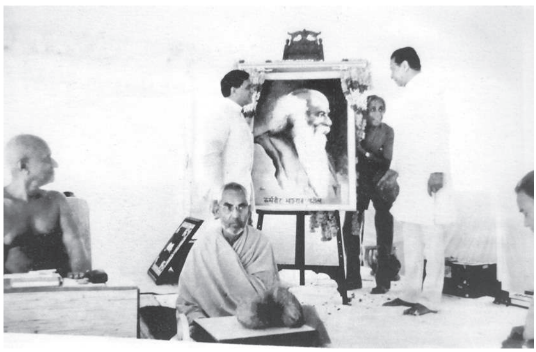

अट्ठारस-सिदंबरे, जम्मसयद्दि-उच्छवो पारंभो।
लोगसहज्झक्खेणं, बलरामेण मुणि-सण्णिहीइ।।598।।

18 सितंबर 1986 को एलाचार्यश्री के सान्निध्य में लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने भाऊराव पाटिल के जन्म शताब्दी का उत्सव प्रारंभ किया था।

अट्ठवीस-मइम्मि उणवीस-सय-सत्तासीदि-ईसवीइ।
सूरि-देसभूसणेण, देहो उज्झिदो समत्तेण॥599॥

28 मई 1987 को एक दुखद समाचार ज्ञात हुआ। भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने समत्व परिणामों के साथ देह का परित्याग कर दिया।

इगतीस-मइम्मि पुणो, सद्धंजली अप्पिदा मुणिंदेण।
कुंदकुंदभारदीइ,आयोजिद-विसाल-जण-सहाइ॥600॥

31 मई 1987 को कुंदकुंद भारती दिल्ली में एक विशाल जनसभा का आयोजन हुआ जिसमें मुनिवरश्री ने अपने गुरु को श्रद्धांजलि अर्पित की।

मुणी सुसील-कुमारो, खुल्लयो धम्माणंदो सहाए।
सद्धासुमण-मप्पिदुं, उवट्ठिदो देसभूसणस्स॥601॥

आचार्य सुशील कुमार मुनि व क्षुल्लक धर्मानंद जी भी आचार्यश्री देशभूषणजी को श्रद्धासुमन अर्पित करने के लिए सभा में उपस्थित थे।

पंचायार-परायणो

(पंचाचार परायण)

सूरि-देसभूसणेण, पेसिदं पत्तं विज्जाणंदस्स।
आइरिय-पदं दु तुमं, धरेज्ज मम णिण्णयो लिहिदं।।602।।
चरिय-चक्कवट्टिस्स दु, संतिसिंधु-परंपराणुरूवेण।
संचालेज्जा संघं, णेउणेणं विस्ससस्सेमि दु।।603।। (जुम्मं)

अपने देह का अवसान निकट जानकर पूर्वाभासी आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज ने एलाचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के लिए पत्र भेजा था, उसमें लिखा था कि तुम यह आचार्य पद धारण करो, यही मेरा निर्णय है। मुझे विश्वास है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज की परंपरा के अनुरूप ही आप निपुणतापूर्वक संघ का संचालन करोगे।

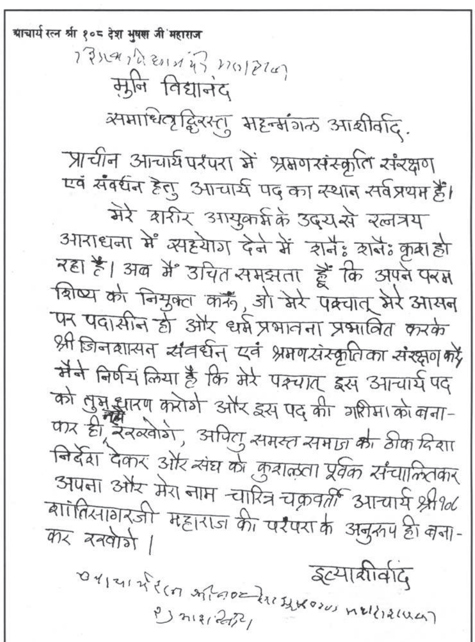

आचार्य रत्न श्री १०८ देश भुषण जी महाराज

[illegible]

मुनि विद्यानंद

समाधिवृद्धिरस्तु महन्मंगल आशीर्वाद.

प्राचीन आचार्य परंपरा में श्रमणसंस्कृति संरक्षण एवं संवर्धन हेतु आचार्य पद का स्थान सर्वप्रथम हैं।

मेरे शरीर आयुकर्म के उदय से रत्नत्रय आराधना में सहयोग देने में शनैः शनैः कृश हो रहा हैं। अब मैं उचित समझता हूँ कि अपने परम शिष्य को नियुक्त करूँ, जो मेरे पश्चात् मेरे आसन पर पदासीन हो और धर्म प्रभावना प्रभावित करके श्री जिनशासन संवर्धन एवं श्रमणसंस्कृति का संरक्षण करें, मैंने निर्णय लिया है कि मेरे पश्चात इस आचार्य पद को तुम धारण करोगे और इस पद की गरीमा को बनाये ही नहीं रखोगे, अपितु समस्त समाज को ठीक दिशा निर्देश देकर और संघ को कुशलता पूर्वक संचालितकर अपना और मेरा नाम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शांतिसागरजी महाराज की परंपरा के अनुरूप ही बनाकर रखोगे।

इत्याशीर्वाद

[illegible]

दायिदं पडिउत्तरं, तेणं पालिदं सिस्स-कत्तव्वं।
विणयेणं गुरु-अण्णा, संगच्छिदा पत्थणाइ सह॥604॥
सुहभावं भावेमि हु, तुज्झं णिराउल-धम्मज्झाणस्स।
सुगुरु-किवादिट्ठीमे,सयासयरहेज्जगुरुदेवो!॥605॥(जुम्मं)

एलाचार्यश्री ने उस पत्र का प्रत्युत्तर भी दिया था, उन्होंने शिष्य के कर्त्तव्य का पालन किया एवं प्रार्थना के साथ गुरु की आज्ञा स्वीकार की। उन्होंने लिखा—हे गुरुदेव! मैं आपके निराकुल धर्मध्यान के लिए शुभ भावना भाता हूँ। मुझ पर गुरु की कृपादृष्टि सदा-सदा रहे।

अट्ठावीस-जूणम्मि, आइरिय-पदं दायिदं विहीए॥
सत्थुत्त-पद्धतीए, सहस्स-जणसमूह-मज्झम्मि॥606॥

28 जून 1987 को हजारों जनसमूह के मध्य शास्त्रोक्त पद्धति से एलाचार्य जी को विधिपूर्वक आचार्यपद प्रदान किया गया।

आइरियो दु पालीअ, छत्तीस-गुणा परमविसुद्धीए।
सगपरिणामाणं चिअ,गुणोत्तर-विसोहि-विड्ढीए॥607॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज परम विशुद्धि के लिए एवं अपने परिण ामों की गुणोत्तर-विशुद्धि के लिए 36 मूलगुणों का पालन करते थे।

अणसण-मवमोदरियं, रसपरिचागं वित्ति-परिसंखं च।
विवित्तसेज्जासणं दु, कायकिलेसं हु बज्झतवं॥608॥
पायच्छित्तं विणयं, वेज्जावच्चं सज्झायं तवं च।
काओसग्गं झाणं, अब्भंतरं करीअ सूरी॥609॥ (जुम्मं)

आचार्यश्री ने अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये बाह्य तप और प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग व ध्यान ये आभ्यंतर तप किए।

दंसण-णाण-चरिय-तव-आयार-परायणा दु आइरियो।
णिग्गहकम्मे कुसलो, अणुग्गहसंगहे सिस्साण॥610॥

आचार्यश्री दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार व वीर्याचार परायण थे। शिष्यों के संग्रह, अनुग्रह व निग्रहकर्म में कुशल थे।

थुदिं वंदणं समदं, पच्चक्खाणं तहा पडिक्कमणं।
काउसग्गं छव्विहं, पालीअ आवसियं णिच्चं।।611।।

वे नित्य ही स्तुति, वंदना, समता, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण तथा कायोत्सर्ग छह प्रकार के आवश्यकों का पालन करते थे।

मणवयणकायगुत्ती, तिजोगपवत्तिं रोहिदुं करीअ।
अब्भासं अहण्णिसं, णासेदुं सयलकम्माइं।।612।।

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति व कायगुप्ति ये तीन गुप्ति हैं। सकल कर्मों के नाश के लिए वे अहर्निश तीनों योगों की प्रवृत्ति के निरोध का अभ्यास किया करते थे।

उत्तमखमं मद्दवं, अज्जवं सउचं सच्चं संजमं।
तवं चाग-मकिंचणं, बंभचेर-धम्मं पालीअ।।613।।

वे उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन और ब्रह्मचर्य धर्म का पालन किया करते थे।

दसविहं समणधम्मं, उत्तमखमाइ-सुद्धभाव-रूवं।
पालेज्जा आइरियो, सस्सद-सुह-णिमित्तं धम्मो।।614।।

आचार्य परमेष्ठी उत्तम क्षमादि शुद्ध भाव रूप दस प्रकार के श्रमण धर्म का पालन करते हैं। ये धर्म शाश्वत सुख का निमित्त हैं।

अच्चंत-कोहुदयेण, वा कोह-णिमित्ते मिलणे वि णेव।
कुव्वदि कोहं जो सो, खमाभावजुदो णादव्वो।।615।।

अत्यंत क्रोध के उदय से अथवा क्रोध के निमित्त मिलने पर भी जो कभी क्रोध नहीं करते वे क्षमाभाव से युक्त जानने चाहिए।

कडुगसद्दे सुणणे वि, भये बंधणे उवसग्गे जोगी।
खंडदि णेवविसुद्धिं, उत्तमखमाभावजुत्तो य।।616।।

कड़वे वचन सुनने पर, भय में, बंधन वा उपसर्ग में जो अपनी आत्मविशुद्धि को खंडित नहीं करता, वह योगी उत्तमक्षमाभाव से युक्त है।

सव्वुक्किट्ठ-खमा चिय, सेट्ठ-धम्मरूवो होदि णियमेण।
ताइ णासगं कोहं, समित्ता खमा होज्ज पगडो॥617॥

सर्वोत्कृष्ट क्षमा नियम से श्रेष्ठ धर्मरूप होती है। उस क्षमा का नाश करने वाला क्रोध है। उस क्रोध का शमन करके ही क्षमा प्रकट होती है।

उवसग्गाइ-समयम्मि, समणो चिंतदि समत्तभावेणं।
इमो जीवो णो हणदि, मम धम्म-मप्पगुणं कया वि॥618॥

उपसर्ग आदि के समय श्रमण समताभाव से चिंतन करते हैं कि यह जीव मेरे धर्म और मेरे आत्मगुणों का हनन कभी नहीं कर सकता।

दुहं दायिदुं सक्को, दुट्ठो मे पावकम्मोदयम्मि हि।
मज्झ पुण्णुदये कहं, सक्को दुहं दायिदुं को वि॥619॥

दुष्ट जीव मेरे पापकर्म के उदय में ही मुझे दुःख देने में समर्थ है। मेरे पुण्य के उदय में कोई भी मुझे दुःख देने में कैसे समर्थ होगा? अर्थात् मेरे पुण्य के उदय के कोई मुझे दुःख नहीं दे सकता।

रिणमोयणं व चिंतदि, समणो दुट्ठेहि उवसग्गे कदे।
तं उवसग्ग-कत्ता य, मे हिदेसी पावक्खयादु॥620॥

दुष्टों के द्वारा उपसर्ग किए जाने पर श्रमण चिंतन करते हैं कि पूर्व का कोई ऋण था जो अब चुक गया। अतः यह उपसर्ग करने वाला मेरे पाप क्षय करने से मेरा हितैषी ही है।

ण को वि जीवो सक्को, णासिदु-मत्थित्तं मे संसारे।
मे पावकम्मुदयम्मि, सो णिमित्तं अज्जदि कम्मं॥621॥

कोई भी जीव संसार में मेरा अस्तित्व नष्ट करने में समर्थ नहीं है। मेरे पापकर्म के उदय में मेरा अपकार करने वाला वह जीव निमित्त मात्र है; जो स्वयं पाप कर्मों का अर्जन कर रहा है।

अप्पगुण-णासगग्गी, कोहो सुद्धप्पसहावो खमा य।
णाणी अप्पगुणा रक्खंते झामेदि अण्णाणी॥622॥

क्रोध आत्मगुणों को नाश करने वाली अग्नि है और क्षमा शुद्ध आत्मा का स्वभाव है। ज्ञानी आत्मगुणों की रक्षा करते हैं और अज्ञानी उन्हें जलाकर नष्ट कर देता है।

जे के वि महापुरिसा, खमाभावसंजुत्ता सव्वा ते।
सगसरूव-णादू णो, कुव्वंति कोहं सुमिणम्मि वि।।623।।

जो कोई भी महापुरुष हैं वे सभी क्षमाभाव से संयुक्त होते हैं, अपने स्वरूप के ज्ञाता होते हैं। वे स्वप्न में भी कभी क्रोध नहीं करते।

पढमाणुजोगम्मि बहु-कहा पसिद्धा दिट्ठंता समये।
जेहि लहिदा दुग्गदी, दुरावत्था कोहभावेण।।624।।

प्रथमानुयोग के शास्त्रों में ऐसी बहुत सी कथाएँ व दृष्टांत प्रसिद्ध हैं जिन्होंने क्रोधभाव से दुर्गति व दुरावस्था को प्राप्त किया।

कूवे णीरं व खमा-भावो फुट्टेदि अप्पपदेसेसु।
पुप्फम्मि सुगंधोव्व य, कलहोयम्मि पीदवण्णोव्व।।625।।

जिस प्रकार कुएँ में जल होता है, पुष्पों में सुगंधि और स्वर्ण में पीत वर्ण होता है उसी प्रकार क्षमाभाव आत्मप्रदेशों में प्रस्फुटित होता है।

सूरिविज्जाणंदेण, धारिदा खमा सगप्पपदेसेसु।
अण्णभव्वाण पच्छा, कुव्विदो धम्मोवएसो दु।।626।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने अपने आत्मप्रदेशों में क्षमाभाव धारण किया पश्चात् अन्य भव्यजीवों के लिए धर्मोपदेश दिया।

मद्दव-मप्पसहावो, विहावभावो य माणो जीवस्स।
विहावो भव-कारणं, सिवत्त-हेदू सहावो तह।।627।।

मार्दव गुण आत्मा का स्वभाव है और मान-अहंकार जीव का विभाव भाव है। विभाव संसार का कारण है, जबकि स्वभाव सिद्धत्व का कारण है।

माणो कुणदि जीवस्स, कडु-दुट्ठ-कक्कस-णिट्ठुर-सहावो।
णासेदि य सण्णाणं, सुबुद्धिं सम्मत्ताइ-गुणा।।628।।

अहंकार जीव का स्वभाव कटु-दुष्ट-कर्कश व निष्ठुर कर देता है। अहंकार जीव के सम्यग्ज्ञान, सुबुद्धि और सम्यक्त्व आदि गुणों को नष्ट करता है।

णिरयाउ-बंध-हेदू, वा तिरियाउस्स अवि तिव्वमाणो।
कुव्वदि कक्कस-भावं, पासाणोव्व दुट्ठ-चित्तं व॥629॥

तीव्र मान नरक आयु अथवा तिर्यंच आयु के बंध का कारण है। अहंकार जीव का चित्त दुष्ट व्यक्ति के चित्त के समान कर देता है और उसके भाव पाषाण के समान कर्कश कर देता है।

सुक्क-मिदिगा ण सक्का, परिणमेदुं अण्णायाररूवे।
अद्दा परिणमदि विणदो ईसरो होदुं सक्का॥630॥

सूखी मिट्टी को अन्य आकार रूप में परिणमित करना शक्य नहीं है जबकि आर्द्र मिट्टी को अन्य आकार रूप में परिणमित किया जा सकता है। इसी प्रकार मार्दव परिणाम वाले विनम्र जीव ही परमात्मा होने में शक्य हैं।

विणदो सया समत्थो, ओग्गहेदुं बहुगुणा दु अप्पस्स।
बहुदोसा हणेदुं च, दुग्गइ-आइ-पाव-कम्माणि॥631॥

विनम्र जीव ही सदैव आत्मा के बहुत गुणों को ग्रहण करने में समर्थ है। विनम्र स्वभावी ही आत्मा के बहुत दोषों को एवं दुर्गति आदि पाप कर्मों के क्षय करने में समर्थ है।

सम्मत्तं सण्णाणं, वेरग्ग-वच्छल-वद-तवा विणदो।
पावदि कमेण मोक्खं, विणओ मोक्खदारं णेयं॥632॥

विनम्र स्वभावी, मार्दव गुण से युक्त जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वैराग्य, वात्सल्य व तप को प्राप्त करता है। क्रमशः मोक्ष प्राप्त करता है। विनय मोक्ष का द्वार जानना चाहिए।

सक्केदि खमं करिदुं, मिदुभावजुदो-जीवो सुवण्णं व।
सगसहावं ण विजहदि, मरिसित्तु अणेगपहारं वि॥633॥

मृदु, ऋजु वा कोमल परिणामों से युक्त जीव ही सर्वदा क्षमा करने में समर्थ होता है। वह स्वर्ण के समान होता है। वह अनेक प्रहारों को सहकर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता।

भू-ठिद-वत्थुं गहिदुं, णमंतो णरो हि समत्थो णिच्चं।
णमणं विणा बहुमुल्ल-वत्थुं गहिदुं खमो ण को वि॥634॥

पृथ्वी पर स्थित वस्तु को ग्रहण करने के लिए नित्य झुकता हुआ मनुष्य ही समर्थ है। झुके बिना, विनम्र हुए बिना कोई भी बहुमूल्य वस्तु को ग्रहण करने में समर्थ नहीं है।

जह सलिलं पवहेदि य, समुद्द-तडागाइं गड्ढं पडि य।
मद्दव-गुण-जुत्तं पडि, गच्छदि अप्पस्स सव्वगुणा॥635॥

जिस प्रकार पानी समुद्र, सरोवर वा गड्ढे आदि की ओर प्रवाहित होता है उसी प्रकार आत्मा के सर्व गुण मार्दव गुण से युक्त व्यक्ति की ओर चले जाते हैं।

जाइ-कुल-रूव-धण-सद्द-णाण-विज्जा-तव-बल-पूया।
पुण्ण-पद-पदिट्ठादी, हवेज्जा हि माण-कारणं च॥636॥

जाति, कुल, रूप, धन, शब्दज्ञान, विद्या, तप, बल व पूजा और पुण्य पद व प्रतिष्ठा मान के कारण हो सकते हैं।

रस-साद-इड्ढि-गारव-चागेण विणा मद्दवधम्मो णो।
मद्दव-धम्म-संजुदो, उस्सिक्केज्जा गव्वभावं॥637॥

रस गारव, सात गारव और ऋद्धि गारव को त्याग किए बिना मार्दव धर्म नहीं हो सकता। मार्दव धर्म से युक्त जीव गर्वभाव का सर्वदा त्याग करता है।

सगप्पगुणदाहगा य, मूलघादगा मूसगोव्व माया।
तम्हा कवडी ण लहदि, हिदयरं चिय अज्जवधम्मं॥638॥

मायाचारी निज आत्मा के गुणों को जलाने वाली है। वह चूहे के समान जड़ का नाश करने वाली है। अतः कपटी व्यक्ति हितकारी आर्जवधर्म को प्राप्त नहीं करता।

भिण्ण-भिण्ण-भाव-जुदा, पवित्ती तह मण-वयण-कायाणं।
जस्स सो दु मायावी, तिरियाइ-दुग्गइ-कारणं च॥639॥

जिसकी मन, वचन व काय की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न भाव से युक्त होती है वह मायावी है। मायामयी यह प्रवृत्ति तिर्यंच आदि दुर्गति का कारण होती है।

तिजोग-पवित्ती होदि, जावदु सुद्ध-एगट्ठ-रूवा णो।
तावदु सरल-भावो ण, फुट्टदि अक्कं विणा करोव्व॥640॥

जब तक तीनों योगों की प्रवृत्ति शुद्ध एकत्व रूप नहीं होती तब तक भाव सरल वैसे ही नहीं होते जैसे सूर्य के बिना सूर्य की किरणें प्रस्फुटित नहीं होतीं।

बहु-पत्त-पुप्फ-फल-जुद-रुक्खमूले णट्ठे जह खयदि सो।
तह मायायारेणं, खयदि सव्वहिदयरो धम्मो॥641॥

बहुत पत्तों, पुष्पों व फलों से युक्त किसी वृक्ष की जड़ को नष्ट कर देने पर जिस प्रकार पुष्पादि से समन्वित संपूर्ण वृक्ष नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मायाचारी से सर्व हितकारी धर्म नष्ट हो जाता है।

तरु-विड्ढी असंभवो, मूले णट्ठे जह तह हि रुक्खस्स।
धम्मविड्ढिं कुणेदुं, णेव सक्को मायायारी॥642॥

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ नष्ट करने पर वृक्ष की वृद्धि असंभव हो जाती है उसी प्रकार मायाचारी धर्म रूपी वृक्ष की वृद्धि करने में अशक्य है। अर्थात् निश्छलता, सरलता, सहिष्णुता धर्म के मूल के समान है।

वक्कगदीए चलदे, भूमीए णियगिहपवेसयाले।
णवरि सरलगमणं चिय, पकुव्वेदि भुयंगो लोए॥643॥

संसार में देखा जाता है कि साँप भूमि पर वक्रगति से चलता है किन्तु अपने घर के प्रवेश के काल में वह सीधा गमन करता है अर्थात् निजात्म-गृह में प्रवेश हेतु सरलता ही एक मार्ग है।

जावदु वक्कपवित्तिं, कुणदि तावदु दुहं पावदि लोए।
सरलभावाभावम्मि, असंभवो सिवमग्गे गदी।।644।।

जब तक जीव वक्र प्रवृत्ति अर्थात् छल युक्त प्रवृत्ति करता है तब तक लोक में वह दु:ख ही प्राप्त करता है। निश्छल-सरल भावों के अभाव में मोक्षमार्ग पर गति असंभव है।

जावइय-सरल-सहजो, गंभीरो तावइय-अप्पणियडो।
सरलस्स फुडदि णाणं, सम्मत्तं तवो वेरग्गं।।645।।

जीव जितना सरल, सहज व गंभीर होता है वह उतना ही आत्मा के निकट होता है। सरल-निश्छल जीव के ही ज्ञान, सम्यक्त्व, तप व वैराग्य प्रस्फुटित होता है।

लोय-ववहारे सव्व-णरा मुणंति दीहो वक्कमग्गो।
सरलो लहु-मग्गो किं, णो पालेज्ज अज्जवधम्मं।।646।।

लोकव्यवहार में सभी लोग जानते हैं कि टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता लंबा होता है और सरल-सीधा मार्ग छोटा होता है तब व्यक्ति सरल आर्जव धर्म का पालन क्यों नहीं करता?

सुत्तं गंथिजुदं चिय, दिग्घं वि लहू जह तह णियमादो।
गंठिल्लो लहु-जीवो, गंठि-हीणो दीह-जीवी य।।647।।

जिस प्रकार गाँठे लगा हुआ बड़ा धागा भी छोटा लगता है उसी प्रकार कषायादि की गाँठ से युक्त लघुजीवी होता है जबकि सभी प्रकार की अंतरंग ग्रंथियों से हीन दीर्घजीवी होता है।

जाण संजमीण होज्ज, उक्किट्ठ-रूव-संजम-परिणामा।
ते संजमी समत्था, फुडिदु-मुत्तम-अज्जव-मप्पे।।648।।

जिन संयतों के उत्कृष्ट रूप संयम के परिणाम होते हैं वे संयमी अपनी आत्मा में उत्तम आर्जव धर्म प्रकट करने में समर्थ होते हैं।

अप्पगुणा अहिऊलदि, सव्वदा अग्गीव लोहकसायो।
तं समेदुं समत्थो, सम-समत्तभावो जीवस्स।।649।।

लोभ कषाय अग्नि के समान है जो आत्म-गुणों को जलाकर राख कर देती है। उस लोभ कषाय का शमन करने में जीव के शम व समत्व भाव ही समर्थ हैं।

पक्खालिदुं समत्थो, पंकं व लोहं संतोसणीरं।
विणा संतोसजलेण, णेव को वि णिम्मलो अप्पा॥650॥

कीचड़ के समान लोभ कषाय का प्रक्षालन करने में सदा संतोष रूपी जल ही समर्थ है। संतोष रूपी जल के बिना कोई भी आत्मा कभी निर्मल नहीं होती।

भव-भमणस्स कारणं, लोहकसाओ जिणेहि णिद्दिट्ठो।
जो तं लोहं खयदे, तिलोय-जई दु सो तित्थोव्व॥651॥

लोभकषाय संसार-परिभ्रमण का कारण है, ऐसा जिनेंद्र भगवन्तों के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। जो उस लोभ को नष्ट कर देता है वही तीर्थंकर के समान तीनों लोकों का विजेता होता है।

खेडगं व खमा तहा, असीव मद्दव-मज्जवं कवयोव्व।
भवं जयिदुं सुदंसण-चक्कं व सया सउच-धम्मो॥652॥

क्षमा ढाल के समान, मार्दव धर्म तलवार के समान, आर्जव धर्म कवच के समान एवं संसार को जीतने के लिए शौच धर्म सुदर्शन चक्र के समान है।

चित्त-सुई असक्को दु, विणा पक्खालेदुं लोहपंकं।
चित्त-सुइं विणा धम्म-बीअं च णिप्फज्जदे णेव॥653॥

लोभ रूपी कीचड़ का प्रक्षालन किए बिना चित्त की पवित्रता अशक्य है। और चित्त की पवित्रता के बिना चित्त में धर्म का बीज निष्पन्न नहीं होता।

रयणत्तयबलेणं दु, खयेदि कोहं जो पुण्णरूवेण।
सो जदी णिप्पमादो, मुत्ति-कंतो तब्भवे होदि॥654॥

जो रत्नत्रय के बल से पूर्ण रूपेण क्रोध को नष्ट कर देता है वह निष्प्रमाद (अप्रमत्त) योगी उसी भव में मुक्ति रूपी स्त्री का पति होता है।

पाणवाउं विणा जह, कस्स वि जीवणं दु संभवो णेव।
धम्मस्स जीवणं तह, चित्तस्स सोअवियाइ विणा।।655।।

जिस प्रकार प्राणवायु के बिना किसी भी जीव का जीवन संभव नहीं है उसी प्रकार चित्त की पवित्रता के बिना धर्म का जीवन संभव नहीं है अर्थात् चित्त-विशुद्धि धर्म का प्राण है।

लोह-सेट्ठो ण कया वि, पावपइडी हि लोहो णियमेणं।
धम्मलद्धीइ भावं, करेज्ज लोह-मवहेडिदूण।।656।।

लोभ कभी भी श्रेष्ठ नहीं होता। लोभ नियम से पाप प्रकृति है। लोभ का त्यागकर धर्मोपलब्धि के भाव करने चाहिए।

धण-लोही णेव लहदि, णिरामय-जोव्वणं पदं पदिट्ठं।
सारज्जं सुह-दायग-बहु-विहवं कया संपत्तिं।।657।।

धन का लोभी कभी भी आरोग्य युक्त यौवन, पद, प्रतिष्ठा, स्वर्ग साम्राज्य, सुख का कारक बहुत वैभव व संपत्ति को प्राप्त नहीं करता।

लोही ण लहदि कया वि, सम्मत्ताइ-धम्म-णिम्मल-भावं।
णो जसं तवं झाणं, तं उज्झेज्ज सवरहिदत्थं।।658।।

लोभी सम्यक्त्वादि धर्म के निर्मल भावों को कभी प्राप्त नहीं करता। वह यश, तप व ध्यान भी प्राप्त नहीं करता अतः स्वपर हित के लिए उस लोभ का त्याग करना चाहिए।

रुक्ख-मूलं दु बीअं, घिदस्स दुद्धं गंधस्स पुप्फं च।
सिवस्स मूलं धम्मो, जह तह पावमूलं लोहो।।659।।

जैसे वृक्ष का मूल बीज, घी का दूध, गंध का पुष्प और मोक्ष का मूल धर्म है वैसे ही पाप का मूल लोभ है।

जो साहू सग-अप्पे, फुडदि वर-सउच-धम्मं जदणेणं।
भवसायर-तड-णियडे, सो मुणिंदो मण्णेज्ज सया।।660।।

जो साधु अपनी आत्मा में यत्नपूर्वक उत्तम शौच धर्म को प्रकट करता है वह मुनींद्र सदैव भव सागर के निकट माना जाता है।

सुद्धुवजोग-संजुदो, उत्तम-सउच-धम्म-जुत्तो जो सो।
सुहुवजोग-संजुदो हि, सउच-धम्म-जुदो णादव्वो॥661॥

जो साधु शुद्धोपयोग से युक्त है वह तो उत्तम शौचधर्म से युक्त है ही किन्तु जो शुभोपयोग से युक्त है वह भी शौचधर्म से संयुक्त जानना चाहिए।

जह लोयस्साहारो, वादवलयो तह सुतलं भवणस्स।
धम्माहारो उत्तम-सउच-धम्मो य तिक्कालम्मि॥662॥

जैसे लोक का आधार वातवलय है, भवन का आधार नींव है उसी प्रकार तीनों कालों में धर्म का आधार उत्तम शौच धर्म है।

अंकेण विणा सुण्णं, जह संखं उप्पादिदु-मसमत्थो।
सच्चेण विणा किरिया, का वि धम्मफलं दायेदुं॥663॥

जैसे अंक के बिना शून्य संख्या उत्पन्न करने में असमर्थ है उसी प्रकार सत्य के बिना कोई भी क्रिया धर्म का फल देने में असमर्थ है।

सव्वजीवेसु अप्पा, विज्जेज्जा समरूवेणं सया हि।
णेव कस्सिं वि अप्पे, णूणाहिय-पदेसा गुणा वि॥664॥

सर्व जीवों में आत्मा सदैव ही समान रूप से विद्यमान है। किसी भी आत्मा में प्रदेश या गुण कम या ज्यादा नहीं हैं। (प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी व अनंत गुणों से युक्त है।)

धम्म-पाणो दु सच्चं, उप्पालिदं सव्वण्हु-जिणवरेहि।
सच्चं विणा णो को वि, सक्कदि सवरहिदं करेदुं॥665॥

सत्य, धर्म का प्राण है ऐसा सर्वज्ञ जिनवरों के द्वारा कहा गया है। सत्य के बिना कोई भी स्वपर हित करने में समर्थ नहीं होता।

मण्णंति सच्चरूवं, जहवि सच्चवयणं स-धीइ लोए।
तदवि ववहारम्मि तं, अणुव्वद-महव्वद-धम्मो दु॥666॥

यद्यपि लोक में सत्य वचन को अपनी बुद्धि से लोग सत्य रूप मानते हैं। तद्यपि व्यवहार में वह सत्यधर्म अणुव्रत व महाव्रत धर्म रूप है।

ववहारे सच्चं दहविहं जाणेज्जा सिआवायेणं।
तेण विणा ण समत्थो, छउमत्थो जाणिदुं सच्चं।।667।।

स्याद्वाद से व्यवहार में दस प्रकार के सत्य जानने चाहिए। उस स्याद्वाद के बिना कोई भी छद्मस्थ सत्य को जानने में समर्थ नहीं है।

जणवद-सम्मदि-ठवणा-णाम-रूव-पडुच्च-ववहार-सच्चं।
संभावणा य भावो, उवमा तहा दसविह-सच्चं।।668।।

जनपद, सम्मति, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत्य, व्यवहार, संभावना, भावना एवं उपमा इस प्रकार दस प्रकार के सत्य कहे गए हैं।

णिच्छयेण चेयणाइ-भावो सच्चं अणुभवरूवंतं।
सद्दहीणो अणुभवो, सगणुभवो सय सच्चरूवं।।669।।

निश्चय से सत्य चेतना का भाव है, वह सत्य अनुभव रूप है और अनुभव शब्दहीन है। प्रत्येक के लिए अपना अनुभव सदैव सत्यरूप ही होता है।

सच्चेण ठिदा णिरये, णेरइया भवणवासी भवणेसु।
वइमाणिगा विमाणेसु, णिच्चणिगोदिया कलकलम्मि।।670।।
थावरा सव्वलोए, वियलिंदिया अढाइज्जदीवेसु।
सिद्धा सिद्धखेत्तम्मि, जाव सच्चं ताव धम्मो दु।।671।।

सत्य (शाश्वत सिद्धांत) से ही नारकी नरक में, भवनवासी भवनों में, वैमानिक विमानों में, नित्यनिगोदिया कलकल भूमि में, स्थावर सर्वलोक में, विकलेन्द्रिय ढाईद्वीप में एवं सिद्ध सिद्धक्षेत्र में स्थित हैं। जब तक सत्य है तब तक धर्म है।

धम्माधम्मा यालायासा व णिच्चं सस्सदं सुद्धं।
सच्चं दु अणादीदो, धम्म-पाणो सव्व-हिदेसी।।672।।

जिस प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य और आकाश द्रव्य नित्य व शाश्वत शुद्ध हैं उसी प्रकार सत्य अनादिकाल से नित्य व शाश्वत शुद्ध है। सत्य धर्म का प्राण है और स्वपर-हितैषी है।

असच्चं दुक्ख-हेदू, दुग्गदि-कारणं तह पावाणं पि।
भमाविदुं दीहभवे, एग-मसच्चं हि पज्जत्तं।।673।।

असत्य दुःख का हेतु है। यह असत्य पाप व दुर्गति का कारण है। दीर्घ संसार में परिभ्रमण कराने के लिए एक असत्य ही पर्याप्त है।

लोयम्मि कं वि पावं, सक्को बंधिदु-मसच्चेण जीवो।
कं सुहं ण पदायिदुं, सच्चं समत्थो तिलोएसु॥674॥

लोक में जीव असत्य से किसी भी पापकर्म का बंध करने में समर्थ है। तीनों लोकों में कौन-सा सुख प्रदान करने में सत्य समर्थ नहीं है? अर्थात् सत्य सर्व सुख देने में समर्थ है।

उत्तम-सच्चं धम्मं, अणुभवदि जोगी सुद्धुवजोगम्मि।
सच्च-सादं लहेदुं, ण को वि समत्थो तेण वि णा॥675॥

योगी शुद्धोपयोग में उत्तम सत्यधर्म का अनुभव करता है। उसके बिना कोई भी सत्य का स्वाद लेने में समर्थ नहीं है।

जावइयं पुण्णफलं, पस्सिदुं समत्थो तुमं लोयम्मि।
सव्वं सच्च-धम्मस्स, विणिद्दोस-पालण-सुफलं दु॥676॥

लोक में जितना पुण्य का फल देखने में आप समर्थ हो वह सब सत्यधर्म के निर्दोष पालन का ही सुफल है।

पक्खी पसू य मच्छा, बंधिदुं पंजरं रज्जू जालं।
जह तह समत्था सया, असंजमो हंदि भव्वुल्ला॥677॥

जिस प्रकार पिंजरा पक्षियों को, रस्सी पशुओं को और जाल मछलियों को कैद करने में समर्थ है उसी प्रकार असंयम भव्यों को संसार में बांधने में समर्थ है।

णीरे चलिदु-मसक्का, बंधिददोणीव अंकुडगेणं दु।
असंजमी असमत्थो, रीदुं च णिव्वाणमग्गम्मि॥678॥

जैसे खूंटे से बंधी हुई नाव पानी में चलने में अशक्य है उसी प्रकार असंयमी मोक्षमार्ग पर चलने में असमर्थ है।

मोक्खं लहिदु-मसक्को, मोहाविट्ठो जीवो णिच्छयेण।
कच्छभूए परिलग्ग-णावा व तं णाणं लहेज्ज॥679॥

जिस प्रकार दलदल में फँसी हुई नाव आगे बढ़ने में असमर्थ होती है उसी प्रकार मोह दलदल में फँसा हुआ जीव निश्चय से मोक्ष प्राप्त करने में अशक्य होता है। अतः सम्यग्ज्ञान का अर्जन करना चाहिए।

देसवदी सिवमग्गे, ठिदो णेव सो गदिवंतो जम्हा।
सयलसंजमेण विणा, सिवपहे असंभवो गमणं।।680।।

देशव्रती मोक्षमार्ग में स्थित है, वह मोक्षमार्ग पर गतिमान नहीं है। क्योंकि सकलसंयम के बिना मोक्षमार्ग पर गमन असंभव है।

जह सरिदाए तीरे, ठिदो पस्सेज्ज विदिय-तडं मेत्तं।
संजम-तरणीइ विणा, ण सक्को अवरतडं लहिदुं।।681।।

जिस प्रकार नदी के एक किनारे पर खड़ा हुआ व्यक्ति मात्र दूसरे किनारे को देख ही सकता है, उस तक पहुँच नहीं सकता उसी प्रकार संयम रूपी नाव के बिना भव्यजीव संसार के दूसरे तट को प्राप्त करने में समर्थ नहीं है।

असंजमो बेविहो दु, इंदिय-पाणि-असंजम-भेयादो।
पत्तेयं छव्विहं च, जहक्कमेण जाणेज्ज सया।।682।।

इंद्रिय असंयम व प्राणी असंयम के भेद से असंयम दो प्रकार का है। प्रत्येक इंद्रिय व प्राणी असंयम भी यथाक्रम से सदैव छह प्रकार का जानना चाहिए।

जंतणं च पंचिंदिय-मणाणं इंदिय-संजमो णेयो।
पाणी-संजमो तहा, जीवरक्खणं छक्कायाण।।683।।

पंचेन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) और मन को वश में करना इंद्रिय संयम जानना चाहिए तथा षट्काय जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है।

उत्तमसंजमधम्मं, गहिदुं जह तह संजमी समत्था।
फलं देदुं समत्थं, पुप्फं णो कंडग-पत्ताणि।।684।।

जिस प्रकार पुष्प ही फल देने में समर्थ हैं, काँटे व पत्ते नहीं उसी प्रकार उत्तम संयम धर्म को ग्रहण करने के लिए संयमी समर्थ होते हैं।

जह बालो होदि जुवा, जुवा पुणो बुड्ढो सम्मादिट्ठी।
तह अणुव्वदी हि सयलसंजदो णिच्छय-धम्मजुदो॥685॥

जिस प्रकार एक बालक युवा, युवा वृद्ध होता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ही अणुव्रती, सकलसंयमी और पुनः वह ही निश्चय धर्म से युक्त होता है।

जह रक्खंति सगणिवं, अंगरक्खगा दु बहुपयारेणं।
तह संजमधम्मो अप्पं सया लोए सुरक्खेदि॥686॥

जिस प्रकार अंगरक्षक बहुत प्रकार से अपने राजा की रक्षा करते हैं उसी संयमधर्म सदैव लोक में आत्मा की रक्षा करता है।

कवयोव्व जोहाणं च, बादाम-अक्खोडाण तक्खणं व।
अप्पं संजम-धम्मो, रक्खदि जीव-गुणं सहावं॥687॥

जिस प्रकार कवच सैनिकों की रक्षा करता है, बादाम व अखरोट के छिलके उसकी गिरि की रक्षा करते हैं उसी प्रकार संयम धर्म सदैव आत्मा की रक्षा करता है, जीव के गुण व स्वभाव की रक्षा करता है।

वाहणं रोहगोव्व य, अस्सं वग्गा व गयं अंकुसोव्व।
णियंतेदुं सगप्पं, संजमधम्मो मुणेदव्वो॥688॥

जिस प्रकार वाहन को नियंत्रित करने के लिए ब्रेक है, घोड़े को नियंत्रित करने के लिए लगाम और हाथी को नियंत्रित करने के लिए अंकुश है उसी प्रकार अपनी स्वात्मा को नियंत्रित करने के लिए संयम धर्म जानना चाहिए।

संजमधम्मेण विणा, णेव को वि हु मोक्खमग्गी कया वि।
तित्थाइ-महाणरा वि, गहित्तु संजमं सिवपहिया॥689॥

संयम धर्म के बिना कोई भी कदापि मोक्षमार्गी नहीं होता। तीर्थंकरादि महापुरुष भी संयम ग्रहण करके ही मोक्षमार्ग के पथिक बने थे।

जिणभवणं व संजमो, तस्सुवरि सय सिहरं व सम्मतवो।
सिहरं विणा मंदिरं, तवं विणा संजमो जह तह।।690।।

संयमधर्म जिनमंदिर के समान है और सम्यक् तप उसके ऊपर शिखर के समान है। जिस प्रकार शिखर के बिना मंदिर शोभाहीन होता है उसी प्रकार तप के बिना संयम शोभाहीन है।

सीयलत्तं जह णीर-धम्मो अग्गिस्स दाहगो णहस्स।
अमुत्तिगो तहा तवो, अप्प-सोहगो तवस्सीणं।।691।।

जिस प्रकार जल का धर्म या स्वभाव शीतलता है, अग्नि का धर्म दाहक, आकाश का धर्म अमूर्तिक है उसी प्रकार तपस्वियों का धर्म आत्मा का शोधन करने वाला तप है।

अग्गी सोहदि धादुं, णीरं वत्थाइं जोगो देहं।
जह तह सोहदि अप्पं, तव-धम्मो सया बोहव्वो।।692।।

जिस प्रकार अग्नि धातु को शुद्ध करती है, नीर वस्त्रादि को शुद्ध करता है, योग देह को शुद्ध करता है उसी प्रकार तपधर्म सदैव आत्मा का शोधन करता है ऐसा जानना चाहिए।

भवभमणं णासेदुं, बज्झंतर-बारस-तवा अत्थं व।
पहाणसही इव मुत्तिकंताए मोक्ख-सोवाणं।।693।।

भव भ्रमण के नाश के लिए बाह्य व अभ्यंतर ये 12 तप अस्त्र के समान हैं। तप मोक्ष का सोपान एवं मुक्तिरूपी स्त्री के लिए सखी के समान है।

सेदूव सुतव-धम्मो, णित्थारिदुं भवसायर-घोरादु।
तवं गहिदुं समत्था, मेत्तं माणुसा अण्णा णो।।694।।

उत्तम तपधर्म इस घोर संसार सागर से पार करने के लिए सेतु के समान है। उत्तम तपधर्म को ग्रहण करने में मात्र मनुष्य ही समर्थ हैं अन्य गति के जीव नहीं।

विणा रयणत्तयेणं, णो संजमो णो तवो णो चागो।
णेव तह बंभचेरं, तम्हा ववसेज्ज गहिदुं तं॥695॥

रत्नत्रय के बिना संयम नहीं होता, तप नहीं होता, त्यागधर्म नहीं होता और ब्रह्मचर्य धर्म भी नहीं होता। इसलिए रत्नत्रय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अग्गि-सामगं णीरं, रुक्ख-विआसगं पि मल-खालगं च।
भू-संताव-हारगं, जह तह सव्वदा जाणेज्जा॥696॥
संसारतावहारग-तवो अप्पगुणविआसगो णिच्चं।
मिच्छातमहारगोय, घादि-कम्मप्पणासगोअवि॥697॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार जल अग्नि को बुझाने वाला, वृक्ष को विकसित करने वाला, मल साफ करने वाला और पृथ्वी के संताप को दूर करने वाला जाना जाता है उसी प्रकार तप धर्म संसार के ताप का हरण करने वाला, नित्य आत्म-गुणों का विकास करने वाला, मिथ्यात्व रूपी अंधकार का हरण करने वाला और घाति कर्म का नाश करने वाला है।

उदर-सोहग-हरडई, जह तह बलवड्ढगा घिदकुमारी।
मलसोहगं च तक्कं, पीडावहारगा हलिद्दा॥698॥
विइडिणासग-संजमो, बलदायगो सुतवो दु विण्णेयो।
पीडाहारग-चागो, कम्म-विघादग-मकिंचणं च॥699॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार उदर का शोधन करने वाली हरड़, बल का वर्द्धन करने वाली घृतकुमारी, मल शोधक मट्ठा और पीड़ा का हरण करने वाली हल्दी है उसी प्रकार विकृति का नाश करने वाला संयम, बल देने वाला तप, पीड़ा को हरने वाला त्याग और कर्म का घात करने वाला अकिंचन धर्म जानना चाहिए।

धूगो पस्सिदु-मक्कं, जह तवं कुणिदुं दीहसंसारी।
तह जोगीण तियाले, णं किंचिवि असज्झं तवेण॥700॥

जिस प्रकार उल्लू सूर्य को देखने में असमर्थ है उसी प्रकार दीर्घसंसारी तप करने में असमर्थ है। योगियों के लिए तीनों कालों में तप के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है।

णिरयाउ-बंधगो जह, असक्को वंदेदु च सम्मेदं।
सम्मतवं कुणिदु तह, णो सक्को दीहसंसारी॥701॥

जिस प्रकार नरक आयु का बंधक सम्मेदशिखर की वंदना करने में अशक्य है उसी प्रकार दीर्घसंसारी सम्यक् तप करने में शक्य नहीं है।

चागं करेज्ज णियमा, परवत्थूणं तह परभावाणं।
सगणायज्जिद-धणस्स, सदुवजोगं पत्तदाणेण॥702॥

परवस्तुओं और परभावों का नियम से त्याग करना चाहिए। अपने न्यायार्जित धन का पात्रदान आदि के माध्यम से सदुपयोग करना चाहिए।

आहार-ओसहि-णाण-अभय-वसदि-उवयरणाणं दाणं।
सत्तपुण्णखेत्तेसु वि, दाएज्ज सत्तीइ हिदत्थं॥703॥

स्वपर हित के लिए शक्तिपूर्वक आहारदान, औषधिदान, ज्ञान- दान, अभयदान, वसतिकादान और उपकरणदान देना चाहिए एवं सप्त पुण्य क्षेत्रों में भी दान देना चाहिए।

गिहाइ-दसविहं बज्झ-परिग्गहं उज्झंति सया जोगी।
मिच्छत्ताइ-चउदसं, अंतरगंथं सगसत्तीइ॥704॥

योगी गृह आदि दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का सदैव त्याग करते हैं एवं अपनी शक्ति के अनुसार मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह का भी त्याग करते हैं।

चागुक्किट्ठा रूवा, दियंबर-साहू अस्सिं लोयम्मि।
मुत्तित्थीए सामी, हवेदुं समत्था हंदि ते॥705॥

इस लोक में त्याग का उत्कृष्ट रूप दिगंबर साधु हैं। वे निर्ग्रन्थ साधु ही मुक्ति रूपी स्त्री के स्वामी होने में समर्थ होते हैं।

होही होदि हविस्सदि, ण को वि तिलोयपदी विणा चागं।
चागादो सुह-संती, णियप्प-सस्सदा विहूदी हु॥706॥

त्याग के बिना कोई भी न तो त्रिलोकीनाथ हुआ था, न हुआ है और न ही होगा। त्याग से ही सुख व शांति प्राप्त होती है और निजात्मा की शाश्वत विभूति भी त्याग से ही प्राप्त होती है।

मुत्ति-सुंदरिं गहिदुं, चागधम्मो दु पत्तववहारोव्व।
ण कंखदि जोगिं मुत्ति-कंता विणा वर-चागेणं॥707॥

मुक्ति-सुंदरी को ग्रहण करने के लिए त्यागधर्म पत्र व्यवहार के समान है। उत्तम त्याग के बिना मुक्ति रूपी स्त्री योगी की आकांक्षा नहीं करती।

पत्तदाणेण जीवो, भोयभूमिया होज्जा इंदादी।
कमसो तित्थयरादी, ण सिज्झदि को वि विणा दाणं॥708॥

आहारदान से ही जीव भोगभूमिया व इंद्रादि होता है। क्रम से तीर्थंकर होता है। दान के बिना कोई भी मुक्ति प्राप्त नहीं करता।

णाणस्स णाणदाणं, उक्किट्ठ-खओवसम-हेदू जाण।
णाणावरण-खयस्स वि, केवलणाण-पत्तीए पुण॥709॥

ज्ञानदान को ज्ञान के उत्कृष्ट क्षयोपशम का हेतु जानना चाहिए। वह ज्ञानदान ही ज्ञानावरण कर्म के क्षय का और पुनः केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण है।

ओसहिदाणेण मोक्ख-पज्जंतं णिरामयो चिय जीवो।
किं सेवेदि ओसहिं, सो जो दायदि सुपत्ताणं॥710॥

औषधिदान से जीव मोक्ष पर्यन्त निरोगी रहता है। जो सुपात्रों को औषधिदान देता है वह फिर औषधिसेवन क्यों करता है? अर्थात् औषधिदान देने वाले को स्वयं औषधि की आवश्यकता नहीं पड़ती।

लहदि संजमुवयरणं, अग्गे उवयरणदाणेण जीवो।
सेट्ठभवसुहं भुंजिय, भुंजदि सिद्धसुहं णियमेण॥711॥

उपकरण दान से जीव स्वयं संयमोपकरण प्राप्त करता है। आगे श्रेष्ठ संसार सुख को भोगकर नियम से सिद्ध-सुख भोगता है।

अभयदाणेण जीवो, णिब्भयो सय तिलोए तिक्काले।
तस्स दु भयवदोव्व सो, जो देदि जस्स अभयदाणं।।712।।

अभयदान से जीव दोनों लोकों में त्रिकाल में सदैव निर्भय होता है। जो जिसके लिए अभयदान देता है वह उसके लिए भगवान् के समान होता है।

छउमत्थो ण समत्थो, वण्णेदुं उत्तमदाणाइफलं।
पुण्णफलं वण्णेदुं, गणहरो अवि समत्थो णेव।।713।।

छद्मस्थ जीव उत्तम दानादि के फल का वर्णन करने में समर्थ नहीं है। दान के फल का पूर्ण वर्णन करने में गणधर भी समर्थ नहीं है।

णो मे किंचिवि वत्थुं, अस्सिं लोए सय चिंतंति मुणी।
सगचदुट्ठयम्मि सया, सव्वत्थ चिट्ठंति वट्टंति।।714।।

मुनि सदैव चिंतन करते हैं कि इस लोक में किंचित् भी वस्तु मेरी नहीं है। वे सदैव सर्वदा स्वचतुष्टय में ही ठहरते हैं और वर्तन करते हैं।

सगचदुट्ठयेण विणा, परचदुट्ठयस्स पदेसेगो अवि।
णेव होज्ज कयावि मे, हं णेव कयावि परूवो।।715।।

स्वचतुष्टय के बिना परचतुष्टय का एक प्रदेश भी कदापि मेरा नहीं है। और मैं कदापि पररूप नहीं हूँ।

परभावा य पदत्था, पररूवा चिय अणाइयालादो।
अज्जं अवि पररूवा, भविस्से वि सया पररूवा।।716।।

परभाव और परपदार्थ अनादिकाल से पररूप ही हैं। ये परभाव व परपदार्थ आज भी पररूप ही हैं और भविष्य में भी पररूप ही रहेंगे।

आसी अत्थि होस्सेदि असंखेज्जपदेसी मज्झ अप्पा।
ण णूणाहिया सस्सद-सिद्धंत-अपरिवट्टणीयो।।717।।

मेरी आत्मा असंख्यातप्रदेशी थी, असंख्यातप्रदेशी है और असंख्यातप्रदेशी ही रहेगी। वे आत्मप्रदेश न कम हैं, न ज्यादा। ये सिद्धांत शाश्वत व अपरिवर्तनीय है।

पोग्गलेण सह अप्पा, वियडिरूवो य विहावसंजुत्तो।
अप्पा होज्जा सुद्धो, पोग्गल-संजोग-मुज्झित्ता॥718॥

पुद्गल के साथ आत्मा विकृतिरूप और विभावयुक्त होती है। पुद्गल संयोग का त्याग कर ही आत्मा शुद्ध हो सकती है।

परमट्ठेणं सुद्धो, ण विहाव-अत्थ-विंजण-पज्जाया।
णो मज्झं णोकम्मं, दव्वकम्मं भावकम्मं ण॥719॥

मैं परमार्थ से शुद्ध हूँ। विभावअर्थ-व्यंजन पर्याय मेरी नहीं हैं। ये नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्म मेरे नहीं हैं।

परवत्थुगहणभावो, संसारकारणं णिच्चं तहेव।
परवत्थुचागभावो, अवि णिव्वाण-कारणं हंदि॥720॥

पर-वस्तुओं के ग्रहण का भाव नित्य ही संसार का कारण है उसी प्रकार पर-वस्तु के त्याग का भाव भी निर्वाण का कारण है।

मुत्तिसुंदरीए सह, आकिंचणं दु विवाहणिच्छयोव्व।
वागदाणेणं विणा, णेव विवाहो सिट्ठ-णराण॥721॥

आकिंचन धर्म मुक्ति सुंदरी के साथ सगाई के समान है। वाग्दान के बिना शिष्ट लोगों का विवाह नहीं होता।

वर-आकिंचण-धम्मो, सिद्धत्त-णियामगहेदू मुणीण।
घादिकम्मक्खयादो, अणंतचदुट्ठयं पावेदि॥722॥

मुनियों का उत्तम अकिंचन धर्म सिद्धत्व का नियामक हेतु है। घातिकर्म के क्षय से जीव अनंत चतुष्टय प्राप्त करता है।

करिदु-मप्पकल्लाणं, तप्परो सय विसयभोयविरत्तो।
जीवरक्खाइ पढमं, धारेदि वदं बंभचेरं॥723॥

विषय-भोग से विरक्त जीव सदैव आत्मकल्याण करने में तत्पर होता है। वह जीवरक्षा के लिए सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व्रत को ही धारण करता है।

परमधम्मो अहिंसा, सच्चाइ-वदाणि ताइ पुट्ठीए।
सव्वत्थ सव्वदा चिय, उत्तमवदं बंभचेरं हि॥724॥

अहिंसा परम धर्म है। सत्यादि व्रत उस अहिंसा धर्म की पुष्टि के लिए ही हैं। उत्तम ब्रह्मचर्य ही सर्वत्र और सर्वदा उत्तम व्रत है।

अबंभं विसयमूलं, पहाणहेदू भोगासत्तीए।
पहाण-मत्थं व सया, घादेदुं अप्पं अबंभं॥725॥

अब्रह्म विषयों का मूल है। वह भोगों में आसक्ति का प्रधान हेतु है। आत्मा का घात करने के लिए अब्रह्म सदैव ही प्रधान अस्त्र की तरह है।

विसयविरत्तीइ विणा, अणु-महव्वदा पुण्ण-सत्थगा णो।
भोगासत्तीए सह, कहं वदं तवो तह झाणं॥726॥

विषय-विरक्ति के बिना अणुव्रत और महाव्रत पूर्ण सार्थक नहीं होते। भोगासक्ति के साथ व्रत, तप व ध्यान कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते।

सगपरमप्पाणुभूदि-कारण-मुत्तमबंभचेर-धम्मो।
सुद्धुवजोगो दु णेव, संभवो विणा बंभचेरं॥727॥

उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म स्व-परमात्मानुभूति का कारण है। ब्रह्मचर्य के बिना शुद्धोपयोग संभव नहीं है।

बंभो तिलोयपुज्जो, परिणयणस्स दु मुत्तिसुंदरीए।
वरमाला व विणा तं, कहं विवाहो चिय लोयम्मि॥728॥

ब्रह्मचर्य त्रिलोकपूज्य है। मुक्ति सुंदरी से विवाह करने के लिए ब्रह्मचर्यधर्म वरमाला के समान है। उस वरमाला के बिना लोक में विवाह कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

मुत्तं विणा सिप्पीव, रयणायरोव्व य विणा रयणेहिं।
णीरं विणा सरिदाव, बंभचेरेण विणा धम्मो॥729॥

ब्रह्मचर्य के बिना धर्म वैसे ही है जैसे मोती के बिना सीप, रत्नों के बिना रत्नाकर और जल के बिना नदी।

देव-रयण-सेलेसुं, सोहम्मोव्व वइरं व सुमेरू व।
णाणं व अप्पगुणेसु, बंभचेरं सव्वधम्मेसु॥730॥

जिस प्रकार देवों में सौधर्मेन्द्र, रत्नों में हीरा, पर्वतों में सुमेरु पर्वत और आत्मगुणों में ज्ञान है उसी प्रकार सभी धर्मों में ब्रह्मचर्य है।

जिणागमम्मि सीलस्स, अट्ठारस-सहस्स-भेया भणिदा।
पालंते णिद्दोसं, जे ते णियमा भावि-सिद्धा॥731॥

जिनागम में शील के 18000 भेद कहे गए हैं। जो शीलव्रत का निर्दोष पालन करते हैं वे नियम से भावी सिद्ध होते हैं।

उज्जोदेणं इंदू, आदवेण रवी णायेण रायो।
गंधेण सुमं सोहदि, जह तह णारी हु सीलेणं॥732॥

जिस प्रकार उद्योत से चंद्रमा, आतप से सूर्य, न्याय से राजा और सुगंध से पुष्प सुशोभित होता है उसी प्रकार शील से नारी सुशोभित होती है।

सीलेण सुक्क-रुक्खो, पल्लविदो पुप्फिदो फलिदो।
सुक्क-तडाग-सरिदा वि, जलपूरिदा पुज्जो सुरेहि॥733॥

शील से सूखे वृक्ष भी पुष्पित, फलित व पल्लवित हो जाते हैं, सूखे तालाब भी पानी से भर जाते हैं। शील से मनुष्य देवों के द्वारा पूज्य हो जाता है।

उवसग्गा दुब्भिक्खं, सीलेण खयेज्जं रोया मारगा य।
सीलेण पावपइडी, संकमंति पुण्णपइडीसुं॥734॥

शील से रोग, मारक, उपसर्ग व दुर्भिक्ष नष्ट हो जाते हैं। शीलव्रत से पाप प्रकृतियाँ पुण्य प्रकृतियों में संक्रमित हो जाती हैं।

उत्तमबंभचेरं दु, सोलस-तावजुद-सुवण्णं व सया।
तेणप्पा परमप्पा, सिरोमणी सव्वधम्मेसुं।।735।।

उत्तमब्रह्मचर्य धर्म सोलह ताप से युक्त स्वर्ण के समान है। उससे आत्मा परमात्मा हो जाती है। वह सर्वधर्मों में शिरोमणि है।

मादंगो अवि पुज्जो, सीलेण जिणिंदफासिद-णीरं व।
देसवदेहि वि पुज्जो, णरो तिरियो वा जिणसमये।।736।।

जिस प्रकार जिनेन्द्रप्रभु से संस्पर्शित नीर पूज्य होता है उसी प्रकार शील से चांडाल भी पूज्य हो जाता है। जिनशासन में कहा है कि मनुष्य या तिर्यंच देशव्रतों से भी पूज्य हो जाता है। इस प्रकार आचार्यश्री दसधर्मों का पालन किया करते थे।

जिणसासण-पहावणा

(जिनशासन प्रभावना)

णवजुलाई-उणवीस-सय-सत्तासीदीइ उग्घाडिदं।
पागद-भवणं पहाण-मंति-राजीव-गंधिणा चिय॥737॥

9 जुलाई 1987 को प्रधानमंत्री माननीय श्री राजीवगांधी जी ने कुंदकुंद भारती में बने नवनिर्मित प्राकृत भवन का उद्‌घाटन किया।

सव्व-पाईण-पागद-भासा-विगासस्स सासणं करेज्ज।
अणुदाण-ववत्थं तह, धम्म-कज्जे गच्छेज्ज सया॥738॥
पहाणमंतिस्स देज्ज, परामस्सं जं सासग-तवसीण।
एगट्ठिदी खएज्जा, पमादेण तव-रायणीदी॥739॥ (जुम्मं)

इस अवसर पर आचार्यश्री ने कहा कि देश की सबसे प्राचीन प्राकृत भाषा है। शासन को प्राकृत भाषा के विकास के लिए अनुदान की व्यवस्था करनी चाहिए। और प्रधानमंत्री जी को परामर्श देते हुए कहा कि आपको धार्मिक कार्यों, समारोह में सदैव जाना चाहिए। उन्होंने कहा–शासक और तपस्वियों की एक-सी स्थिति होती है, थोड़े से भी प्रमाद से राजनीति व तप दोनों नष्ट हो जाते हैं।

जिणसासण-पहावणं, उत्तरादु दक्खिणंतं कुणंतो।
कुव्वीअ पदविहारं, जणा थिरेदुं सद्धम्मम्मि॥740॥

उत्तर से लेकर दक्षिण तक लोगों को समीचीन धर्म में स्थिर करने के लिए आचार्यश्री ने जिनशासन की प्रभावना करने के लिए पदविहार किया।

उणवीस-णवंबरम्मि, ऊणवीस-सय-सत्त-असीदीए।
दक्खिणं भारदं पडि, विहरीअ सिरि-विज्जाणंदो।।741।।

19 नवंबर, 1987 को आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने दक्षिण भारत की ओर विहार किया।

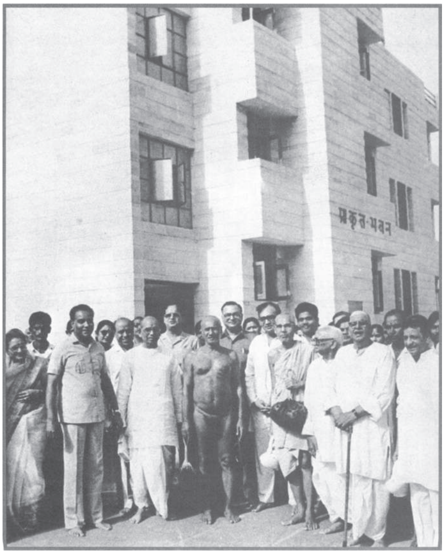

आयोजिद-उच्छवम्मि, रत्तदुग्गे कहिदं आइरियेण।
जदि सुसिक्खिदा णारी, कुरीदी कुपथा खयिस्संति।।742।।

उस दिन लालकिले मैदान में आयोजित समारोह में आचार्यश्री ने कहा यदि देश की नारियाँ सुशिक्षित हो जाएँ तो वे सामाजिक कुरीतियों व कुप्रथाओं को नष्ट कर सकेंगी।

बलिं अप्पघादादिं, सामाइग-दोसा खयेज्ज णारी।
जदि सुधम्मपरायणा, सुसक्कारिदा सुसिक्खिदा य।।743।।

यदि देश की नारियाँ धर्मपरायण, सुसंस्कारित व सुशिक्षित होंगी तभी वे बलि, आत्मघात आदि सामाजिक दोषों को नष्ट कर सकती हैं।

आयारिदो बेसहस्सद्दि-उच्छवो चिय आइरियेणं।
कुंदकुंदाइरियस्स, तस्स समाहि-वस्सुवलक्खे।।744।।

वीस-तीस-सहस्सेहि, अस्सुपूरिद-जणेहि जुगपुरिसस्स।
विहारोकराविदोय,अच्चंतभत्तिभाव-जुदेहि॥745॥(जुम्मं)

उसी सभा में आचार्यश्री ने आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी के समाधि वर्ष के उपलक्ष्य में 2000वाँ उत्सव (द्विसहस्राब्दि) मनाने के लिए संपूर्ण देश का आह्वान किया। समारोह के पश्चात् 20-30 हजार लोगों ने अत्यंत भक्ति से युक्त होकर अश्रुपूरित नयनों से उन युगपुरुष का विहार कराया।

सोलस-कत्तिग-मासे, ऊणवीस-सय-अट्ठासी-वरिसे।
उच्छवो उग्घाडिदो, उवरट्ठवदिणा ढिल्लीए॥746॥

16 अक्टूबर, 1988 को आचार्यश्री की प्रेरणा व आशीर्वाद से आचार्य कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी समारोह का उद्घाटन दिल्ली में भारत के उपराष्ट्रपति माननीय डॉ. शंकरदयाल शर्मा के माध्यम से किया गया।

एगवरिस-पज्जंतं, उच्छाहेणं हु उच्छवायारो।
करिदो भारदवस्से, सण्णाणवड्ढणं करंतो॥747॥

संपूर्ण भारतवर्ष में एक वर्ष पर्यंत 1988-1989 सम्यग्ज्ञान का वर्द्धन करते हुए उत्साहपूर्वक यह द्विसहस्राब्दी महोत्सव मनाया गया।

अणेग-विदुसंगोट्ठी पाइद-अज्झयण-पसार-केंदो य।
ठाविदो उदयपुरम्मि, पागदविज्जा-पगासणं पि॥748॥
तिमासिग-पत्तिगाए, आरब्भिदं उदयपुरादो तदा।
अणेगणेग-कज्जाणि,होज्जआइरिय-सण्णिहीए॥749॥

इस अवसर पर अनेक विद्वत् संगोष्ठी की गईं एवं प्राकृत अध्ययन प्रसारकेन्द्र की स्थापना उदयपुर में की गई। त्रैमासिकी पत्रिका प्राकृतविद्या का प्रकाशन भी तब उदयपुर से प्रारंभ किया गया। आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के सान्निध्य में अनेकानेक कार्य हुए।
विशेषार्थ—आ. कुंदकुंद द्विसहस्राब्दी समारोह के प्रसंग में उदयपुर, इंदौर, जबलपुर, कोबा, पूना, सागर, आरा, मेरठ, जयपुर, अजमेर,

ब्यावर, सोनीपत फिरोजाबाद, सतना, कटनी आदि अनेक स्थानों पर संगोष्ठी आदि कार्यक्रम आयोजित किये गए।

णवासीदि-वरिसे पुण-वस्सजोगो करिदो कोथलीए।
णिम्माविदं सिद्धंत-दंसण-मंदिरं अणेगाण॥750॥
भवण-जिण्णुद्धारो य, करिदो विज्जाणंद-पेरणाए।
धम्म-अइपहावणाइ, संपण्णो वस्साजोगो दु॥751॥ (जुम्मं)

1989 में आचार्यश्री ने कोथली में वर्षायोग किया। आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा से सिद्धांत दर्शन मंदिर का निर्माण किया गया एवं अनेक भवनों का जीर्णोद्धार भी किया गया। अतिशय धर्म-प्रभावना के साथ यह वर्षायोग संपन्न हुआ।

णवदीए-चदुमासो, कुव्विदो य बारामदि-महरट्ठे।
जिणसासण-पहावणा, होज्ज तत्थ णाण-पवयणेहि॥752॥

सन् 1990 का चातुर्मास आचार्यश्री ने बारामती महाराष्ट्र में किया। उनके ज्ञान व प्रवचनों से वहाँ जिनशासन की खूब प्रभावना हुई।

इगणवदि-ईसवीए, चदु-असीदि-फुड-उत्तुंग-पडिमाइ।
जिण्णुद्धार-पच्छा दु, होज्ज पणकल्लाण-पदिट्ठा॥753॥

सन् 1991 में बावनगजा में प्रथम तीर्थंकर श्रीआदिनाथ भगवान् की 84 फुट उत्तुंग प्रतिमा का जीर्णोद्धार हुआ।

पश्चात् आचार्यश्री के पावन सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा व महामस्तकाभिषेक का भी आयोजन किया गया।

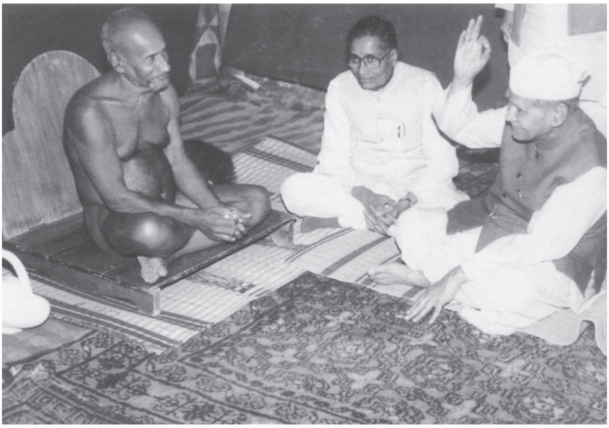

उपराष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा एवं मुख्यमंत्री श्री मोती लाल वोहरा

बावणगजा-णामेण, खेत्तं खादं देसविदेसेसुं।
उवरट्ठपदी य मुक्ख-मंती उवट्ठिदा सिंधिया वि॥754॥

यह क्षेत्र देश-विदेशों में बावनगजा के नाम से विख्यात है। इस समारोह में भारत के उपराष्ट्रपति माननीय डॉ. शंकरदयाल शर्मा जी, मुख्यमंत्री श्री सुंदरलाल जी पटवा और राजमाता विजयाराजे सिंधिया भी उपस्थित थीं।

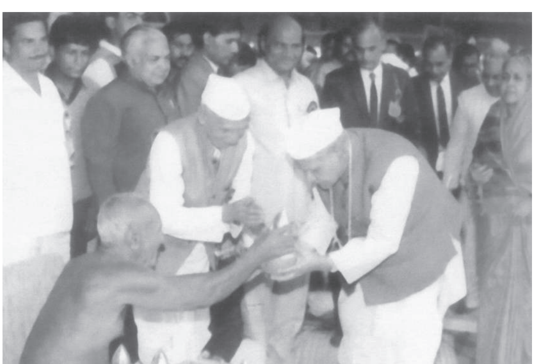

दसलक्ख-णरणारीहि, सम्मिलिदा तम्मि आयोजणम्मि य।
जिणाहिसेगो य तस्स, अणुमण्णणं वि खयदि पावं॥755॥

उस आयोजन में दस लाख नर-नारी सम्मिलित हुए। जिनाभिषेक व उसकी अनुमोदना भी पापों का क्षय करती है।

सूरि-विज्जाणंदेण, पुण आविदो महावीर-खेत्तम्मि।
सहस्सद्दि-उच्छवस्स, णिण्णयो करिदो पेरणाइ॥756॥

समारोह के पश्चात् आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज 1991 में अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी पधारे। आचार्यश्री की मंगल प्रेरणा से प्रबंध-कारिणी कमेटी ने भगवान् महावीरस्वामी की प्रतिमा का सहस्राब्दी महोत्सव मनाने का निर्णय किया।

विशेषार्थ–आचार्यश्री ने महावीरजी दिगंबर जैन क्षेत्र पर प्रवचन दिया जिसमें उन्होंने एक अखिल भारतीय स्तर पर अद्वितीय समारोह आयोजित करने की प्रेरणा दी। उन्होंने बताया कि भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा को भूगर्भ से प्रकट हुए मात्र 400 वर्ष हुए हैं। इस प्रतिमा का काल क्या है इसे जानने हेतु अनेक विद्वान्, भक्त, शोधकर्ता आदि उत्साहित हैं। आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के डायरेक्टर जनरल डॉ. मुनीशचंद जोशी जी ने पूर्णतया प्रतिमा की जाँच कर घोषित किया कि इस प्रतिमा का निर्माण 11वीं शताब्दी में हुआ। इस प्रकार इस प्रतिमा को निर्मित हुए लगभग 1000 वर्ष पूर्ण हुए। और यहीं से प्रारंभ हो गया सहस्राब्दी महोत्सव का उद्घोष।

धम्मि-ववत्थावगेहि, पाईणमंदिरं परिवट्टिदं दु।
पुणझाणकेंदेरयण-मयी-विज्जिदाबहुपडिमादु॥757॥

आचार्यश्री की प्रेरणा से भूतल पर बने प्राचीन मंदिर को धर्मानुरागी व्यवस्थापकों ने ध्यानकेन्द्र के रूप में परिवर्तित कर दिया। वहाँ रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ भी विराजमान कराई गईं।

विशेषार्थ–ध्यातव्य है यह उसी स्थान की बात है जहाँ आज रत्नमयी प्रतिमाएँ विराजमान हैं। वह मंदिर 400 वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था। पूर्व में जब कभी गंभीर नदी में बाढ़ आती थी उस समय भूतल पर निर्माणाधीन मंदिर में पानी भर जाता था। अतः सुरक्षा की दृष्टि से प्रतिमाएँ भूतल से प्रथम तल पर ले जाकर स्थापित कर दीं।

एगणवदि-ईसवीइ, चदुमासो कुंदकुंदभारदीइ।
धम्मणिरवेक्खो णेव, संपदाय-णिरवेक्खो सो दु॥758॥

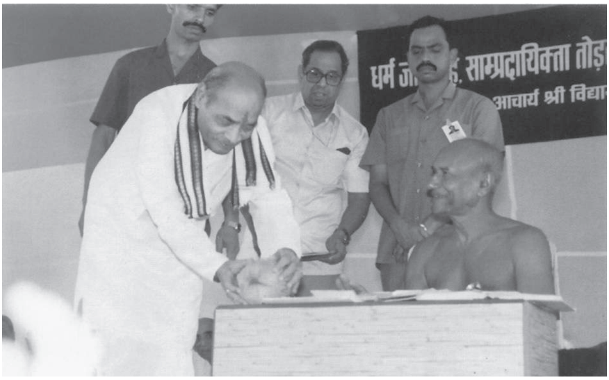

प्रधानमंत्री डॉ. नरसिंहराव

किदी पहाणमंतिणा, उग्घाडिदा दु सितंबरे एगे।
धम्मेगो अण्णधम्म-विरोहीणो कहिदं मुणिणा॥759॥(जुम्मं)

आचार्यश्री का सन् 1991 का चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में हुआ। 1 सितंबर 1991 में देश के प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिंह राव जी ने आचार्यश्री की "धर्म-निरपेक्ष नहीं संप्रदाय निरपेक्ष" नामक लघुकृति का लोकार्पण किया। मुनिवरश्री ने इस अवसर पर कहा भी कि एक धर्म कभी अन्य धर्म का विरोधी नहीं होता।

विशेषार्थ—उन्होंने कहा कि लोगों को साम्प्रदायिक सद्भाव बनाकर रखना चाहिए। सबके हित का कहना ही धर्मनिरपेक्षता है। जैसे अग्नि, अग्नि का विरोध नहीं करती वैसे ही एक धर्म भी दूसरे धर्म को विरोध नहीं करता।

एगणउदि-उत्तरूण-बीस-सहस्सवासे हरिदुववणे।
अइतिव्वजरपीडिदो, कणगणंदी एलाइरियो॥760॥
कुंथुसायर-संघम्मि, तदा सुणित्तु आयारीअ सूरी।
करीअ वेज्जावच्चं, गुरुविज्जाणंदो णेहेण॥761॥

सन् 1991 में ग्रीनपार्क, दिल्ली में आचार्य श्री कुंथुसागर जी संघ सहित पधारे। उनके संघ में एलाचार्य श्री कनकनंदी जी मुनिराज बहुत

तीव्र ज्वर से पीड़ित थे। तब उनके स्वास्थ्य के विषय में सुनकर आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव ग्रीनपार्क आए और स्नेहपूर्वक उनकी वैय्यावृत्ति की।

बाणउदि-वरिसे वि चदुमासो कुंदकुंदभारदीए हि।
णाणज्झाणतवेहिं, पहावणाइ सह जवीअ सो।।762।।

आचार्यश्री का सन् 1992 का चातुर्मास भी कुंदकुंदभारती में ही हुआ। ज्ञान, ध्यान, तप और धर्म-प्रभावना के साथ उन्होंने वह चातुर्मास व्यतीत किया।

हरिदुववण-ढिल्लीए, तिणउदिवरिसे करिदो चदुमासो।
अइ-पहावणाइतदा, पुण्णोणाण-भत्ति-पहुदीहि।।763।।

सन् 1993 का चातुर्मास आचार्यश्री का ग्रीनपार्क दिल्ली में हुआ। तब उनका यह चातुर्मास ज्ञान, भक्ति आदि के साथ अति धर्मप्रभावनापूर्वक संपन्न हुआ।

चदुणवदि-वरिसे कुंद-कुंदभारदीए वस्साजोगो।
करिदो आइरियेणं, अज्झप्प-साहणा-विड्ढीइ।।764।।

अध्यात्मसाधना की वृद्धि के लिए आचार्यश्री ने 1994 का वर्षायोग भी कुंदकुंदभारती में किया।

पंचणवदि-वरिसे पुण, बाहुबली-खेत्तम्मि दु ढिल्लीए।
जइण-समूहं थिरिदुं, धम्मे सासण-पहावणाइ।।765।।
वस्साजोगो करिदो, आइरिय-सिरि-विज्जाणंदेणं दु।
धम्मम्मिधणिग-ठवणं, महाकज्जंसंपइयाले।।766।।(जुम्मं)

जैन समुदाय को धर्म में स्थिर करने के लिए और जिनशासन की प्रभावना के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने सन् 1995 का चातुर्मास बाहुबली एन्क्लेव दिल्ली में किया। वर्तमान काल में धनिकजनों को धर्म में स्थिर करना बहुत बड़ा कार्य है।

लाल-बहादुर-सत्थी-रट्ठीय-सक्किद-विज्जापीढम्मि।
ढिल्लीए पागदस्स, आरब्भीअ गुरु-पेरणाइ।।767।।

श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ में

पमाणपत्त-पदविगा-अब्भासकमं छण्णवदि-वरिसम्मि।
कुंदकुंदभारदीइ, कत्तिगे वस्साजोगम्मि य।।768।। (जुम्मं)

सन् 1996 में आचार्यश्री का चातुर्मास कुंदकुंद भारती दिल्ली में हुआ। उस चातुर्मास के समय अक्टूबर में आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंदजी की प्रेरणा से श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ विश्वविद्यालय दिल्ली में प्राकृतभाषा का सर्टिफिकेट और डिप्लोमा कोर्स शुरू हो गया।

(उस समय विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. डॉ. वाचस्पति उपाध्याय जी थे। इनका और संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति डॉ. मण्डन मिश्र जी का इसमें विशेष सहयोग व श्रम था।)

पागद-अज्झयणस्स दु, उच्छाहपूरिद-सव्ववग्गजणा।
पागदा मूलभासा, भारदस्स माणणीया जं।।769।।

प्राकृतभाषा के अध्ययन के लिए सभी वर्ग के लोग भारी उत्साह से भरे हुए थे। क्योंकि प्राकृतभाषा माननीय व भारत की मूलभाषा है।

जयपुर-रायट्ठाणे, सत्तणउदीए वस्साजोगो दु।
समयसार-गंथो उवदिसिदो पढमवारं केणं।।770।।
णिग्गंथेणं तदा हि, मूलभासाए णाणाभावम्मि।
उप्पण्णणेग-भंती, णस्सिदा सगसेट्ठ णाणेण।।771।। (जुम्मं)

आचार्यश्री का सन् 1997 का वर्षायोग राजस्थान की राजधानी जयपुर में हुआ। तब पहली बार किन्हीं निर्ग्रन्थ दिगंबर मुनिराज ने समयसार ग्रंथ पर उपदेश दिया। मूलभाषा के ज्ञान के अभाव में अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई थीं। उन सब भ्रान्तियों को आचार्यश्री ने अपने श्रेष्ठ ज्ञान से नष्ट कर दिया।

ववहार-णिच्छय-णयो, उहयो हि आवसियो समरूवेण।
णय-णाणेण विणा जं, असक्को गमणं जिणमग्गे।।772।।

व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं। क्योंकि नयों के ज्ञान के बिना जिनमार्ग अर्थात् मोक्षमार्ग पर गमन करना अशक्य है।

राजस्थान मुख्यमंत्री
श्री भैरोंसिंह शेखावत

पूर्व राज्यपाल
श्री बलिराम भगत

सहस्सद्दि-महुच्छवो, आयोजिदो दु एगफरवरीए।
अट्ठ दिवसंतं अट्ठ-णउदि-वासे अइ-णंदेणं।।773।।

(जिस सहस्राब्दी महोत्सव की भूमिका सन् 1991 में बन गई थी अब उस महोत्सव का समय भी आ गया।) सन् 1998 में 1 फरवरी से आठ दिन पर्यंत अर्थात् 8 फरवरी तक वह सहस्राब्दी महोत्सव अति आनंद के साथ मनाया गया।

वइसालि-जणपद-णाम-भव्व-विसाल-मंडवे उच्छवस्स।
लक्खजणा सम्मिलिदा, आइ-उच्छाहेण हरिसेण॥774॥
अट्ठुत्तर-सहस्सेहि, कलसेहि अहिसेगो उच्छाहेण।
पडिमाविराइदागंभीर-णदि-पुव्व-णिम्मिदम्मिय॥775॥(जुम्मं)

(1 फरवरी को एक विशाल रथयात्रा महोत्सव का आयोजन किया गया। उस दिन भगवान् महावीर स्वामी की वह प्रतिमा जो प्रतिवर्ष महावीरजी मेले के अवसर पर बाहर ले जाई जाती है) उस प्रतिमा को गंभीर नदी के पूर्व में बने 'वैशाली जनपद' नामक भव्य विशाल मंडप में महोत्सव हेतु विराजमान की गई। वहाँ 1008 कलशों से प्रतिमा का उत्साहपूर्वक अभिषेक हुआ। उस महोत्सव में अति उत्साह व हर्षपूर्वक लाखों लोग सम्मिलित हुए।

सुंदर-झाणकेंदो वि, उग्घाडिदो सूरि-सण्णिहीए दु।
समागद-सद्धालूण,आगरिसण-पहाण-केंदोय॥776॥

आचार्यश्री के सान्निध्य में तब सुंदर ध्यान केन्द्र का उद्घाटन हुआ। वहाँ आने वाले श्रद्धालुओं के लिए वह ध्यानकेन्द्र आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा।

आणंदेणं इत्थं, उणवीस-सय-अट्ठणउदि-वच्छरो।
आरब्भो धम्मीणं, सव्वाण भद्द-परिणामीण॥777॥

इस प्रकार सभी धर्मात्मा, भद्र परिणामी जीवों का वर्ष 1998 बहुत आनंद के साथ प्रारंभ हुआ।

णवरोहदगमग्गम्मि, ढिल्लीए वस्साजोगो हु तदा।
णिवेदणम्मि संपुण्ण-पच्छिम-इंदपत्थस्स होज्ज॥778॥

संपूर्ण पश्चिमी दिल्ली के निवेदन पर आचार्यश्री का सन् 1998 का चातुर्मास न्यू रोहतक मार्ग, दिल्ली में हुआ।

ऊणतीस-णवंबरे, कलिंगचक्कहिवदि-खारवेलस्स।
सिमदीए खारवेल-भवणस्स चिय आहारसिला॥779॥

ठाविदा उडीसाए, ढिल्लीए तदा मुक्खमंतीणं।
कुंदकुंदभारदीइ, गोरवमय-उवट्ठिदीएदु॥780॥(जुम्मं)

29 नवंबर 1998 को कलिंग चक्राधिपति खारवेल की स्मृति में कुंदकुंदभारती में खारवेल भवन (विशाल भवन व पुस्तकालय) का शिलान्यास किया गया। यह शिलान्यास उड़ीसा के मुख्यमंत्री श्री जानकीवल्लभ पटनायक और दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित जी की गौरवमयी उपस्थिति में किया गया।

बेसहस्स-ईसवी दु, उग्घोसिदो य खारवेल-वासो।
उडिसा-मुक्खमंतिणा, भवण-णिम्माणे सहजोगो॥781॥

उड़ीसा के मुख्यमंत्री ने घोषणा की कि वर्ष 2000 खारवेल वर्ष के रूप में मनाया जाएगा। उन्होंने भवन निर्माण में सहयोग करने की भी घोषणा की।

ढिल्ली-मुक्खमंतिणा, हाथीगुंफासिलालेह-विसये।
कहिदं वावग-सोहो, आवसियो पगासणाए दु॥782॥

दिल्ली की मुख्यमंत्री ने सभा में हाथीगुम्फा के प्राचीन शिलालेख के विषय में भी कहा। उन्होंने कहा इस शिलालेख में सम्राट खारवेल की संपूर्ण कलिंग पर विजय का इतिहास अंकित है। इसके प्रकटीकरण के लिए व्यापक-शोध की आवश्यकता है।

मुणि-पेरणाइ ठाविद-भवणं कलिंग-सक्किदीणं इदं।
होज्जविजय-थंभोचिय, एदिहासिग-पसंगोइमो॥783॥

संपूर्णानंद संस्कृत विद्यालय, वाराणसी के कुलपति डॉ. मण्डन मिश्र ने कहा कि मुनिश्री विद्यानंदजी की प्रेरणा से स्थापित यह भवन कलिंग की संस्कृति का विजयस्तंभ होगा। यह कार्य एक ऐतिहासिक प्रसंग है।

भवणं पमुहो केंदो, होज्ज सोहस्स राय-खारवेले।
कहिदं तेण पेरिदं, सक्किद-पागद-उण्णयणं दु॥784॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने अपने प्रवचन में कहा कि यह भवन राजा खारवेल पर शोध का प्रमुख केंद्र होगा। उन्होंने संस्कृत व प्राकृत के उन्नयन के लिए सभी को प्रेरित किया।

विशेषार्थ–इस भवन निर्माण हेतु दान प्रदाता श्री माणिकचंद उगरचंद शाह, वाराणसी को भी आशीर्वाद दिया।

हरिदुववणढिल्लीए, णवणउदि-वासम्मि वस्साजोगो।
करिदो सूरिणा तदा, सगप्प-साहणा-विड्ढीए॥785॥

पुनः अपनी आत्म-साधना की वृद्धि के लिए आचार्यश्री ने 1999 का वर्षायोग ग्रीनपार्क दिल्ली में किया।

सोलसजूण-णवणउदि-वासे पणहत्तरवासे पुण्णे।
सूरि-विज्जाणंदेण, गहिदा णियमसल्लेहणा दु॥786॥
दिक्खाए दु पणवण्ण-वास-पुण्णा तदा बडोद-णयरे।
वड्ढिदुं सग-साहणं, उत्तमसमाहिभावणाए॥787॥ (जुम्मं)

1999 में आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की आयु के 75 वर्ष और दीक्षा के 55 वर्ष पूर्ण हुए। 16 जून 1999 को (दोपहर 11:22 बजे) आचार्यश्री ने बड़ौत में अपनी साधना को वृद्धिंगत करने के लिए उत्तम समाधि की भावना से नियम सल्लेखना ग्रहण की।

णिगामसरलभावेहि, णिद्देसा दायिदा सावगाणं।
संथा-भवणादी मम, णामे पडिमादी ण पच्छा॥788॥

आचार्यश्री ने तब अत्यन्त सरल भावों से श्रावकों के लिए निर्देश दिए कि 'मेरे पश्चात् मेरे नाम से किसी संस्था, भवनादि का निर्माण न किया जाए और न ही मेरी किसी प्रकार की प्रतिमा आदि स्थापित की जाए।'

बेसहस्स-ईसवीइ, कातंत-वागरणस्सायोजिदा।
रट्ठीय-गोट्ठी पव्व-सुदपणमीए भारदीए।।789।।
अणेग-सोह-णिबंधा, वाइदा विहिण्ण-विसयेसु विदूहि।
सूरिवर-विज्जाणंद-सण्णिहीए णाण-विड्ढीइ।।790।।(जुम्मं)

6-7 जून सन् 2000 में आचार्यश्री के मंगल सान्निध्य में ज्ञान वृद्धि हेतु श्री कुंदकुंदभारती में श्रुतपंचमी पर्व के दिन कातंत्र-व्याकरण ग्रंथ पर राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की गई। विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विषयों पर अनेक शोधनिबंधों का वाचन किया।

भारदीए तीस-इग-तीस-दिणंके बेसहस्स-वासे।
भारदीय-दंसण-परिसदस्स संठावणाए चिय।।791।।
हीरग-जयंतीए दु, विस्स-दंसणिग-महासहा तादा हि।
बारस-सय-पण्णासा,आगदा विदू दंसणिगा दु।।792।।(जुम्मं)

(श्री रवीन्द्रनाथ जी टैगोर व डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् जैसे महापुरुषों द्वारा स्थापित) भारतीय दर्शन परिषद् की स्थापना के सन् 2000 में 75 वर्ष पूर्ण हुए। उस परिषद की हीरक ज यंती पर 30 व 31 दिसंबर को 'विश्व दार्शनिक महाधिवेशन' का आयोजन दिल्ली में किया गया। उस समारोह में लगभग 1250 दार्शनिक विद्वान् पधारे थे।

तीसदिसंबरम्मि चिय,अग्गिस्स जीवत्त-सत्ति-विसयम्मि।
उब्बोहणं दायिदं, सूरि-सिरी-विज्जाणंदेण।।793।।

30 दिसंबर, 2000 को आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने 'अग्नि की जीवत्व शक्ति' विषय पर ज्ञानपूर्ण विस्मयकारी उद्‌बोधन दिया।

विशेषार्थ—आचार्यश्री का यह शोधपरक व्याख्यान 'अग्नि की जीवत्वशक्ति' नामक लघु पुस्तक में निबद्ध किया गया। आचार्यश्री ने बताया कि प्राणवायु और जल की तरह अग्नि भी प्राणियों के जीवन का अविभाज्य अंग है।

जइण-बाल-अस्समम्मि, ढिल्लीए वस्साजोगो हु तदा।
वासम्मि बेसहस्से, पुव्वोव्व अइ-पहावणाए।।794।।

सन् 2000 में आचार्यश्री का चातुर्मास जैन बालाश्रम, दिल्ली में पूर्व के समान ही अति धर्म प्रभावना के साथ संपन्न हुआ।

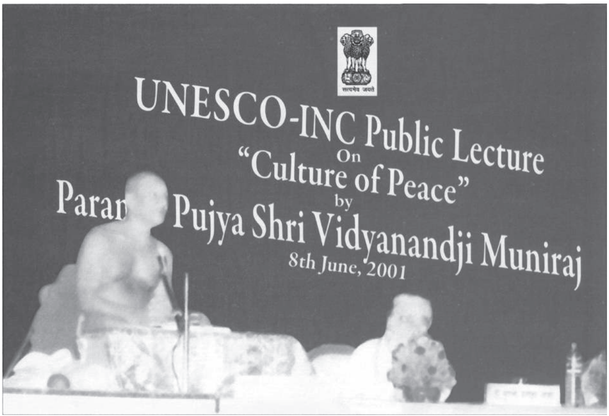

यूणेक्केणं दु विस्स-वावी कज्जकमो संचालिदो दु।
संति-पेम्म-पसारस्स, तम्मि सूरि-विज्जाणंदस्स॥795॥
मंगल-वक्खाणं चिय, माणव-संसाधण-मंतालयेण।
आयोजिदं सहाइ च, सुक्कवासरे सहागारे॥796॥

यूनेस्को द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति व प्रेम के प्रसार के लिए विश्वव्यापी कार्यक्रम संचालित किया जा रहा था। उसमें ही मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का मंगल व्याख्यान (8 जून 2001) शुक्रवार को 'नेशनल म्यूजियम सभागार' नई दिल्ली में आयोजित किया गया।

विशेषार्थ–इस समारोह की अध्यक्षता मानव संसाधन विकास मंत्री श्रीमान् मुरली मनोहर जोशी ने की।

अग्गिम-वस्साजोगो, संपुण्णो अहिंसा-थल-ढिल्लीइ।
दो-अहिय-बेसहस्से, मुणीरगा-मंदिरम्मि तस्स॥797॥

आचार्यश्री का अग्रिम (सन् 2001) का वर्षायोग अहिंसा स्थल, दिल्ली में पूर्ण हुआ और उनका सन् 2002 का वर्षायोग दिल्ली आर.के. पुरम् मुनीरका मंदिर में संपन्न हुआ।

दोसहस्सेगवासे, महामत्थगहिसेगो भत्तीइ।
सूरिसंघ-संणिज्झे, अहिंसाथले पहावणाइ।।798।।

सन् 2001 में अहिंसास्थल दिल्ली में आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज ससंघ सान्निध्य में धर्मप्रभावना के साथ भक्तिपूर्वक श्री महावीर जिनप्रतिमा का महामस्तकाभिषेक हुआ।

गुरु-आणाए हं पि, पहुच्चीअ संघेण सह गुरुपदेसु।
अणेगविदू सेट्ठी य, सहस्सा भत्ता तत्थ।।799।।

गुरु आज्ञा से हम भी गुरु चरणों में संघ सहित पहुँचे। वहाँ अनेक विद्वान्, श्रेष्ठी व हजारों भक्त उत्सव में सम्मिलित हुए थे।

अहो णिण्णय-सायरो, तित्थयर-पहावणा परिलीएज्ज।
उच्छाहेण एवंविह, कहीअ सूरी वच्छल्लेण।।800।।

तब आचार्य गुरुदेव ने वात्सल्यपूर्वक कहा-अहो निर्णय सागर महाराज! तीर्थंकर प्रभु की प्रभावना में इस प्रकार उत्साहपूर्वक सदैव लीन रहना।

सगजम्माइ-उच्छवं, करावंति साहू संपइयाले।
वरं कल्लाणुच्छवं, तित्थाण करावेज्ज सुहस्स।।801।।

आज वर्तमानकाल में साधुजन अपने जन्मादि महोत्सव मनवाते हैं किंतु शुभ के लिए तीर्थंकरों के कल्याणकों पर उत्सव कराना चाहिए।

पहुच्चंते चदुविहा, देवा तित्थयरजम्महिसेगे।
लहंति किदकारिदाणुमोदणेहि सिव-मप्पभवेसु।।802।।

उन्होंने कहा कि तीर्थंकर प्रभु के जन्माभिषेक में चारों निकाय के देव पहुँचते हैं एवं कृत, कारित व अनुमोदना से अल्पभवों में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

बेसहस्सबेवासे, सूरी आहवीअ पणकल्लाणे।
अच्चंतवच्छलेणं, विस्सासणयरे ढिल्लीए।।803।।

देज्ज उवज्झायपदं, कहीअ तव अज्झयणरुई विसिट्ठा।
णाणपयासं कुणसु, जीवणे णाणत्थि सिस्साण॥804॥

सन् 2002 में आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज ने हमें विश्वास नगर दिल्ली के पंचकल्याणक में अत्यंत वात्सल्यपूर्वक बुलाया। वहाँ उन्होंने (मुनि श्री निर्णयसागर जी को) उपाध्याय पद दिया और कहा कि आपकी अध्ययन में रुचि अत्यंत विशिष्ट है। ज्ञानार्थी व शिष्यों के जीवन में सदैव सम्यग्ज्ञान का प्रकाश करें।

विशेषार्थ–सन् 2002 में जब मुनि श्रीनिर्णयसागर जी महाराज वर्तमाल में आचार्य श्री वसुनंदी जी खेकड़ा में विराजमान थे तब कुंदकुंद भारती की कमेटी एवं विश्वास नगर दिल्ली की कमेटी उनके पास पहुँची एवं विश्वास नगर दिल्ली पंचकल्याणक में पधारने का निवेदन किया और कहा गुरुदेव! ऐसी आपके गुरुदेव की आज्ञा है। तब गुरु की आज्ञा पालन करते हुए वे पंचकल्याणक में उपस्थित हुए एवं आचार्यश्री ने वहाँ 21वीं सदी के प्रथम उपाध्याय के रूप में उन्हें संस्कारित किया।

ति-अहिय-बेसहस्स-वारिसादो सत्तहिय-बेसहस्संतं।
पंच-वस्साजोगा य, कुंदकुंदभारदीए चिय॥805॥

सन् 2003 से सन् 2007 तक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के पाँच चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में संपन्न हुए।

चरिय-चक्कि-सूरि-संतिसिंधुस्स जम्मजयंदि-उवलक्खे।
सयहियिगतीसइमस्स, सूरिवर-विज्जाणंदेण॥806॥
उणवीस-जुलाईदो, तिअहियबेसहस्स-वासादु तेण।
एगवस्सपज्जंतं, उग्घोसिदो संजमवरिसो॥807॥ (जुम्मं)

चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज की 131वीं जन्म जयंती के उपलक्ष्य में आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने 19 जुलाई, 2003 से एक वर्ष पर्यंत वह वर्ष संयम वर्ष के रूप में उद्घोषित किया।

गिह-गिहे संतिसिंधू, मणे मणे संतिसायरो य।
संतिसिंधुं पडि किदण्हु-भावेण दायिदो घोसो॥808॥

चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज के प्रति कृतज्ञ भाव से आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने देश को एक नारा दिया **''घर-घर में हो शान्तिसागर, मन-मन में हो शांतिसागर''।**

णेव तिरक्करेज्जा य, आलिंगेज्ज धम्मं सिक्खावेज्ज।
भासिदो मूलमंतो, जइण-समाय-एगत्तस्स दु॥809॥

'मत ठुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ' यह मूलमंत्र आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जैन समाज की एकता के लिए दिया।

तिउत्तरबेसहस्से, इगतीसुत्तर-सयम-जम्मवासे।
कारिदुच्छवेसु चरिय-चक्किसूरी-संतिसायरस्स॥810॥
अणेगधम्म कज्जाइं, विदु-गोट्ठी सेट्ठ-अणुट्ठाणादी।
कहिदं लिहिदुं गंथं, ममं संतिसायर-चरित्ते॥811॥

सन् 2003 में चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज के 131वें जन्म वर्ष के अंतर्गत कराए गए उत्सवों में अनेक धर्मकार्य, विद्वानों की गोष्ठी व श्रेष्ठ अनुष्ठानादि सम्मिलित थे। उस समय आचार्यश्री ने मुझे आचार्य श्री शांतिसागर जी के चरित्र पर एक ग्रंथ लिखने को कहा।

गुरु-आणाए लिहिदं, अम्हाण आयंसो गुरुकिवाए।
गुरु-वच्छलवरिसंहं,अणुभवीअकहिदुंअसक्को।।812।।

गुरु की आज्ञा व कृपा से हमने 'हमारे आदर्श' नामक कृति का सृजन किया। उस समय गुरु के वात्सल्य की वर्षा का जो अनुभव मैंने किया वो मैं यहाँ कहने में अशक्य हूँ।

मेरठाणंदपुरीइ, समाय-पमुहा भारदिं गच्छीअ।
मुणिभवणुग्घाडणस्स,लहिदु-मासिंणिवेदीअपुण।।813।।
संतभवणणामो वयं, कंखेज्ज सूरी-विज्जाणंदो।
भासीअ णिसेहंतो, उवज्झाय-णिण्णयसिंधू हि।।814।।
सुहणामो भवणस्स, णिम्मिदं पि तं तस्स पेरणाए।
मेरठ-णिवासीणहं,अइभत्तीजाणेमिपडितं।।815।।(तिअं)

2003 में मेरठ आनंदपुरी समाज के प्रमुख लोग नवनिर्मित संत भवन के उद्घाटन के लिए आचार्यश्री के चरणों में कुंदकुंदभारती पहुँचे। पुनः निवेदन किया कि आचार्यश्री हमें आशीर्वाद दें, हम अपने संतभवन का नाम 'आचार्य विद्यानंद संत भवन' रखना चाहते हैं। तब उन्होंने इसका निषेध करते हुए कहा—नहीं, आप अपने संतभवन का नाम 'उपाध्याय निर्णय सागर संत भवन' रखें, वह उनकी प्रेरणा से निर्मित भी है। आचार्यश्री पुनः मुस्कुराते हुए कहने लगे—मेरठ वालों की उनके प्रति अत्यंत भक्ति को मैं जानता हूँ।

तिउत्तरबेसहस्से, समायारो पत्तो गुरुस्स मए।
बद्दिणाह-जत्ताए, उसहजिण-णिव्वाणभूमीइ।।816।।
सिद्धभूमिवंदणेण, सत्थलाहो मणविसुद्धो णिच्चं।
गच्छेज्जपहावणाइ,सक्किदि-रक्खाइणिमित्तंपि।।817।।

सन् 2003 में मुझे आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव का समाचार प्राप्त हुआ कि आप प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभनाथ जिनेंद्रदेव की निर्वाणभूमि बद्रिनाथ की यात्रा के लिए जाएँ। उन्होंने कहा कि सिद्धभूमि के वंदन से स्वास्थ्य लाभ होता है, चित्त नित्य विशुद्ध होता है। संस्कृति की रक्षा के निमित्त व धर्म प्रभावना के लिए भी यात्रा के लिए जाना चाहिए।

गुरु-आसीवायेणं, होज्ज सुहतित्थवंदणा अम्हाण।
वंदण-मणुसंधाणं, करीअ ठाइय सत्तगेगं।।818।।

गुरु की आज्ञा प्राप्त कर सन् 2003 में हम बद्रीनाथ यात्रा के लिए गए। गुरुदेव के आशीर्वाद से हमारी वह शुभ तीर्थवंदना हुई। वहाँ एक सप्ताह रुककर हमने वंदना व अनुसंधान किया।

पावण-तित्थवंदणा, पावखयकारगा पुण्णवड्ढगा।
णिरीहवित्ति-पोसगा, करेज्जा तित्थवंदणं तं।।819।।

अहो! यह पावन तीर्थवंदना पापों का क्षय करने वाली, पुण्य को बढ़ाने वाली व निरीहवृत्ति का पोषण करने वाली है इसलिए तीर्थवंदना करनी चाहिए।

एगुत्तरबेसहस्से, हेममउडेण कराविदं माणं।
सोणियागंधीए दु, तदा ताए सुहकज्जाणं।।820।।

आचार्यश्री ने सन् 2001 में दिल्ली में माननीया सोनिया गांधी जी का सम्मान सोने का मुकुट पहनवाकर उनके शुभ कार्यों के लिए कराया।

श्रीमती सोनिया गांधी का सम्मान

देज्ज अस्सासणं सा, धम्मरक्खाइ देस-पया-हिदस्स।
लहिदो आसीवायो, पुण सूरी-विज्जाणंदेण।।821।।

उन्होंने धर्म की रक्षा एवं देश व प्रजा के हित का आश्वासन दिया। पुनः उन्होंने आचार्य श्री विद्यानंदजी मुनिराज से आशीर्वाद प्राप्त किया।

विशेषार्थ–10 जून सन् 2001 में सिरी फोर्ट ऑडिटोरियम, दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज के सान्निध्य में माननीया श्रीमती सोनिया गांधीजी का सम्मान स्वर्ण मुकुट पहनाकर किया गया। उस समय राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत जी भी उपस्थित थे। उस कार्यक्रम में अहिंसा पुरस्कार निर्मला ताई देशपांडे गांधीवादी समाजसेवकी के लिए प्रदान किया गया और अहिंसा प्रसारक ट्रस्ट मुंबई द्वारा प्रवर्तित ब्राह्मी पुरस्कार ब्राह्मी लिपि के श्रेष्ठ विद्वान् प्रो. किरण कुमार थपलियार, लखनऊ के लिए दिया गया।

सीरीफोर्ट ऑडोरियम श्रीमती सोनिया गांधी के साथ चर्चा

श्रीमती सोनिया गांधी आशीर्वाद लेते हुए

चदुत्तरबेसहस्से, बसंतकुंजे पंचकल्लाणम्मि।
गुरु-आणाइ तत्थ हं, पहुच्चीअ पाणीपदादो॥822॥

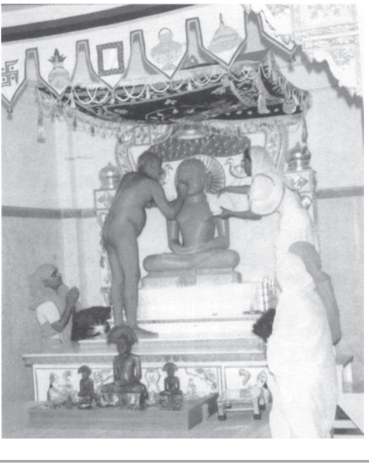

गुरुणा कराविदं मम, पवयणं णिय-उवएसपुव्वम्मि।
दायिदा सइद्धंतिग-उवएसा तत्थ छलेस्सासु॥823॥
गुरु-विज्जाणंदेणं, संवेगाइ-भाव-उप्पायगा य।
जीवाणं मणोवित्ति-दंसायगा णाणकारगा॥824॥
भो णिण्णयसायरो, लेस्सं पस्सित्ता जाणेज्ज जणा।
साहम्मीण ण असुहा, सुहा उत्तरोत्तरा वदीण॥825॥

सन् 2004 में बसंतकुंज दिल्ली के पंचकल्याणक आचार्य श्री के सान्निध्य में हुए। आचार्यश्री का संकेत पंचकल्याणक में सम्मिलित होने के लिए हुआ। तब गुरु की आज्ञा से हम पानीपत से वहाँ पहुँचे। आचार्यश्री ने वहाँ अपने प्रवचन से पूर्व हमारे प्रवचन कराये। एवं स्वयं आचार्यश्री ने छह लेश्याओं पर सैद्धांतिक उपदेश दिया। आचार्यश्री के वे उपदेश संवेगादि भावों को उत्पन्न करने वाले, जीवों की मनोवृत्ति को दिखाने वाले एवं सम्यग्ज्ञान के कारक थे।
उन्होंने कहा निर्णय सागर जी महाराज! लेश्या देखकर व्यक्तियों को जान लेना चाहिए। साधर्मियों की अशुभ लेश्या नहीं होती और व्रतियों की लेश्या उत्तरोत्तर शुभ ही होती है।

किण्हाणयरसमायो, आवीअ वस्साजोग-पत्थणाइ।
पस्सिय भत्तिं कहीअ, तत्थ कुव्वेदुं चउमासं॥826॥

उसी समय कृष्णानगर समाज वहाँ वर्षायोग की प्रार्थना के लिए आयी। उनकी भक्ति देखकर आचार्यश्री ने वहीं चातुर्मास करने को कहा।

चदु-उत्तर-बेसहस्स-वासम्मि-किण्हाणयर-चउमासे।
दुसावणमासा तदा, इगमासे भारदीए हं॥827॥

सन् 2004 में हमारा (आचार्यश्री वसुनंदी जी मुनिराज ससंघ) का चातुर्मास कृष्णानगर, दिल्ली में हुआ था। तब 2004 में कृष्णानगर चातुर्मास में दो सावन के महिने थे।

अज्झयणं कराविदुं, आयारीअ भारदीए हि तदा।
रहस्साइ-गंथाणं, देज्जसग-पोत्थआणि विमज्झ॥828॥

उस समय उस एक माह में आचार्यश्री ने रहस्य आदि ग्रंथों का अध्ययन कराने के लिए हमें कुंदकुद भारती में बुलाया, तब उन्होंने अपनी बहुत सी डायरियाँ भी हमको दीं।

ठाएज्ज गुरु-अण्णाइ, अइवच्छलाइरियेण पडिदिवसे।
आहारो कराविदो, खीरण्णस्स सत्थलाहस्स॥829॥

तब मैं गुरु आज्ञा से सावन के एक महिने कुंदकुंदभारती में ठहरा। आचार्यश्री ने बहुत वात्सल्य से स्वास्थ्य लाभ के लिए प्रतिदिन क्षीरान्न (खीर) का आहार कराया।

अह चंदणयरं तेण, सह गच्छीअ गुरु-आणाए।
सिरिबाहुबलिसामिस्स, महामत्थगाहिसेगस्स दु॥830॥

अथानंतर सन् 2005 में गुरु आज्ञा से उनके साथ ही हम श्री बाहुबली भगवान् के महामस्तकाभिषेक के लिए चंद्रनगर- फिरोजाबाद पहुँचे।

अणेगविदुसेट्ठीणं, अपार-जण-णिअर-मज्झे णंदेण।
अइधम्मपहावणाइ, संपण्णो सो उच्छाहेण॥831॥

वहाँ अनेक विद्वान्, श्रेष्ठी व अपार जनसमूह के मध्य आनंद व उत्साहपूर्वक अत्यंत धर्मप्रभावना के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

अणंतरं पहुच्चीअ, सउरिपुर-बडेसार-वंदणं कडुअ।
सहस्सचंददंसणुच्छवायरणं करिद-मागरं॥832॥

अनंतर हम सिद्धक्षेत्र शौरीपुर, बटेश्वर की वंदना करके आगरा पहुँचे। वहाँ सहस्रचंद्रदर्शन उत्सव मनाया गया।

विशेषार्थ-आचार्यश्री के जन्म को लगभग 80 वर्ष पूर्ण होने पर अथवा 1000 पूर्णमासी होने से उत्सव का नाम सहस्रचंद्रदर्शन रखा गया, जिसके अंतर्गत गोष्ठी, विद्वत्सम्मान आदि किया गया।

एयदा भारदीए, मुक्खदारं पहुच्चीअ चंपंतो।
गुरुदेवेणं सह हं, पस्सिदूण गवमेगं तत्थ।।833।।
कहीअ भो गोमादू!, अणुवज्जह पच्छिमभागे विविणे।
दाएज्ज को वि कट्ठं, जं अत्थ अहो गुरु-वच्छलं।।834।।

एक बार आचार्यश्री के साथ वार्ता करते हुए हम कुंदकुंदभारती के मुख्यद्वार तक पहुँच गए। (वहाँ एक गाय घूम रही थी और उस दिन कुछ वाहन वहाँ तेजी से निकल रहे थे।) उस गाय को देखकर आचार्यश्री ने कहा–हे गौमाता! पीछे जंगल में चली जाओ क्योंकि यहाँ कोई भी तुम्हें कष्ट दे सकता है। तब उसी समय वह गाय पीछे चली गई। अहो! गुरुदेव का वात्सल्य।

वच्छल्लेण इगदिणे, कहीअ हरिसेण पसण्णमुद्दाइ।
अहो णिण्णयसायरो, जदि तुज्झ सत्थं अणुऊलं।।835।।
सवणबेलगोलं बे-सहस्स-छ-वस्से महाहिसेगस्स।
ममपडिणिहि-रूवेअवि, गच्छेज्जआयोजगाअत्थ।।836।।(जुम्मं)

तब एक दिन हर्ष व वात्सल्य से प्रसन्नमुद्रा में आचार्यश्री ने कहा निर्णयसागर महाराज, यदि आपका स्वास्थ्य अनुकूल हो तो सन् 2006 में होने वाले महामस्तकाभिषेक के लिए मेरे प्रतिनिधि के रूप में आप श्रवणबेलगोल चले जाइए। अभी यहाँ आयोजक भी उपस्थित हैं।

कंखेमि तुज्झ देदुं, पवट्टगाइरिय-पदं चिय सेट्ठं।
गच्छेज्ज अहिसेगस्स, सूरिवड्ढमाण-सण्णिहीइ।।837।।

मैं आपको श्रेष्ठ प्रवर्तकाचार्य पद देना चाहता हूँ आचार्यश्री वर्धमानसागर जी मुनिराज के सान्निध्य में अभिषेक के लिए चले जाइये।

कहिदं मए तदा अइ-विणयेण गुरुदेवो ण सक्को हं।
गच्छेदुं तुमं विणा, अजोग्गो सूरि-पदं गहिदुं॥838॥

तब अतिविनयपूर्वक मैंने कहा हे गुरुदेव ! मैं आपके बिना जाने में समर्थ नहीं हूँ। मैं आचार्य पद ग्रहण करने में अयोग्य हूँ।

पण-अहिय-बेसहस्से, वासम्मि कत्तिगे णवढिल्लीए।
आरब्भिदो य सयद्दि-वासो सिरि-देसभूसणस्स॥839॥

अक्टूबर 2005 में कुंदकुंदभारती दिल्ली में भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज का 'शताब्दी वर्ष' का शुभारंभ आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के माध्यम से हुआ।

पणुत्तरबेसहस्से, समसाबादम्मि सत्थ-पडिऊलं।
पहुच्चाविदा आसी, अइचिंतित्ता गुरुदेवेण॥840॥

दिसंबर सन् 2005 में शमशाबाद में (खूनी पेचिश होने से) हमारा स्वास्थ्य अत्यंत प्रतिकूल था तब गुरुवर ने अत्यंत चिंतित होकर अपना आशीर्वाद पहुँचाया जिससे मुझे शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हुआ।

बेसहस्सट्ठवासे, असहणीय-पीडा मज्झं दंते।
अक्कलदाढेण तदा, हरिदोववण-जिणमंदिरं दु॥841॥
आगच्छीअ गुरुवरो, दायित्ता आसिं च कुसलखेमं।
पुच्छित्तु संबोहणं, दाएज्ज अच्चंतणेहेण॥842॥

सन् 2008 में जब हम ग्रीनपार्क में ठहरे हुए थे उस समय अक्कलदाढ़ के कारण मेरे दाँत में असहनीय पीड़ा थी। कुछ दिन आहार लेने में भी असमर्थता रही। तब गुरुवर आचार्य श्रीविद्यानंद जी मुनिराज ग्रीनपार्क जिनमंदिर आये। उन्होंने कुशलक्षेम पूछकर आशीर्वाद देकर अत्यंत स्नेहपूर्वक संबोधन दिया।

णवुत्तर-बेसहस्से, होज्ज पदिट्ठा तिजाराखेत्तम्मि।
पेसीअ पडिमा मुणी, चदू पदिट्ठाइ भारदीइ॥843॥

फरवरी सन् 2009 में अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा में चंद्रगिरी में नवनिर्मित चौबीसी की भव्य प्रतिष्ठा हुई थी। उस समय आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज ने कुंदकुंद भारती के मानस्तंभ की चार प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठा हेतु वहाँ भेजीं।

गुरु-संदेसो वि णेव, उक्किण्णो मम णामो पसत्थीइ।
किण्णुअसंभवोइमो,तंलिहावीअजिणपडिमासु।।844।।

तब गुरुदेव का संदेश भी आया कि 'मेरा नाम प्रशस्ति पर नहीं लिखवाना'। किंतु यह मेरे लिए तो संभव नहीं था अतः जिनप्रतिमाओं पर नाम लिखवा दिया।

पच्छा भारदिं वयं, रीअ तत्थ गुरु-पुच्छणे कहीअ।
विणयेण गुरुदेवो!, कहं चिय संभवो एरिसो।।845।।
तए हि मे अत्थित्तं, तव णामेण विणा असक्को मम वि।
वच्छल्ल-हसंतेणं, तदा मज्झं दायिदा आसी।।846।।

पश्चात् जब हम कुंदकुंदभारती पहुँचे तब आचार्यश्री ने कुछ गंभीरतापूर्वक पूछा कि– आपने हमारा नाम प्रशस्ति में क्यों लिखवाया? तब गुरु के पूछने पर मैंने विनयपूर्वक कहा–आचार्य श्री! ये कैसे संभव हो सकता है कि मैं आपका नाम ना लिखवाऊँ। आपसे ही मेरा अस्तित्व है। आपके नाम के बिना मेरा नाम आना अशक्य है। तब वे वात्सल्यपूर्वक मुस्कुराये और हमें आशीर्वाद दिया।

तिजारादो अहिंसा-थलं पहुच्चीअ दु गुरु-संदेसो।
तदा मए पाविदो य, सेट्ठि-मुणीसर-पसादेणं।।847।।
फरीदाबादे जिणालय-सिलण्णासं आवेज्ज करावित्तु।
तुज्झ पुरक्कारं हं, कंखेमि पदायिदुं सिग्घं।।848।।

जब तिजारा पंचकल्याणक के पश्चात् हम अहिंसास्थल पहुँचे तब श्रेष्ठी श्री मुनीश्वर प्रसाद जी गुरुदेव का संदेश लेकर हमारे पास आए और कहा कि आचार्यश्री ने कहा है "आप फरीदाबाद में जिनमंदिर

का शिलान्यास कराकर कुंदकुंद भारती आयें। मैं शीघ्र आपको एक पुरस्कार देना चाहता हूँ।''

दायिद-मप्पेलेगे, एलाइरियपद-मइवच्छलेणं।
वसुणंदि-णामेण तदा, वच्छल्ल-मासिं अणुभवीअ॥849॥

तब आचार्यश्री ने 1 अप्रैल को (उपाध्याय निर्णयसागर जी को) वात्सल्यपूर्वक एलाचार्य पद प्रदान किया एवं 'वसुनंदी' शुभ नाम दिया। तब इस नाम से मैंने गुरु के असीम वात्सल्य व आशीर्वाद का अनुभव किया।

णव-समहिद-बेसहस्स-वासे दसमईइ सूरिणा तेण।
पारब्भिदो दु सयद्दि-वासो महावीरकित्तिस्स॥850॥
सूरि-विज्जाणंदेण, तदा गाइदा णिय-गुरु-गुण-गाहा।
संखेवेणं कहिदं, णियगुरु-जीवणवत्तंतं दु॥851॥

10 मई, 2009 में कुंदकुंद भारती दिल्ली में आचार्यश्री के द्वारा पूज्य आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज का शताब्दी वर्ष का प्रारंभ किया गया। आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने तब अपने गुरु गुण-गाथा का बखान किया। और संक्षेप में अपने गुरु के जीवन वृत्तांत का वर्णन किया।

अट्ठ-णव-दस-वासेसु, पुण उसहविहारे हरिदुववणम्मि।
कुंदकुंदभारदीइ, ढिल्लीए वस्साजोगा य॥852॥

सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का सन् 2008 का चातुर्मास ऋषभ विहार दिल्ली, सन् 2009 का चातुर्मास ग्रीनपार्क

दिल्ली और सन् 2010 का चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में संपन्न हुआ।

खारवेल-भवणस्स दु, कातंत-कलाव-पोत्थगालयस्स।
उग्घाडणस्स मच्चे, आवीअ दु सोणिया-गंधी।।853।।

7 मार्च 2010 श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में खारवेल भवन और कातंत्र कलाप पुस्तकालय के उद्‌घाटन के लिए माननीया श्रीमती सोनियागाँधी जी पधारीं।

कातन्त्र-पुस्तकालय में देवी सरस्वती की मूर्ति के आगे दीप प्रज्ज्वलन करती हुई श्रीमती सोनिया गांधी

खारवेल भवन का उद्‌घाटन करती हुई श्रीमती सोनिया गांधी एवं शीला दीक्षित

तदा गुरुवरो कहीअ, चिट्ठह मम णिअडे सीहासणम्मि।
अइपसण्णभावेणं, संघसंचालणजोग्गो जं।।854।।

उस समय आचार्य गुरुवर ने अति प्रसन्न भाव से मुझसे कहा कि आप मेरे निकट सिंहासन पर ही बैठेंगे क्योंकि आप योग्य संघसंचालक भी हैं।

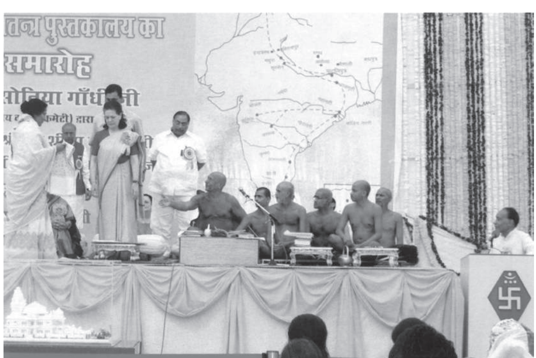

दायिदो पुरक्कारो, णादालियाइ समयसार-गंथं।
रूसी-भासाए तं, अणुवदेदुं पाढवेदुं च॥855॥
पणलक्खरासी तहा, समयसारचंदिगा-सेट्ठुवाही।
पदायिदा चियपसत्थि-पत्त-पदगादीहिं सहिदा॥856॥(जुम्मं)

आचार्यश्री की प्रेरणा से उस समय श्रीमती सोनियागांधी जी ने प्रो. नातालिया झेलेझनोवा को समयसार ग्रंथ को रशियन भाषा में अनुवाद करने व मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी में एम.ए. कोर्स में पढ़ाने के लिए 5 लाख रुपये की सम्मानित राशि व प्रशस्ति-पत्र, मेडल आदि के साथ समयसार चंद्रिका की श्रेष्ठ उपाधि भी प्रदान की।

श्रीमती सोनिया गांधी को कमण्डलु भेंट करते हुए

मॉस्को स्टेट युनिवर्सिटी (रूस) की नातालिया झेलेझनोवा प्रशस्ति-पत्र भेंट करती हुई सोनिया गांधी

पुणो ताए रूसीइ, सूरी-कुंदकुंद-सामि-गंथाण।
सेट्ठणुवायो करिदो, विज्जाणंद-मुणि-पेरणाइ॥857॥

पुनः प्रो. नातालिया ने आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा से आचार्यश्री कुंदकुंद स्वामी के ग्रंथों का रूसी भाषा में अनुवाद किया।

दस-समहिद-बे-सहस्स-वासम्मि बेमइम्मि सासणेणं।
दियंबर-साहु-चिण्हं, पडिबंधिदो मोरकलावो॥858॥

2 मई, 2010 को एक संकट का सामना संपूर्ण दिगंबर जैन संत व समाज ने किया। सरकार ने दिगंबर साधु के चिह्न (पिच्छिका) मोर पंखों पर प्रतिबंध लगा दिया।

साहूण संगडमिदं, हरिदं आइरिय-विज्जाणंदेण।
बहुपमाणजुदपत्तं, पेसीअ सासणस्स तदा हि।।859।।

तब आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने साधुओं का यह संकट हरा। आचार्यश्री ने सरकार को बहुत प्रमाणों से युक्त पत्र भेजा।

पस्सिय सासणेण तं, कुणिदं पडिबंध-णिरासणं तदा।
विदेसि-जइण-भत्तेहि,संपेसिदा सिदकलावा दु।।860।।

सरकार ने वह पत्र व प्रमाण देखकर उस प्रतिबंध को वापिस ले लिया। क्योंकि किसी भी धार्मिक चिह्न पर प्रतिबंध लगाना असंवैधानिक है। जब मयूर पंख पर प्रतिबंध की यह जानकारी विदेश में रहने वाले जैन भक्तों को मिली तो उन्होंने श्वेत मयूरपंख भारत भिजवाये।

तेहिं विणिम्मिदं सिद-पिच्छं दायिदं विज्जाणंदस्स।
विस्सम्मि पसिद्धो सिदपिच्छाइरिय-णामेण तदा।।861।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज को उनसे बनी श्वेतपिच्छी प्रदान की गई और वे श्वेतपिच्छाचार्य के नाम से विश्व में प्रसिद्ध हुए।

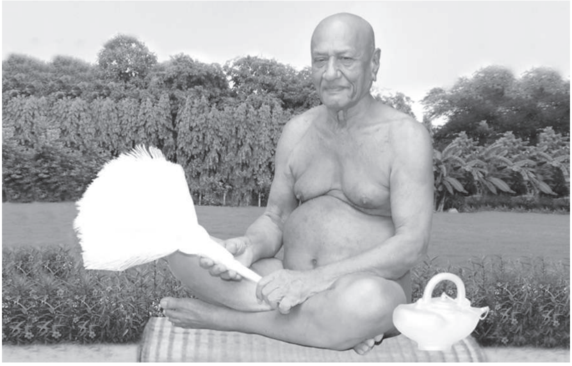

दुमुणिदिक्खं दायिदुं, एयारसुत्तर-दुसहस्स-वासे।
णिवेदीअ गुरुदेवं, तदा तेणं अइवच्छलेणं।।862।।
कहिदं भो वसुणंदी!, तुमं दाएज्ज मुणिदिक्खं मज्झं।
सण्णिहीए सुहासिं, सुहकामणं देमि दिक्खाइ।।863।।

सन् 2011 में हमने आचार्यश्री से दो मुनिदीक्षा देने के लिए निवेदन किया। तब उन्होंने अतिवात्सल्यपूर्वक कहा वसुनंदी महाराज! ये मुनिदीक्षाएँ मेरे सान्निध्य में आप प्रदान करेंगे। दीक्षा के लिए मैं शुभाशीष व शुभकामना देता हूँ।

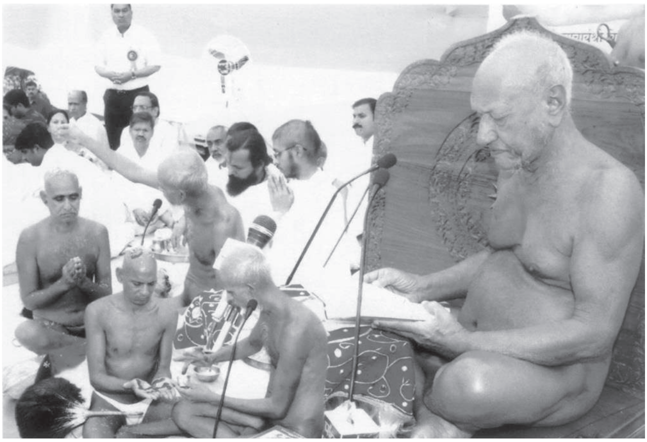

बारसुत्तर-दुसहस्स-वासे संकरणयरे ढिल्लीए।
समाहियालोव्व णिअर-सत्थ-पडिऊलो गुरुवरेण।।864।।
णिद्देसिदो समायो, तदा समुइदाहारोसहीणं च।
बोहीअ गुरुवरो पुण, वच्छल-संजुद-ताडणेणं।।865।।

सन् 2012 शंकरनगर दिल्ली में हमारा स्वास्थ्य इतना अधिक प्रतिकूल हुआ ऐसा लगा जैसे समाधिकाल ही निकट आ गया हो। तब गुरुवर ने समाज को समुचित आहार व औषधि के लिए निर्देश दिया। (आ. श्री ने तब आदेशित भी किया कि तीन दिन न तो किसी से चरण स्पर्श कराने हैं, न किसी श्रावक के संपर्क में आना है) पुनः कुछ स्वास्थ्य लाभ होने पर आचार्यश्री ने वात्सल्य युक्त डाँट से समझाया।

अह एयारस-बारस-वासेसु हरिदुववणे ढिल्लीए।
सव्वा वस्साजोगा, पुण कुंदकुंदभारदीए।।866।।

अनंतर सन् 2011 व 2012 में आचार्यश्री का चातुर्मास ग्रीनपार्क दिल्ली में हुआ। उसके पश्चात् आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के सभी चातुर्मास श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में ही संपन्न हुए।

हत्थिणायपुरे तदा, तित्थखेत्ते चउमासो अम्हाण।
संदेसो लहिदो मइ, गुरुदेवस्स दु लिहिदं तम्मि।।867।।
रत्त-जिणालय-कलसारोहणवसरे आगच्छेसु तुज्झ।
कंखेमिदेदुंसूरि-पदंणिराउल-साहणाए।।868।।(जुम्मं)

सन् 2011 में उस समय हमारा चातुर्मास तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर में हुआ। वहाँ मैंने गुरु का संदेश प्राप्त किया। उसमें लिखा था—महाराजजी! लालमंदिर के कलशारोहण के अवसर पर आपको हमारे पास आना है। मैं अपनी निराकुल साधना के लिए आपको आचार्य पद देना चाहता हूँ।

गुरु-अण्णाइमग्गसिर-सुदि-दसमीइपहुच्चीअहंकिण्णु।
सिस्साण पडिऊल-ववहारादो अग्गे गदो सो।।869।।

गुरु की आज्ञा से मंगसिर सुदी दशमी के दिन हम वहाँ पहुँचे किन्तु शिष्यों का प्रतिकूल व्यवहार होने से कार्यक्रम को आगे स्थगित कर दिया गया।

बेसहस्स-पणरस-वासे सव्वाणुऊलदाणुसारेण।
पदायिदं सूरि-पदं, तए मज्झं तिजणवरीए।।870।।

पुनः आचार्यश्री ने सभी अनुकूलता के अनुसार कुंदकुंदभारती में 3 जनवरी 2015 में मुझे (आचार्य वसुनंदी जी को) आचार्य पद प्रदान किया।

परिसद-भवण-दियंबर-जिण-मंदिरस्स कालगा-ढिल्लीइ।
तेण संघेण सह पण-कल्लाणुच्छवो संपण्णो।।871।।
मईम्मि चिय एगारस-वासम्मि अच्चंत-उच्छाहेणं।
मूलणायगो वीरो, पसिद्ध-जइण-रत्त-मंदिरे।।872।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी के द्वारा संघ के साथ 9 मई से 15 मई 2011 में परिषद भवन दिगंबर जैन मंदिर कालकाजी दिल्ली का पंचकल्याण ाक महोत्सव अति उत्साह के साथ संपन्न हुआ। वहाँ प्रसिद्ध जैन लाल मंदिर में मूलनायक भगवान् श्री महावीर स्वामी हैं।

सुहजम्मजयंदीए, दाणवीर-सेट्ठि-माणिग-चंदस्स।
सट्ठि-समहिद-सदइमे, विसाल-सहा हु भारदीए।।873।।
कत्तिगम्मि एयारस-वासे दायिदा सूरि-सण्णिहीइ।
तित्थमंदिरणेगाण, पेरणा विगासुद्धाराण।।874।। (जुम्मं)

आचार्यश्री के पावन सान्निध्य में दानवीर सेठ माणिकचंद जी की 160वीं शुभ जन्म जयंती के अवसर पर श्री कुंदकुंद भारती में 23 अक्टूबर, 2011 को महासभा आयोजित की गई। तब आचार्यश्री ने अनेक तीर्थों, मंदिरों के विकास और जीर्णोद्धार के लिए प्रेरणा प्रदान की।

बेसहस्सबारसवासे मुणिदिक्खा-सुवण्ण-जयंदी दु।
आयोइदा सूरिस्स, चागराय-सहागारम्मि य।।875।।

सन् 2012 में आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का दीक्षा स्वर्ण जयंती समारोह त्यागराज स्टेडियम, दिल्ली में आयोजित किया गया।

णाणवड्ढण-उच्छवे, आदिणाह-वंसजा वयं कहिदं।
तेण धम्म-सक्किदीहि, गिह-समाय-रट्ठाण णाण
ं।।876।।

उस ज्ञानवर्धन महोत्सव पर आचार्यश्री ने कहा हम तीर्थंकर श्री आदिनाथ के वंशज हैं। किसी भी घर, समाज और राष्ट्र की पहचान धर्म व संस्कृति से ही है।

मुक्ख-आदिहीइ तस्सिं, वीरेंदहेगडेण कहिदं तत्थ।
संजम-सज्झाय-चाग-तव-णाण-मुत्ती आइरियो।।877।।

उस महोत्सव में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे–धर्मस्थली धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र जी हेगड़े। उन्होंने वहाँ कहा कि आचार्यश्री संयम, स्वाध्याय, त्याग, तप व ज्ञान की प्रतिमूर्ति हैं।

भारदीए ठाएज्ज, सल्लेहणा-साहणा-विड्ढीए।
तेरसहिय-बेसहस्स-वासादो ऊणवीसंतं।।878।।

वर्ष 2013 से 2014 तक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सल्लेखना की साधना की वृद्धि के लिए श्री कुंदकुंदभारती दिल्ली में रहे।

झाण-णाण-तव-संजम-विड्ढीए सह तच्चचिंतणेणं।
मोण-साहणाइ सगप्पे थिरिमाइ ण विहरीअ पुण।।879।।

तत्वचिंतन सहित ध्यान, ज्ञान, तप व संयम की वृद्धि के लिए मौन साधना की वृद्धि व स्वात्मा में स्थिरता के लिए आचार्यश्री ने पुनः विहार नहीं किया।

आयोजिदा उससहा, पण्णासम-मुणिदिक्खा-वासम्मिय।
कुंदकुंदभारदीइ, जुग-जेट्ठ-सेट्ठ-आइरियस्स॥880॥

युगज्येष्ठ व युगश्रेष्ठ आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के 50वें मुनि दीक्षा दिवस पर कुंदकुंदभारती में एक धर्मसभा सन् 2013 में आयोजित की गई।

सहसा आवित्तु गुरू, एयदा मम कक्खे भारदीए।
कहीअ देज्जा वयणं, कराविस्सेसि मम समाहिं॥881॥

सन् 2015 में एक बार जब मैं कुंदकुंदभारती में ही था तब आचार्यश्री अचानक मेरे (आ. वसुनंदी जी के) कक्ष में आए और कहने लगे कि वसुनंदी महाराज! आप मुझे वचन दो कि आप मेरी समाधि कराओगे।

अइविणयेण गुरुपदं, फासंतेण-मवरुद्धकंठेणं।
कहिदं मइ सोहग्गो, णो चिंतह तुमं गुरुदेवो॥882॥

तब गुरु की बात सुनकर मेरा कंठ अवरुद्ध हो गया। मैंने अति विनम्रतापूर्वक गुरु के चरण स्पर्श करते हुए कहा कि हे गुरुदेव! आप चिंता न करें, यह मेरा सौभाग्य होगा।

चेयणाचेयण-किदी

(चेतन व अचेतन कृतियाँ)

चेयण-अचेयणकिदी, कालजयी अवि कालजइपुरिसस्स।
जुगदंसग-सजगस्स य, सुधम्ममुत्ति-पहावगस्स दु।।883।।

उन युगदर्शक, सजग, सद्धर्ममूर्ति, धर्मप्रभावक कालजयी पुरुष की चेतन व अचेतन कृति भी कालजयी है।

मुणि-गुत्तिसायरस्स दु, कणगोज्जलणंदिस्स मुणिस्स तहा।
मुणि-णिण्णय-सायरस्स, मुणिवर-विकस्स-सायरस्स य।।884।।
सेट्ठ-उवज्झाय-पदं, दायिदं कमसो जिणमदसत्थाणि।
सयं च भव्वुल्लाणं, अज्झयिदुं अज्झयावेदुं।।885।।

आचार्यश्री ने मुनि गुप्तिसागर, मुनि कनकोज्ज्वलनंदी, मुनि निर्णयसागर व मुनि विकर्षसागर के लिए भव्यों को जिनमत के शास्त्रों का अध्ययन करने व कराने के लिए क्रमशः श्रेष्ठ उपाध्याय का पद प्रदान किया।

कणगोजलस्स दत्तं, सुदसायरो य णिण्णयसायरस्स।
वसुणंदि-णामो विकस्स-सिंधुस्स पण्णासायरो।।886।।

उन्होंने मुनि कनकोज्ज्वलनंदि जी को श्रुतसागर, श्री निर्णयसागर जी को वसुनंदी एवं श्री विकर्षसागर जी को प्रज्ञसागर नाम दिया।

पुण तिण्णि-पाढगाणं, एलाइरिय-पद-माइरियपदं पि।
पस्सिय ताण जोग्गत्त-मकारणं किवं करीअ।।887।।

उनकी योग्यता देखकर उन पर अकारण कृपादृष्टि की। पुनः इन तीनों उपाध्यायों को एलाचार्य पद व पुनः आचार्य पद प्रदान किया।

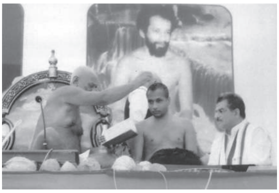

अज्जा-बाहुबलीए, विज्जासिरीए गणिपदं देज्जा।
विसेस-धम्मसहाए, जिणसासणपहावणाए दु॥888॥

आचार्यश्री ने जिनशासन की प्रभावना पूर्वक विशेष धर्म सभा में आर्यिका बाहुबली माताजी व आर्यिका विद्याश्री माताजी को गणिनी पद दिया।

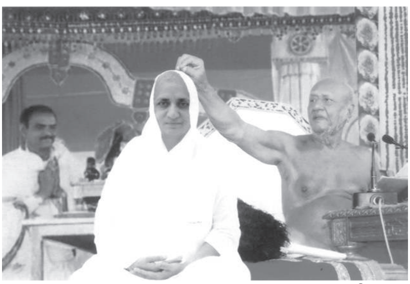

अज्जिगा-बाहुबलीइ, देज्ज गणी पण्णमदी सुह-णामो।
बे-खुल्लय-दिक्खा वि, णाणाणंद-धम्माणंदा॥889॥

उन्होंने आर्यिका बाहुबली माताजी को गणिनी प्रज्ञमती नाम दिया। आचार्यश्री ने दो क्षुल्लक दीक्षा भी प्रदान की थीं और नाम रखा था क्षुल्लक ज्ञानानंद व क्षुल्लक धर्मानंद।

दायिय वदं तेहि सह, ठविदा अणेगसावय-सावियाण।
सुधम्मे आइरियेण सव्व-कल्लाण-भावणाए॥890॥

उनके साथ सर्वकल्याण की भावना से आचार्यश्री ने अनेक श्राविकाओं को व्रत देकर उन्हें सद्धर्म में स्थिर किया।

कराविदा बहुपणकल्लाण-पदिट्ठा तेण आइरियेण।
अणेग-जिणालयाइं, णिम्माणेदुं पेरिदं खलु।।891।।

उन आचार्यश्री ने बहुत सी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करायीं। अनेक जिनालयों के निर्माण के लिए प्रेरणा दी।

सिद्धचक्किंदधया य, कप्पद्दुम-सव्वदोभद्द-पहुदी।
अणेग-महाविहाणं,हवेज्जरिसिवर-सण्णिहीए।।892।।

ऋषिवर के सान्निध्य में श्री सिद्धचक्र विधान, इंद्रध्वज विधान, कल्पद्रुम विधान, सर्वतोभद्र विधान आदि अनेक महाविधान हुए।

सूरि-पेरणाइ तदा, पदायिदा णाणा-पुरक्कारा य।
भिण्ण-भिण्ण-खेत्तेसुं,विहिण्ण-कज्जाणपडिहाणं।।893।।

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज की प्रेरणा से पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में विभिन्न कार्यों के लिए प्रतिभाशालियों को नाना पुरस्कार दिये गए।

जिणसासण-सेवाए, धम्म-समप्पिदाण पोच्छाहणस्स।
दायिदा पुरक्कारा, वच्छलेणं गुरु-आसीए।।894।।

जिनशासन की सेवा और धर्म के प्रति समर्पित लोगों के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी गुरुदेव के आशीर्वाद से उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए वात्सल्यपूर्वक पुरस्कार प्रदान किए गए।

आइरिय-उमासामी-कुंदकुंदमियचंद-चरियचक्की।
सिद्धंत-चक्कवट्टी, णेमिचंद-पुरक्कारो तह।।895।।
बंभी-संगीद-समयसारो उसहदेवसंगीदादी।
पेरणाए दायिदा, तस्स अहिंसा-पुरक्कारा।।896।। (जुम्मं)

आचार्यश्री की प्रेरणा से आचार्य उमास्वामी पुरस्कार, आचार्य कुंदकुंद पुरस्कार, आचार्य अमृतचंद्र पुरस्कार, चारित्र चक्रवर्ती पुरस्कार, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य नेमिचंद्र पुरस्कार, ब्राह्मी पुरस्कार, संगीत समयसार पुरस्कार, वृषभदेव संगीत पुरस्कार, अहिंसा आदि पुरस्कार प्रदान किए गए।

भमं णिवारिदु-मणेग-विसयेसु जिणसुदपमाणेहि सह।
लिहिदाणि बहु-पुत्थाणि, संपइ पण्ह-समाहाणस्स।।897।।

वर्तमानकाल में लोगों के मन में उठ रहे प्रश्नों के समाधान के लिए और अनेक विषयों में भ्रमित जनों के भ्रम के निवारण के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जिनागम के प्रमाणों से सहित अनेक पुस्तकें लिखीं।

पिच्छिकमंडलु-णामय-पोत्थे अच्चंत-सेट्ठ-उवएसो।
भिण्ण-भिण्ण-विसयेसुं, जणकल्लाणोवजोगीसुं।।898।।

आचार्यश्री ने अपनी सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्य के सौंदर्य को प्रकट करने वाली **पिच्छी-कमंडलु** नामक पुस्तक में जन कल्याण के लिए उपयोगी भिन्न-भिन्न विषयों पर अत्यंत श्रेष्ठ उपदेश दिया।

अणेग-णिबंधा तम्मि, साहित्तिय-भासाइ माणणीया।
विदूहि णाणवड्ढगा, जम-णियम-कत्तव्व-पेरगा।।899।।

उस पुस्तक में साहित्यिक भाषा में शब्द माधुर्य से युक्त अनेक निबंध हैं। वे सभी निबंध ज्ञानवर्द्धक, विद्वानों के द्वारा माननीय एवं यम, नियम व निज कर्त्तव्य के प्रेरक हैं।

जिणसासणे णिमित्तं, जे ते पहाणा कज्जसिद्धीए।
भग्गं पुरिसत्थो सय, तेहि विणा कज्जसिद्धी णो।।900।।

जिनशासन में जो कार्यसिद्धि के निमित्त हैं वे भाग्य और पुरुषार्थ सर्वदा प्रधान हैं। उनके बिना कार्य की सिद्धि संभव नहीं है।

दइव-पुरिसत्थ-णामय-पोत्थे अइ-बोहप्पद-वक्खाणं।
अणेगंत-भाव-जुदं, संकाण णिराकरणेण सह।।901।।

आचार्यश्री की **''दैव और पुरुषार्थ''** नामक पुस्तक में शंकाओं के निराकरण के साथ अनेकांतभाव से युक्त अति बोधप्रद व्याख्यान है।

णियोजिदं दइव-भग्ग-सद्देहि वा पुव्वकिदकम्मफलं।
संपइयाले किद-उज्जमो पुरिसत्थो तिजोगेहि।।902।।

पूर्वकृत् कर्म के फल को दैव या भाग्य कहा गया है। वर्तमान काल में योगत्रय से किया जा रहा उद्यम पुरुषार्थ है।

सिव-हेदू जिणसमये, सुधम्मस्स अयल-सद्धाए जुदा।
जिणवर-सुदणिग्गंथाणं भत्ती चउविह-संघस्स।।903।।

चतुर्विध संघ, जिनेन्द्रदेव, जिनश्रुत, निर्ग्रन्थगुरु और सद्धर्म की अचल श्रद्धा से युक्त भक्ति जिनशासन में मोक्ष का हेतु कही जाती है।

भत्तिरस-अंगूरो दु, मुणिंदस्स अणुवम-सुकिदी जस्सिं।
चित्तविसुद्धीए अघ-खालगा बहु-थुदि-पूयादी।।904।।

भक्तिरस से परिपूरित **'भक्ति रस के अंगूर'** नामक पुस्तक मुनिश्री की अनुपम कृति है। जिसमें चित्त की विशुद्धि हेतु पापों का नाश करने वाली बहुत सी स्तुतियाँ और पूजा आदि हैं।

काल-सत्थ-मदप्पा य, जीवणिच्चादी समयसद्दत्था।
भारदीय-सक्किदीइ, पसंगाणुसारेण गहेज्ज।।905।।

भारतीय संस्कृति में 'समय' शब्द के कई अर्थ हैं जैसे-काल, समय, शास्त्र, मत, आत्मा, जीवन आदि। जहाँ जैसा प्रसंग हो वहाँ उसी प्रकार का अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

समय-मुल्लो लहुकाय-किदी णवरि विसिट्ठत्थ-संजुत्ता।
समत्था सम्म-दिसाइ, णर-चिंतणं परिवट्टेदुं।।906।।

आचार्यश्री की **'समय का मूल्य'** नामक लघुकाय कृति विशिष्ट अर्थ से संयुक्त है। यह कृति मनुष्य का चिंतन समीचीन दिशा में परिवर्तित करने में समर्थ है।

जेहि वसणेहि जीवा, दुग्गइ-दुह-अणिट्ठाणि पावंते।
ताण सरूव-फलाणं भासग-सत्तवसण-सुकिदी य।।907।।

जिन व्यसनों से जीव दुर्गति, दुःख व अनिष्ट प्राप्त करते हैं उनके स्वरूप और उनके फलों को कहने वाली आचार्यश्री की **'सप्तव्यसन'** नामक कृति है।

मंस-मज्ज-सेवणं च, जूअकेली चोरिअं आहेडं।
पर-थी-वेस्सागमणं, सत्तवसणाणि सय हेयाणि।।908।।

माँस सेवन, मदिरा सेवन, द्यूतक्रीड़ा (जूआ खेलना), शिकार करना, चोरी करना, परस्त्री गमन व वेश्यागमन ये सात व्यसन सदैव हेय हैं।

अभिक्खण-णाणुवजोग-भावणा वरा सोलस-कारणेसु।
चित्तविसोहगा सया, तित्थप्पइडि-बंध-कारगा।।909।।

सोलहकारण भावनाओं में अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नामक श्रेष्ठ भावना है जो सदैव चित का शोधन करने वाली और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने वाली है।

णाण-महत्तं कहिदं, सरलसद्देहि लहुकायकिदीए।।
अच्चंतुवजोगी सा, पढेज्जा अप्पहिदाकंखी।।910।।

इस लघुकाय कृति में आचार्यश्री ने ज्ञान की महत्ता का वर्णन दिया है। वह **'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग'** नामक कृति अत्यंत उपयोगी है। प्रत्येक आत्म-हित के आकांक्षी को यह पढ़नी चाहिए।

णिरंतरं सण्णाणे, वट्टेदि अभिक्खण-णाणुवजोगी।
णाणभावणाए णिय-चित्तं सोहेदि सण्णाणी।।911।।

जो निरंतर सम्यग्ज्ञान में वर्तन करता है वह अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी जानना चाहिए। वह सम्यग्ज्ञानी ज्ञान-भावना से निज चित्त का शोधन करता है।

गुरु-संथा-महत्तं दु, किदी उवजोगी सगप्पहिदत्थं।
जं विणा गुरु-मसक्को, उसपहावणा परप्पहिदं।।912।।

आचार्यश्री की **'गुरु संस्था का महत्व'** नामक कृति भी स्वात्महित के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि गुरु के बिना आत्महित, परहित और धर्म की प्रभावना अशक्य है।

विस्से विज्जंतणेग-विहा मद-संपदाय-धारणा वा।
किण्णु दयाधम्मजुदो, सव्वदा चिय माणवधम्मो।।913।।

विश्व में अनेक प्रकार के मत, संप्रदाय अथवा धारणा हैं। किन्तु मानव धर्म सर्वदा ही दयाधर्म से युक्त है।

सव्वजणाण-मुवओगि-माणवधम्मणामय-पोत्थे।
आगम-सारो पहावि-दिट्ठंत-सहिद-वक्खाणं दु॥914॥

'मानवधर्म' नामक यह पुस्तक सभी लोगों के लिए उपयोगी है। इसमें आगम का सार समाहित है। प्रभावी दृष्टांतों से सहित अनुपम व्याख्यान है।

तित्थयर-वड्ढमाणे, पुण्णवड्ढग-वीरजीवण-चरियं।
तस्स सव्वोदयी सुह-देसणा दु सव्वहिदयरा य॥915॥

'तीर्थंकर वर्द्धमान' नामक पुस्तक में संक्षेप में महावीरस्वामी का पुण्यवर्द्धक जीवन चरित्र और उनकी सर्वोदयी, सर्वहितंकर शुभदेशना वर्णित है।

अहिंसा विस्सजणणी, अहिंसा-विस्सधम्म-किदीइ तस्स।
अहिंसाइ पदंसगं, सव्वुवजोगी वक्खाणं दु॥916॥

अहिंसा विश्व की जननी है। आचार्यश्री की **'अहिंसा-विश्वधर्म'** नामक कृति में अहिंसा को प्रदर्शित करने वाला सर्वोपयोगी व्याख्यान है।

परिग्गहो दु बीअं व, सव्व-अघाण णवरि अपरिग्गहेण।
खयंति सव्वपावाणि, पयासेणं अंधयारं व॥917॥

परिग्रह सर्व पापों के बीज के समान है। विशेषता यह है कि अपरिग्रह से सर्व पाप इस प्रकार क्षय को प्राप्त हो जाते हैं जैसे प्रकाश से अंधकार नष्ट हो जाता है।

परिग्गहो अहमूलं, परिग्गहस्स कुणदि बहु-पावं जं।
भट्ठायारुम्मूलण-मपरिग्गहादो संभवो हि॥918॥

परिग्रह पाप का मूल है। क्योंकि जीव परिग्रह के लिए बहुत से पाप करता है। देश में बढ़ रहे भ्रष्टाचार का उन्मूलन अपरिग्रह से ही संभव है।

किदीइ अपरिग्गहादु, भट्टायारुम्मूलणे जदिणा दु।
अपरिग्गह-माहच्चं,वण्णिदं णर-जीवणम्मिसय॥919॥

'अपरिग्रह से भ्रष्टाचार उन्मूलन' नामक कृति में यतिवर ने मनुष्य के जीवन में अपरिग्रह के माहात्म्य का वर्णन किया है।

रायदोसमलिणप्पा, विक्किदो णिम्मलप्पा समयसारो।
तं करेज्ज पुरिसत्थं, सगभावं णिम्मलं करिदुं॥920॥

राग व द्वेष से मलिन आत्मा विकृत है और निर्मल आत्मा समयसार है। अतः अपने भावों को निर्मल करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए।

रयणत्तय-फलरूवं, बारसंगसारं णिम्मलप्पं दु॥
लहिदुं समेज्ज मोहं, णिम्मलवदं सया पालेज्ज॥921॥

द्वादशांग का सार व रत्नत्रय के फल रूप निर्मलात्मा को प्राप्त करने के लिए मोह का शमन करना चाहिए एवं सदैव निर्मलव्रत का पालन करना चाहिए।

णारि-ठाण-कत्तव्वे, किदीइ वण्णिदं णामणुसारेण।
जं भारद-सक्किदीइ, मेरुदंडोव्व सुणारी सय॥922॥

'नारी का स्थान और कर्त्तव्य' नामक कृति में नाम के अनुसार ही विषय का वर्णन किया गया है क्योंकि भारतीय-संस्कृति में नारी सदैव मेरुदंड के समान है।

जा सुसक्कार-जुत्ता, कत्तव्वसीला वच्छला णारी।
सुधम्मपणोल्लया सा,धम्मभज्जा कहिज्जेदि सय॥923॥

जो नारी सुसंस्कार से युक्त, कर्त्तव्यशील, वात्सल्य से परिपूरित और सदा सद्धर्म की प्रेरणा देने वाली है वह धर्मपत्नी कही जाती है।

णारीइ धवलपक्खो, परूविदो दूरदिट्ठीइ मुणिणा।
कलह-पदण-दुहाणि तत्थ जत्थ उवेक्खा णारीणं॥924॥

आचार्यश्री ने दूरदृष्टि से नारी का धवल पक्ष निरूपित किया, जहाँ नारियों की उपेक्षा होती है वहाँ कलह, पतन व दुःख होता है।

विस्सधम्म-दसलक्खण-किदीइ णिद्दिट्ठा सरलसद्देसु।
उत्तमखमाइ-धम्मा, णिव्वाणदुग्ग-सोवाणं व।।925।।

''**विश्वधर्म-दसलक्षण**'' नामक कृति में सरल शब्दों में उत्तम क्षमादि धर्मों को कहा गया है। वे धर्म मोक्षमहल के सोपान के समान हैं।

धम्मदसलक्खणा सय, पसत्था सुहदा संतिदायगा य।
विदूहि आयरणीया, पमाणिग-जीवण-पद्धती हु।।926।।

धर्म के ये दस लक्षण प्रशस्त, सुखद और शांतिदायक हैं। उत्तमक्षमादि धर्म विद्वानों के द्वारा आदरणीय हैं। धर्म के दस लक्षण प्रमाणिक जीवन पद्धति है।

विस्सधम्मस्स मंगल-पाढ-किदी मंगल्ला तिलोएसु।
पढंति सुणंति जे तं, चिंतंते लहंते संतिं।।927।।

'**विश्वधर्म के मंगल पाठ**' नामक कृति तीनों लोकों में मंगल करने वाली है। जो कोई भी उसे पढ़ते हैं, सुनते हैं व चिंतन करते हैं वे शांति प्राप्त करते हैं।

अणेगंत-सत्तभंगि-सिआवाय-णामय-लहु-किदी तस्स।
णादुं जिणसिद्धंतं, णिमित्तं हु जिणमद-पाणोव्व।।928।।

''**अनेकांत-सप्तभंगी-स्याद्वाद**'' आचार्यश्री की लघुकृति है। यह जिनसिद्धांत को जानने में निमित्त है। यह पुस्तक जिनमत के प्राण के समान है।

सिद्धंतचक्की सिआवायकेसरी विज्जाणंद-जदी।
धम्मणेगंत-णिउणो, खमो खयिदुं सव्वविवायं।।929।।

सिद्धांतचक्रवर्ती, स्याद्वादकेसरी, अनेकांत धर्म में निपुण आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सर्वविवादों को क्षय करने में समर्थ थे।

पजलेदु णाणदीवो, किदीए पेरिदं हु सण्णाणस्स।
जं अण्णाणं जणाण, लोए गहण-अंधयारं व।।930।।

‘‘**ज्ञानदीप जले**’ इस कृति में आचार्यश्री ने लोगों को सम्यग्ज्ञान के लिए प्रेरित किया। क्योंकि अज्ञान लोक में लोगों के लिए घोर अंधकार के समान है।

कत्थ ईसरो किदी हु, इमा अवि समत्था णत्थिगेसुं दु।
रहस्स-मुग्घाडंतो, जणिदुं ईसरं पडि सद्धं॥931॥

‘‘**ईश्वर कहाँ है**’’ यह कृति रहस्यों को उद्‌घाटित करते हुए नास्तिक लोगों में ईश्वर के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने में समर्थ है।

वण्णिदं लहुकिदीए, पावणपव्व-रक्खा-बंधणम्मि य।
रक्खाबंधणविसये, कहं पव्वायरणं करेज्ज॥932॥

‘**पावन पर्व रक्षाबंधन**’ नामक लघुकृति में रक्षाबंधन के विषय में वर्णन किया है कि रक्षाबंधन पर्व क्यों और कैसे मनाना चाहिए।

वच्छलपव्वो वि विण्हुकुमार-मुणि-वच्छल-दंसगत्तादु।
वच्छलंगो भावणा, हेदू तित्थयर-पइडीए॥933॥

मुनिश्री विष्णुकुमार के वात्सल्य का प्रदर्शक होने से यह पर्व वात्सल्यपर्व भी कहलाता है। यह वात्सल्य सम्यग्दृष्टि का एक अंग है। यह वात्सल्य भावना तीर्थंकर प्रकृति का हेतु है।

रयणत्तय-णिमित्तं दु, मंतो मुत्ती सज्झाओ णिच्चं।
रयणत्तयं मोक्खस्स-मग्गो णिय-अप्पसरूवो य॥934॥

‘**मंत्र, मूर्ति और स्वाध्याय**’ ये तीनों नित्य ही रत्नत्रय के निमित्त हैं। रत्नत्रय मोक्ष का मार्ग है और निज आत्मा का स्वरूप है। (इस कृति में आचार्यश्री ने इनकी महत्ता को दर्शाया है।)

वयणसुद्धीइ हेदू, मंतो तहा चित्तसुइस्स मुत्ती।
चरिय-सुद्धीइ सज्झाओ तिण्णि य अप्पसुद्धीए॥935॥

मंत्र वचनशुद्धि का हेतु है, मूर्ति चित्तशुद्धि का हेतु है और स्वाध्याय चारित्र की शुद्धि का हेतु है और ये तीनों ही आत्म-शुद्धि का हेतु हैं।

दिणे अक्कोव्व महीइ, रयणीए चंदोव्व उहय-कुलाण।
कुलवंता णारीव दु, सक्कारि-पुत्तो कुलदीवो॥936॥

पृथ्वी पर दिन में सूर्य के समान, रात्रि में चंद्रमा के समान और दोनों कुलों की कुलवंता नारी के समान ही संस्कारी सुपुत्र कुल का दीपक कहा जाता है।

धम्मं रक्खेदुं लहु-कायकिदी सुसक्कार-पेरणं च।
दायिदुं लिहिदा वट्टमाणे सूरिणा बालाणं।।937।।

वर्तमान में धर्म की रक्षा के लिए और बालकों को सुसंस्कारों की प्रेरणा देने के लिए आचार्यश्री के द्वारा **'सुपुत्र कुलदीपक'** नामक लघु कृति का लेखन किया गया।

सव्वुदय-तित्थभूदो, जिणधम्मो सय मण्णदे तिलोए।
णेव एगंतवादी, समत्था चिय खंडेदुं तं।।938।।

तीनों लोकों में सदैव यह जिनधर्म सर्वोदय-तीर्थभूत माना जाता है। उस जिनधर्म का खंडन करने में कोई एकांतवादी समर्थ नहीं है।

तित्थ-मिद-महदुल्लहं, एगंतवादि-मिच्छादिट्ठीणं।
सव्वोदयी हिदयरो, धम्मो अणेगंतजुत्तो य।।939।।

यह सर्वोदय तीर्थ एकांतवादी और मिथ्यादृष्टियों के लिए अति दुर्लभ है। यह जिनधर्म सर्वोदयी, हितकारी और अनेकांत से युक्त है।

विसालदिट्ठीइ सम्म-चिंतणेण लिहिदं आइरियेणं।
किदी सव्व-मण्णा खलु, विस्सधम्मस्स रूवरेहा।।940।।

'विश्वधर्म की रूपरेखा' नामक यह कृति सर्वमान्य है। आचार्यश्री ने विशालदृष्टि व समीचीन चिंतन से इस लघु कृति का लेखन किया।

भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री पी.एन. भगवती जी को श्रीफल समर्पित करते हुए

मिलाविदो मिच्छासिद्धंतो सम्म-पहपोसगगंथेसु।
कहाण-पहुदि-एगंतवादीहि सव्व-अहिदयरो हु॥941॥

कहान-एकांतवादियों आदि ने सम्यक्पथ के पोषक ग्रंथों में मिथ्यासिद्धांतों की मिलावट की। जो सबके लिए सर्व प्रकार अहितकर है।

दियंबरजइणसाहित्ते वियारो णामय-किदी तेणं।
लिहिदा संरक्खेदुं, एगंतमदादु भव्वुल्ला॥942॥

''**दिगंबर जैन साहित्य में विकार**'' नामक उनकी यह श्रेष्ठ कृति है। आचार्यश्री द्वारा यह कृति लिखी गई जिससे भव्यजनों की एकांतमत से रक्षा की जा सके।

सेट्ठ-भवतरणी-कला, चेयणा-विज्जा अज्झप्पणाणं।
मोक्ख-सिद्धीअसक्का,तेणंविणाकत्थविकयावि॥943॥

अध्यात्म-ज्ञान श्रेष्ठ भवतरणी कला और चेतना की विद्या है। उसके बिना कहीं भी और कभी भी मोक्ष की सिद्धि अशक्य है।

अज्झप्पिय-सुत्तीओ, चित्तविसुद्धीइ कसायसमणस्स।
कारणं तं विरइदं, अयारण-बंधुणा धम्मीण॥944॥

आध्यात्मिक सूक्तियाँ चित्तविशुद्धि और कषाय-शमन का कारण हैं। अकारण-बंधु आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने धार्मिक जनों के लिए **'आध्यात्मिक सूक्तियाँ'** नामक पुस्तक की रचना की।

पवयणकिदी अग्गी य, जीवत्त-सत्ती सुपसिद्धा तस्स।
अग्गिम्मि वि पाणो खलु, सिद्ध-मागमाइ-पमाणेण॥945॥

''**अग्नि और जीवत्व शक्ति**'' नामक आचार्यश्री की प्रसिद्ध प्रवचन कृति में आगमादि के प्रमाण से आचार्यश्री के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि अग्नि में भी प्राण हैं।

जे णो मणंति थावर-कायेसु जीवत्त-सत्ती खादा।
तेजणाविदुं सिद्धंत-समण्णिद-किदि-सारभूदा॥946॥

जो स्थावरकाय जीवों में जीवत्व शक्ति नहीं मानते उन्हें यह ज्ञान कराने के लिए सिद्धान्त से समन्वित यह कृति विख्यात और सारभूत है।

महप्पीसा-खादस्स, ईसावच्छरो जस्स णामेणं।
तस्स णामेण लिहिदं, खमाइ-गुणाण पगासणाइ॥947॥

जिनके नाम से ईसा वर्ष प्रारंभ हुआ उन विख्यात महात्मा ईसा के नाम से उनके क्षमादि गुणों के प्रकटीकरण के लिए **'महात्मा ईसा'** नामक पुस्तक आचार्यश्री के द्वारा लिखी गई।

सम्मत्त-सहिदा परम-जिणभत्ता जिणसासण-रक्खगा य।
देवी पउमावदी य तित्थयर-भत्त-सहायी सय॥948॥

देवी पद्मावती सम्यक्त्व से युक्त,परम जिनभक्ता, जिनशासन की रक्षिका एवं सदैव तीर्थंकर के भक्तों की सहायिका है।

ताए विसये लिहिदा, सुकिदी महादेवी पउमावदी।
भमाइं णिवारेदुं, जणाण भमिदाण संसारे॥949॥

उन देवी के विषय में आचार्यश्री के द्वारा संसार में भ्रमित लोगों के भ्रम के निवारण के लिए **'महादेवी पद्मावती'** नामक श्रेष्ठ लघुकाय कृति लिखी गई।

बे-इंदिय-जीवादो, सण्णि-पणिंदिय-पज्जंतं सव्वा।
वदिदुं समत्था वरं, कहं किं वदेज्ज ण जाणंति॥950॥

दो इंद्रिय जीव से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत सभी जीव बोलने में समर्थ हैं किन्तु कब और क्या बोलना चाहिए, ये नहीं जानते।

तं जणाविदुं लिहिदा, सद्दसाहणा अइपहावगकिदी।
भावसुदस्स कारणं, सद्देहि विणा ण सम्मत्तं॥951॥

उसी का ज्ञान कराने के लिए आचार्यश्री ने **'शब्द साधना'** नामक अति प्रभावक कृति का लेखन किया। शब्द भावश्रुत का भी कारण हैं। शब्दों के बिना सम्यक्त्व भी नहीं होता।

पढम-कामदेव-बाहुबलि-पसिद्धो गोम्मडेसणामेण।
चामुंडरायस्स गोम्मडस्स ईसो गोम्मडेसो॥952॥

प्रथम कामदेव भगवान् बाहुबली श्रीगोम्मटेश नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। चामुंडराय का एक नाम गोम्मट भी आता है। उन गोम्मट के ईश गोम्मटेश कहलाते हैं।

गोम्मडेस-जिणो सिरी-बाहुबलीसामी णामय-किदी हु।
लिहिदा परिचायगा य, तं पडि सूरिस्स भत्तीए॥953॥

आचार्यश्री के द्वारा **गोम्मटेश जिन श्रीबाहुबली स्वामी** नामक पुस्तक लिखी गई। वह कृति श्री गोम्मटेश बाहुबली स्वामी के प्रति उनकी भक्ति की परिचायिका है।

कहं उच्छुवायरणं, करेज्ज पणवीससयम-मोक्खस्स।
वीरस्स इदं लिहिदं, लहुकिदीए आइरियेणं॥954॥

महावीर स्वामी का **''2500वाँ निर्वाण उत्सव कैसे मनायें''** नामक लघुकृति में आचार्यश्री ने लोगों को उत्सव मानाने के निर्देश दिए।

आदि-किसि-सिक्खग-तित्थयर-आदिणाहो-णामय-लहु-किदी।
लिहिदा सव्वुवजोगी, आइरिय-विज्जाणंदेणं॥955॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने **'आदि-कृषि-शिक्षक तीर्थंकर आदिनाथ'** नामक सर्वोपयोगी लघुकृति का लेखन किया।

लिहिदा किदी य सातंतं, समायवादो अणुसासणं च।
समाय-विआस-हेदू, अज्झप्प-विज्जासिद्धीए॥956॥

'स्वतंत्रता, समाजवाद और अनुशासन' इस कृति का लेखन आचार्यश्री ने अध्यात्म विद्या की सिद्धि के लिए किया। यह कृति समाज विकास का हेतु भी है।

समणसक्किदी दीवावली णामय-किदी लिहिदा मुणिणा।
तस्स पव्वकारणं च, सेट्ठमहिमा वण्णिदा तम्मि॥957॥

मुनिश्री के द्वारा **"श्रमण संस्कृति और दीपावली"** नामक कृति का लेखन हुआ। उस पुस्तक में उस पर्व का कारण और उसकी श्रेष्ठ महिमा का वर्णन किया।

णेव धम्मणिरवेक्खो, संपदायणिरवेक्खो भारदं च।
इमा वियार-धारा हु, सव्वुदयी सव्व-हिदयरा य॥958॥

भारत देश **'धर्मनिरपेक्ष नहीं, संप्रदाय निरपेक्ष'** है। यह विचारधारा सर्वहितकारी व सर्वोदयी है। (इस कृति का सृजन भी आचार्यश्री के द्वारा किया गया।)

मोहणजोदडो जइण-परंपरा पमाणं णाम-किदी दु।
लिहिदा बहु-भासासुं, अणुवादिदा बहु-मणीसीहि॥959॥

'मोहनजोदड़ो-जैन परंपरा और प्रमाण' नामक कृति भी आचार्यश्री के द्वारा लिखी गई। यह बहुत मनीषियों के द्वारा बहुत भाषाओं (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी) में अनुवादित है।

विस्सस्स पाईण-सब्भदासु एगा मोहणजोडदस्स।
जइण-पडिमादीणं च, अवसेसा लहिदा खणणम्मि॥960॥

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में मोहनजोदड़ो की सभ्यता एक है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में जैन प्रतिमा आदि के अवशेष भी प्राप्त हुए।

पुरातच्चविदूहि उग्घाडिद-जइणधम्म-पाईणत्तं।
पोत्थिअं पदंसेदुं, लिहिदं अणेगपमाणजुदं॥961॥

पुरातत्त्वविदों के द्वारा उद्घाटित जैनधर्म की प्राचीनता को प्रदर्शित करने के लिए आचार्यश्री ने अनेक प्रमाणों से युक्त यह पुस्तक लिखी।

कल्लाणमुणी राओ-सिगंदरो णामो इदिवत्त-जुदा।
लिहिदा तेण लहुकिदी, खण-भंगुरत्त-पडिपादिगा॥962॥

''**कल्याण मुनि और सम्राट सिकंदर**'' नामक इतिहास से युक्त यह लघुकृति आचार्यश्री के द्वारा लिखी गई। यह कृति संसार की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन करने वाली है।

मंगलस्स भव्वाणं, मंगल-कुमकुमपाढ-णामय-किदी।
सद्धम्म-संवड्ढगा, लिहिदा विसयविरत्ति-हेदू।।963।।

भव्यों के मंगल के लिए सद्धर्म का संवर्द्धन करने वाली विषय-विरक्ति का हेतु ''**मंगल कुमकुम पाठ**'' नामक कृति आचार्यश्री ने लिखी।

जइण-सक्किदीइ दाण-पूयाहि अच्चंत-महच्चजुदाहि।
विणा ण संभवो पुण्ण-वड्ढण-मह-खओ गेहीणं।।964।।

जैन संस्कृति में दान व पूजा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनके बिना गृहस्थों का पुण्यवर्धन और पापों का क्षय संभव नहीं है।

गुरु-परिवाय-वियारो, णामय-किदी लिहिदा महरट्ठीइ।
समाहाण-पदायगा, बहुपसिद्धा सव्वुवजोगी।।965।।

'**गुरु-परिवाद विचार**' नामक यह कृति आचार्यश्री ने मराठी भाषा में लिखी। यह कृति समाधानों को देने वाली, बहुप्रसिद्ध व सर्वोपयोगी है।

आइरियेण मुणिभत्त-खेत्तवालाण सत्थुत्त-सरूवो।
णामय-किदी लिहिदादु, सम्म-सरूव-वण्णगा ताण।।966।।

''**मुनिभक्त क्षेत्रपालों का शास्त्रोक्त स्वरूप**'' नामक आचार्यश्री द्वारा लिखित कृति उन क्षेत्रपालों के सम्यक् स्वरूप का वर्णन करने वाली है।

जिणसासणपहावगा, धम्मरक्खगा सम्मत्तवड्ढगा।
भव्व-हिदयरा ते चिय, सुभत्ता तित्थयरादीणं।।967।।

वे क्षेत्रपाल जिनशासन प्रभावक, धर्मरक्षक, सम्यक्त्व-वर्द्धक, भव्यों के हितकर और तीर्थंकर आदि के भक्त होते हैं।

वियडिं णिराकरेदुं करिदु-मणेगसंकासमाहाणं।
सम्मत्त-सुइस्स मिच्छ-मण्णदं लुंपिदुं समत्था।।968।।

यह कृति विकृति के निराकरण में, अनेक शंकाओं के समाधान करने में, मिथ्या मान्यताओं का लोप करने में और सम्यक्त्व की पवित्रता के लिए समर्थ है।

वीर-पहु-किदीए चिय, अंत-तित्थयरस्स भरदखेत्तस्स।
परियियो दायिदो संखेवेणं जणसामण्णस्स।।969।।

'वीर प्रभु' नामक कृति में आचार्यश्री ने जनसामान्य के लिए संक्षेप से भरतक्षेत्र के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीरस्वामी का परिचय दिया।

णर-देहो पंचिंदिय-विसय-भोत्ता अवि हेमपिंजरं व।
दुहमूलपारतंतं पावपुण्णुहया भव-हेदू।।970।।

मनुष्य का शरीर पंचेन्द्रिय विषयों का भोक्ता है और स्वर्ण के पिंजरे के समान है। (जिसमें आत्मा रूपी पक्षी फड़फड़ाता है) यह परतंत्रता ही दुःख का मूल है। पाप और पुण्य दोनों ही संसार का कारण हैं।

सायत्तं कराविदं, जइणधम्मसिद्धंत-अहिंसाए।
भारदं मोहणदास-कम्मचंद-महप्प-गंधिणा।।971।।

श्री मोहनदास कर्मचंद महात्मागांधी ने जैनधर्म के सिद्धांत अहिंसा के बल से भारत को स्वतंत्र कराया।

जइणधम्मो अहिंसा, महप्पा-गंधी किदी चिय लिहिदा।
अहिंसाइ समा णेव, अण्णाइं अत्थ-सत्थाइं।।972।।

आचार्यश्री ने **''जैनधर्म, अहिंसा एवं महात्मागांधी''** नामक यह कृति लिखी। अहिंसा के समान कोई अन्य अस्त्र-शस्त्र नहीं है।

बाहुबलि-रायहाणी, तक्खसिला इमाइ किदीइ तेणं।
वण्णिदं इदिवत्तं पि, सब्भदादी पमाणेहि सह।।973।।

'बाहुबलिस्स रायहाणी तक्खसिला'' इस कृति में आचार्यश्री ने प्रमाणों के साथ सभ्यतादि इतिहास का वर्णन किया।

सूदग-पादग-विही दु, अणादीदो वण्णिदा जिणसमये।
मिच्छादिट्ठी सो जो, णेव मण्णेदि दु विहिं तस्स।।974।।

जिनशासन में अनादिकाल से सूतक-पातक विधि का वर्णन किया गया है। जो उस सूतक-पातक की विधि को नहीं मानता वह मिथ्यादृष्टि है। **'सूतक-पातक न मानने वाला मिथ्यादृष्टि'** इस कृति का लेखन आचार्यश्री द्वारा किया गया।

आइरियेणं लिहिदा, किदी पयातंतस्स मूलमंतो।
तं पढित्ता विवेगी, करेज्ज पवित्ति-मुच्छाहेण।।975।।

आचार्यश्री ने **'प्रजातंत्र के मूलमंत्र'** नामक कृति का लेखन किया। उसे पढ़कर विवेकीजन उत्साहपूर्वक सम्यक् प्रवृत्ति कर सकेंगे।

धम्मखेत्तम्मि मुत्ती, पसत्थालंबणं उवासगाणं।
मुत्तिमंत-झाणं खलु, कारणं सिवपदपत्तीए।।976।।

धर्मक्षेत्र में उपासकों के लिए मूर्ति प्रशस्त आलंबन है। मूर्तिमान का ध्यान मोक्षपद की प्राप्ति का कारण है।

अस्स-परंपराए दु, अज्जिगा-दिक्खा सुह किदी लिहिदा।
तेण संबंधिदणेग-भंतिं णिराकरिदुं मुणिणा।।977।।

आचार्यश्री ने **''आर्ष परंपरा में आर्यिका दीक्षा''** नामक श्रेष्ठ कृति लिखी। मुनिश्री ने उनसे संबंधित अनेक भ्रान्तियों का निराकरण करने के लिए इस कृति को लिखा।

सद्दिट्ठि-खेत्तवालो, लहुपोत्थअं लिहिदं आइरियेण।
ताण कज्ज-अत्थित्तं, इच्चादी वण्णिदा इमम्मि।।978।।

आचार्यश्री ने **'सम्यग्दृष्टि क्षेत्रपाल'** नामक लघुपुस्तिका लिखी। उन क्षेत्रपाल के कार्य, अस्तित्व इत्यादि इसमें वर्णित किए गए।

णेव ताण सम्माणं, मिच्छत्तं धम्मपहावग-किदाण।
सरलसद्देसु कहिदं, जिणागमस्स पमाणेहि सह।।979।।

क्षेत्रपालों के धर्मप्रभावक कृत्यों के लिए उनका सम्मान करना मिथ्यात्व नहीं है। जिनागम के प्रमाणों के साथ सरल शब्दों में आचार्यश्री ने कहा।

दाणं च विस्सपसिद्ध-पउमावदीइ बहुचच्चिदा-किदी।
पत्तकेसरि-आदीण, पसंगेहिं सह वण्णिदं दु॥980॥

"**विश्वप्रसिद्ध पद्मावती की देन**" आचार्यश्री की बहु चर्चित कृति है। वह पात्रकेसरी आदि के प्रसंगों के साथ वर्णित है।

तेवीसइम-तित्थयर-पासणाह-महोवसग्गो हरिदो।
ताइ धरणिंदेण सह, किदमुवयारं ण विम्हरेज्ज॥981॥

देवी पद्मावती ने धरणेंद्र के साथ 23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का महा उपसर्ग दूर किया। क्योंकि शिष्टजन अपने ऊपर किए गए उपकार को कभी नहीं भूलते।

रुक्खेसु जीवत्थित्त-पगासग-किदी वणपदि-वणप्फदी।
पज्जावरण-रक्खगा,गणि-विज्जाणंदेण लिहिदा॥982॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज द्वारा लिखित "**वन का पति वनस्पति**" नामक यह कृति वृक्षों में जीव के अस्तित्व को दिखाती है। यह कृति पर्यावरण की संरक्षिका है।

जिणसासणे पसिद्धा, पंचवण्णी दु धया अणादीदो।
पणपरमेट्ठि-वायगा, पण-परावट्टण-णासगा य॥983॥

जिनशासन में यह पंचवर्णी ध्वजा अनादिकाल से प्रसिद्ध है। यह ध्वजा पंचपरमेष्ठी की वाचक और पंच परावर्तन की नाशक है।

आइरिय-पेरणाए, अच्चंतुवजोगी अणेग-गंथा।
वा आसीवायेणं, पगासिदा अणेगसंथाहि॥984॥

इनके अतिरिक्त आचार्यश्री की प्रेरणा से वा आशीर्वाद से अत्यंत उपयोगी अनेक ग्रंथ अनेक संस्थाओं द्वारा प्रकाशित किए गए।

सूरि-आसीवायेण, ठविदं धम्म-जागरिअ-संठाणं।
पंचसयद्ध-साहा दु, पणवीस-पंतेसु चिय तस्स।।985।।

आचार्यश्री के आशीर्वाद से धर्म जागृति संस्थान की स्थापना की गई। पच्चीस प्रांतों में उसकी 250 शाखाएँ हैं।

णिग्गंथ-गंथ-माला-समिदी ठविदा गुरुवर-आसीए।
जाइ पयासिदा तिसय-गंथा कल्लाणकारगा दु।।986।।

आचार्य गुरुदेव के आशीर्वाद से निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति की स्थापना की गई जिसके द्वारा भव्यों का कल्याण करने वाले ग्रंथ प्रकाशित किए गए।

पण्णासाहिय-पागद-गंथा पढमाणुओगगंथा अवि।
करण-चरणाणुओगं, तह तित्थयराणं विहाणं।।987।।
गज्ज-पज्ज-संजुत्तं, माणवुवजोगी विउल-साहित्तं।
पयासिदं संथाए, इमाए दु सरलभासाए।।988।। (जुम्मं)

पचास से अधिक प्राकृत ग्रंथ, प्रथमानुयोग ग्रंथ, करणानुयोग, चरणानुयोग के ग्रंथ, तीर्थंकरों के विधान, गद्य और पद्य से संयुक्त मानवोपयोगी विपुल साहित्य इस संस्था के द्वारा सरलभाषा में प्रकाशित किया गया।

गुरु-आसीए जंबूसामी-तवत्थली-जिण्णुद्धारो।
होज्ज धम्मज्झाणस्स, वर-तव-ठाणं वट्टमाणे।।989।।

गुरुदेव के आशीर्वाद से श्री जंबूस्वामी तपोस्थली का जीर्णोद्धार हुआ। वर्तमान में वह धर्मध्यान के लिए श्रेष्ठ तप-स्थान है।

गुरुकिवाफलं सव्वं, इदं करिदुं सक्केज्ज हं जेणं
परमभत्तीइ वंदे, विज्जाणंदगुरुमुवयारिं।।990।।

यह सब गुरु कृपा का ही प्रतिफल है जिससे मैं यह सब कार्य करने में समर्थ हो सका। मैं अपने उपकारी आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुवर को परमभक्तिपूर्वक वंदन करता हूँ।

इमाए अदिरित्ता दु, जिणसासण-पहावणाए अण्णा।
संथा वि ठविदा तेण, महासाहा महासमिदी य।।991।।
विदुपरिसदो परिसदो, तित्थरक्खासमिदी जइणसंघो।
पागदपीढं ठविदं, पागद-भासा-उण्णदीए।।992।। (जुम्मं)

इसके अतिरिक्त जिनशासन की प्रभावना के लिए आचार्यश्री के द्वारा अन्य महाशाखा, महासमिति, विद्वत्-परिषद, परिषद, तीर्थरक्षा समिति व जैन संघादि अन्य संस्थाओं की स्थापना भी की गई। प्राकृत भाषा की उन्नति के लिए प्राकृतपीठ की स्थापना की गई।

अप्पसुहयरसिक्खा

(आत्मसुखकारी शिक्षाएँ)

याले याले दायिदा, अणेग-सिक्खा सिरी-आइरियेण।
सुहमग्गं पदंसिदुं, सगसिस्साण सावगाणं च।।993।।

शुभ मार्ग प्रदर्शित करने के लिए आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने समय-समय अपने शिष्यों व श्रावकों को अनेक शिक्षाएँ दीं।

ववहार-पहावणादुवरि णिच्छयधम्मपहावणा-रदो।
करीअ पहाविदप्पं, जिणधम्म-सस्सद-सुत्तेहिं।।994।।

व्यवहार प्रभावना से ऊपर वे निश्चयधर्म की प्रभावना करते थे। जिनधर्म के शाश्वत सूत्रों से वे अपनी आत्मा को प्रभावित किया करते थे।

सिक्खावीअ सिस्साण, संघसंचालणं चउअणुजोगं।
जिणसासण-पहावणा-विही उवसग्गाइ-सहणस्स।।995।।

उन्होंने अपने शिष्यों को संघसंचालन, चार अनुयोग, जिनशासन प्रभावना और उपसर्गादि के सहने की विधि भी सिखायी।

को चिय संजम-जोग्गो, का इत्थी अज्जा-दिक्खा-जोग्गा।
सावय-साविया तहा, अणुव्वदं गहेदुं जोग्गा।।996।।

उन्होंने बताया कि कौन पुरुष संयम धारण करने के योग्य है, कौन स्त्री आर्यिका दीक्षा ग्रहण करने के योग्य है और कौन श्रावक-श्राविका अणुव्रत ग्रहण करने के योग्य हैं।

दाएज्ज वच्छलं चउ-विहसंघस्स अणुसासणं दिढं च।
करेज्ज खमाइ-भावं, धरिय णो कक्कस-ववहारं।।997।।

उन्होंने सिखाया कि चतुर्विध संघ के लिए सदैव वात्सल्य देना चाहिए। क्षमादि भावों को धारण कर संघ पर दृढ़ अनुशासन करना चाहिए। कभी किसी के साथ कटु व्यवहार नहीं करना चाहिए।

पमाद-पोसगो विसय-पोसगो णो भववड्ढगकज्जाण।
धम्म-णासग-कज्जाण, णेव सीदणं आयारम्मि।।998।।

कभी प्रमाद के पोषक, विषयों के पोषक नहीं होना। संसारवर्द्धक कार्यों और धर्मनाशक कार्यों के भी पोषक नहीं होना और कभी आचरण में शिथिल नहीं होना।

णिंदं वंचणं पराभवं धम्मीण णो करेज्ज कया वि।
णेव सुणेज्जा णिंदं, जिणधम्मस्स अवमाणं वा।।999।।

धर्मात्माओं की निंदा, वंचना और पराभव कदापि नहीं करना चाहिए। जिनधर्म का अपमान कदापि नहीं करना चाहिए और जिनधर्म की निंदा भी कभी नहीं सुननी चाहिए।

अज्जाणं दाएज्ज ण, अइ- कक्कस-पायच्छित्तं कया वि।
ताइ संगदिं करेज्ज, ण सवर-संजमं रक्खेदुं।।1000।।

उन्होंने बताया कि आर्यिकाओं को कभी अति कठोर प्रायश्चित्त नहीं देना चाहिए। स्वपर संयम की रक्षा के लिए उनकी संगति नहीं करनी चाहिए।

चउविहसंघो सक्को, जिणसासणपहावणं कुव्वेदुं।
एगागी जदी अप्प-धम्म-जिणसासणणासगो दु।।1001।।

जिनशासन की प्रभावना करने में चतुर्विध संघ ही समर्थ है। एकाकी यति (एकल विहारी) आत्मधर्म और जिनशासन का नाशक है।

अणुसासण-मावसियं, मज्जादापालणाए णिच्चं हि।
जिणधम्मपहावणाइ, णेव अइवत्तदि मज्जादं।।1002।।

मर्यादा के पालन के लिए नित्य ही अनुशासन आवश्यक है। जिनधर्म की प्रभावना के लिए कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

करेज्ज वेज्जावच्चं, संजमरक्खाइ वच्छल्लेण सय।
तदा णेव चिंतेज्जा, लहु-दिग्घयाल-दिक्खिदो वा॥1003॥

संयम की रक्षा के लिए वात्सल्यपूर्वक सदैव वैय्यावृत्ति करनी चाहिए तब यह विचार नहीं करना चाहिए कि यति कम काल का दीक्षित है या अधिक काल का।

धम्मसहाए कयावि, ण णिंदं करेज्ज पहाणपुरिसाण।
धम्मीणसयविहीए,उवदिसेज्जपिय-हिद-वयणेहि॥1004॥

धर्मसभा में कभी भी प्रधान पुरुषों की निंदा नहीं करनी चाहिए। धर्मात्माओं के लिए सदैव प्रिय व हित वचनों से विधिपूर्वक उपदेश देना चाहिए।

मज्जादं अइवत्तिय, किद-पहावणा य धम्मणिंदाए।
हेदू तं पहावणा, करेज्ज सय संजमेणं सह॥1005॥

मर्यादा का उल्लंघन करके की गई प्रभावना धर्मनिंदा का हेतु है। अतः प्रभावना सदैव संयम के साथ करनी चाहिए।

धम्म-सहाएणिच्चं,तण-मण-वयणाणिअणुसासिदाणिय।
सुधम्मरक्खाए जं, पद्धंसगोव्व जण-समूहो॥1006॥

सद्धर्म की रक्षा के लिए धर्मसभा में तन, मन और वचन नित्य ही अनुशासित होने चाहिए क्योंकि लोगों का समूह बारूद के ढेर की तरह है।

णेव लंघेज्ज कया वि, लोयायारं सत्थं व लोयम्मि।
ण मुणदि लोयायारं, घाददि सवरधम्मं जो सो॥1007॥

लोक में शास्त्र के समान लोकाचार का भी उल्लंघन कदापि नहीं करना चाहिए। जो लोकाचार को नहीं जानता वह स्वपर धर्म का घात कर देता है।

जस्सिं संघे वुड्ढा, तवस्सी साहू णो सो असक्को।
जिणसासणपहावणं,कुव्विदुं अणुभवणाणी जं।।1008।।

जिस संघ में वृद्ध तपस्वी साधु नहीं होते वह संघ जिनशासन की प्रभावना करने में अशक्य है। क्योंकि वे (संयम वृद्ध) अनुभवज्ञानी हैं।

संघाहार-गणहरो, सण्णाण-वड्ढगो य उवज्झाओ।
सेक्खो णाण-णिमित्तं,गणो संघ-संरक्खगो तह।।1009।।

संघ का आधार गणधर हैं, उपाध्याय सम्यग्ज्ञान के वर्द्धक हैं, शैक्ष्य ज्ञान में निमित्त होते है, संघ का संरक्षक गण है।

ठविरो हु संघंठिरं, कुणदि कल्लाण-पेरगो मणुण्णो।
चउविह-संघवट्टणे,पवट्टगो णिउणो मण्णेज्ज।।1010।।

स्थविर संघ को स्थिर करते हैं, मनोज्ञ कल्याण के प्रेरक होते हैं, चतुर्विध संघ के प्रवर्तन में प्रवर्तक निपुण मानने चाहिए।

दिग्घयालीणणुभवी, कुलो वेरग्गवड्ढगो गिलाणो।
संजमे अणुसासणे, वेज्जावच्चे तहा णिउणो।।1011।।
संगहणुग्गह-कुसलो, पंचायार-परायणो सूरी य।
चउविह-संघो णिच्चं,जिणसासणस्स चउथंभोव्व।।1012।।

दीर्घकालीन अनुभवी साधक कुल तथा वैराग्यवर्द्धक ग्लान है। जो संयम, अनुशासन और वैय्यावृत्ति में निपुण हैं, शिष्यों के संग्रह और अनुग्रह में कुशल हैं और पंचाचार-परायण हैं, वे आचार्य हैं। चतुर्विध संघ जिनशासन के चार स्तंभ के समान है।

संजमं विणा साहू, रायमुद्दाए विणा दु पत्तं व।
पाणं विणा सरीरं, उण्हत्तेणं विणा अग्गी।।1013।।

संयम के बिना साधु वैसे ही है जैसे राजमुद्रा के बिना पत्र, प्राण के बिना शरीर और ऊष्णता के बिना अग्नि।

मुणिपाणोव्व संजमो, संजमो महाधणं व साहूणं।
संजमो साहु-कवयो, संजमो सय कल्लाण-पहो॥1014॥

संयम मुनि के प्राण के समान है। संयम साधुओं के महाधन के समान है। संयम साधु का कवच है और संयम ही सदैव कल्याण का पथ है।

तवसी उज्जमसीलो, तच्चचिंतणरदो पमादरहिदो।
भव्वाण परिपालगो, तित्थयरोव्व धम्ममुत्ती दु॥1015॥

आचार्य भगवन् तपस्वी, उद्यमशील, तत्त्वचिंतन में रत, प्रमाद से रहित, भव्यजनों के परिपालक और तीर्थंकर के समान धर्ममूर्ति होते हैं।

रायद्दोसं खयिदुं, तप्परो य मोहणिज्जकम्मादिं।
अक्किंदुव्व पमाणिग-सूरि-वंदणीयो तित्थोव्व॥1016॥

जो रागद्वेष को क्षय करने में और मोहनीय कर्मादि को क्षय करने में तत्पर हैं वे सूर्य-चंद्र के समान प्रमाणिक आचार्य, तीर्थंकर के समान वंदनीय हैं।

णो परिहरेज्ज धम्मं, तुमं मज्झं अंतेवासी अहो।
देहं उज्झेज्ज किण्णु, ण कयावि संजम-तव-धम्मं॥1017॥

आचार्यश्री ने एक बार हमसे कहा—अहो! मेरे अंतेवासी! तुम कभी धर्म का परिहार नहीं करना। देह छूटे तो छूट जाए किन्तु संयम, तप व धर्म कदापि नहीं छोड़ना।

सूरी धम्मविड्ढीइ, पालेज्जा चउविहसंघं सेट्ठं।
पिदरोव्व वच्छलेणं, सव्वदा खलु सगसंताणा॥1018॥

जिस प्रकार माता-पिता वात्सल्यपूर्वक अपनी संतानों का पालन करते हैं उसी प्रकार आचार्य भगवन् को धर्मवृद्धि के लिए श्रेष्ठ चतुर्विध संघ का पालन करना चाहिए।

देज्ज सव्वसिस्साणं, सिक्खं ववहार-कज्जुवरि होच्चा।
उज्झिय सगप्प-लीणो, धम्मे य पाविदुं समाहिं॥1019॥

आचार्यश्री ने अपने सभी शिष्यों के लिए शिक्षा दी कि व्यवहार कार्यों से ऊपर होकर पुनः समाधि को प्राप्त करने के लिए धर्म में, स्वात्मा में लीन होना।

चिंतेज्ज पुव्वाइरिय-चरियं बहुवारं बहुपयारेण।
काइ विहीइ पाविदा, तेहिं चिय उत्तमसमाही॥1020॥

अहो! पूर्वाचार्यों के चरित्र का बहुत प्रकार से बहुत बार चिंतन करना चाहिए कि उन्होंने किस विधि से उत्तम समाधि को प्राप्त किया।

आइरिय-संति-सायर-चरणेसुं ठाइय बहुकालंतं।
तस्स चरियं जाणित्तु, पयासेमि आयरेदुं हं॥1021॥

आ. श्री विद्यानंदजी ने बताया कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज के चरणों में बहुत समय तक रहकर, उनके चारित्र वा समीचीन शुभ प्रवृत्तियों को जानकर मैं उन जैसा ही आचरण करने का प्रयास करता हूँ।

भारदगोरवं गुरुं, सिरिदेसभूसणाइरियं सरलं।
जिणधम्मपहावगं च, जुगपवट्टगं अइविरत्तं॥1022॥
आदिसायरं च महा-वीरकित्तिं वीरं चंदसिंधुं।
पायं जयकित्तिं सिरि-विमलं संतिसायर-सूरिं॥1023॥
सुमरंतो कहीअ सो, सुमरणेण जंपणेण गाहाणं।
गंथाणकुणसुचित्तं,अइसरलंणिम्मलंसहजं॥1024॥(तिगं)

जिनधर्मप्रभावक, सरल, युगप्रवर्तक, अतिविरक्त, भारत गौरव गुरु आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज, आचार्यश्री आदिसागरजी मुनिराज, आचार्यश्री महावीरकीर्तिजी आचार्यश्री वीरसागरजी, आचार्यश्री चंद्रसागरजी, आचार्यश्री पायसागरजी, आचार्यश्री जयकीर्तिजी, आचार्यश्री विमलसागरजी, चा.च. आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा कि ग्रंथों की गाथाओं के स्मरण से, बोलने से चित्त को अतिसरल, निर्मल व सहज करना चाहिए।

विज्जाणंद-सूरी वि, चिंतीअ जंपीअ सुमरीअ सया।
गंथ-गाहाओ तहा, उग्घाडेज्ज गंथरहस्सं॥1025॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज सदैव ग्रंथ की गाथाओं का चिंतन किया करते थे, उन्हें बोलते और याद किया करते थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों के रहस्यों का उद्‌घाटन किया।

पुव्वाणं भद्दबाहु-धरसेण-पुप्फदंत-भूदबलीण।
कोंडकुंडादीण गुण-चिंतणं विसुद्धीइ करेज्ज॥1026॥

वे कहते थे कि आचार्यश्री भद्रबाहु स्वामी, आचार्यश्री धरसेन स्वामी, आचार्यश्री पुष्पदंत स्वामी, आचार्यश्री भूतबली स्वामी, आचार्यश्री कुंदकुंद स्वामी आदि पूर्वाचार्यों के गुणों का चिंतन विशुद्धिपूर्वक करना चाहिए।

णो करेज्ज जयगारं, मज्झ सहासु विज्जाणंदसूरी।
भासेज्ज सुभत्तीए, महावीराइ-तित्थयराण॥1027॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज कहते थे कि सभाओं में मेरी जयकार नहीं अपितु तीर्थंकर महावीरस्वामी आदि की भक्तिपूर्वक जयकार करनी चाहिए।

तित्थयराण सव्वाण, जम्म-मोक्ख-कल्लाणुच्छवाणं च।
आयरणं कराविदुं, इग-संथा ठाविदा जदिणा॥1028॥

सभी तीर्थंकरों के जन्म व मोक्ष कल्याणोत्सव मनवाने के लिए उन्होंने एक संस्था की स्थापना की।

णिराकरीअ समाये, विज्जंत-कुरीदि-मिच्छाधारणा।
सो उराल-दिट्ठि-जुदो, तप्परो समायेगत्तस्स॥1029॥

आचार्यश्री ने सदैव समाज में विद्यमान कुरीतियों और मिथ्या धारणाओं का निराकरण किया। वे उदार दृष्टि से युक्त और समाज की एकता के लिए तत्पर थे।

णिब्भच्छेज्ज ण धम्मी, वच्छलेण थिरं कुणह धम्मपहे।
णो को वि जणो हेयो, पावविट्टी दु उज्झणीया॥1030॥

वे कहते थे धर्मात्माओं का कभी तिरस्कार नहीं करना। वात्सल्यपूर्वक लोगों को धर्म के मार्ग पर स्थिर करें। कोई भी व्यक्ति कभी हेय नहीं है, पापप्रवृत्ति ही सदैव त्याज्य है।

दाएज्ज परामस्सं, उवएसं णिद्देसं णो वयणं।
विवाद-णिवत्तीए दु, विअक्केज्ज सिआवायेणं॥1031॥

साधु परामर्श, उपदेश व निर्देश तो दे किन्तु वचन नहीं। विवाद निवृत्ति के लिए स्याद्वादरीति से विचार-विमर्श करना चाहिए।

णो खंडेज्ज समायं, कया वि तस्स संगठणमावसियं।
पेम्मेण जुज्जेज्ज सय, खंडरसं व अणेग-कणाण॥1032॥

कभी भी समाज को तोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि उसका संगठन, एकता अति आवश्यक है। समाज को प्रेमपूर्वक सदैव वैसे ही जोड़ना चाहिए जैसे चाशनी अनेक अन्न के कणों को जोड़ देती है।

भो अंतेवासी! मम, चेयणचेयणतित्थं रक्खंतो।
कुणह संजम-साहणा-विड्ढिं तत्थ विसुद्धीए दु॥1033॥

अहो मेरे अंतेवासी! चेतन-अचेतन तीर्थ की रक्षा करते हुए वहाँ विशुद्धिपूर्वक संयम-साधना की वृद्धि करें।

कुसक्कारं कुसिक्खं, दाएज्ज णेव अणीदि-मण्णायं।
णो करेज्ज जं जीवो, जह कुणदि तह भुंजदि णियमा॥1034॥

आचार्यश्री कहा करते थे कि कभी किसी को कुसंस्कार व कुशिक्षा नहीं देना चाहिए एवं अनीति व अन्याय नहीं करना चाहिए क्योंकि जीव जैसा करता है वह नियम से वैसा ही भोगता है।

सुहरुक्खस्स फलं सुह-मसुहरुक्खस्स असुहफलं णियमा।
तं ण पस्सेज्ज कुणेज्ज, सुणेज्ज बोल्लेज्ज तह असुहं॥1035॥

अच्छे वृक्ष का फल अच्छा और अप्रशस्त वृक्ष का फल अप्रशस्त ही होता है। अतः कभी भी अशुभ, अप्रशस्त को न देखें, न करें, न सुनें और न अशुभ बोलें।

अहियाहिय-अज्झयणं,करिदुंकहीअसयाविदु-जणाणं।
आगमाणुसारेणं, गवेसेज्जा समाहाणं दु॥1036॥

वे सदैव विद्वानों से अधिक से अधिक अध्ययन करने के लिए कहा करते थे और कहते थे कि आगमानुसार ही समाधान खोजें।

महाविलासिअम्मि तह, भोयपहाणणयरे वसदि जोगी।
जोसोसिहिलोहवदे,संजम-विराय-तव-झाणेसु॥1037॥

वे (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज) कहते थे कि जो योगी महाविलासी भोगप्रधान नगरी में रहता है वह संयम, वैराग्य, तप व ध्यान में शिथिल हो जाता है।

णेव समाय-विवाये, कलहे णो वदेज्ज साहू कया वि।
उवदिसित्तुसमत्तेण,धम्म-पहावणंकरेज्जसय॥1038॥

वे सदैव कहते थे कि साधु को कभी भी समाज के विवाद व झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए। समत्व भाव से उपदेश देकर सदैव धर्म की प्रभावना करनी चाहिए।

पदं पदिट्ठं पूयं, खादिं लाहादिं णेव कंखेज्ज।
णिक्कंखतवं करेज्ज, अप्पझाणं खयिदुं कम्मं॥1039॥

साधु को कभी पद-प्रतिष्ठा, पूजा, ख्याति व लाभ आदि की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। कर्मक्षय के लिए सदैव निष्कांक्ष तप व आत्मध्यान करना चाहिए।

जदि तुमं पप्पोसि अइ-सम्माण-पूयं जसं सक्कारं।
तो विम्हरेज्ज णो सग-सरूवं अइपुण्णोदयम्मि॥1040॥

यदि तुम अति सम्मान, पूजा, यश, संस्कार प्राप्त करते हो तो उस तीव्र पुण्य के उदय में अपना स्वरूप कभी नहीं भूलना।

पुव्वपावोदयादो, कयाइ उवसग्गे णेव बीहेज्ज।
सव्वदा धम्ममग्गे, हवेज्ज थिरो दिढ-भावेहिं॥1041॥

पूर्व पाप के उदय से कदाचित् उपसर्ग होने पर कभी डरना नहीं चाहिए। दृढ़भावों से सदैव धर्म मार्ग पर स्थिर रहना चाहिए।

समाया पणोल्लेज्जा, जुगे जुगे धम्ममहुच्छवादीहि।
अण्णहा सुदीहयाल-पच्छा उसं लुंपेज्ज तत्थ॥1042॥

समाजों को धर्ममहोत्सव आदि के द्वारा युग-युग में धर्म के लिए प्रेरित करना चाहिए। अन्यथा दीर्घकाल पश्चात् उस क्षेत्र में धर्म लुप्त हो जाएगा।

सुहभावेहि आगदं, सद्धालु-जइणिदरं पि जिणधम्मे।
णोउविक्खेज्जकयावि,दाएज्जतस्ससुसक्कारं॥1043॥

जिनधर्म में शुभ भावों से आए हुए श्रद्धालु जैनेतर लोगों की भी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि उन्हें सुसंस्कार देने चाहिए।

संजमं तवं धम्मं, वड्ढेज्जा णिद्दोस-साहणाए।
बहुसाहण-सामग्गी, सुद्धसाहणं सय खंडेदि॥1044॥

अपनी निर्दोष साधना से संयम, तप व धर्म को वृद्धिंगत करना चाहिए। बहुत साधन-सामग्री सदैव शुद्ध साधना को खंडित कर देती है।

जदि पडिऊल-दसाए, बद्धो तुमं अहो अंतेवासी।
करेज्ज काउस्सग्गं, तदा चिंतणं परमेट्ठीण॥1045॥

अहो अंतेवासी! यदि कभी प्रतिकूल दशा में फँसे हो तो कायोत्सर्ग करना चाहिए और परमेष्ठियों का चिंतन करना चाहिए।

परमेट्ठि-रक्खगो जिणसासणं सव्वदा परमसरणं हि।
सेट्ठ-धम्मीअविहोज्ज,धम्म-साहगोसगपुण्णेण॥1046॥

परमेष्ठी सदैव ही रक्षक होते हैं। जिनशासन ही परमशरण है। श्रेष्ठ धर्मात्मा ही अपने पुण्य से धर्म के साधक होते हैं।

दिढं अज्झप्पणाणे, होज्ज पडिसमयम्मि सव्वत्थ तुमं।
अप्पं रक्खेदुं तं, सगजीवण-अहिरक्खा इव दु॥1047॥

आचार्यश्री कहते थे कि तुम्हें सर्वत्र प्रतिसमय अध्यात्म ध्यान में दृढ़ होना चाहिए। वह अध्यात्मध्यान आत्मा की रक्षा के लिए जीवनबीमा के समान है।

जिणसत्थाणुसारेण, वदेज्जा सया हि पवयणादीसुं।
दिट्ठंतं सव्वपियं, सुगमं जुत्तिजुत्तं संसं॥1048॥

प्रवचन आदि में सदैव ही जिनशास्त्रों के अनुसार बोलना चाहिए। प्रवचनादि में सर्वप्रिय, सुगम, युक्तियुक्त, प्रशंसनीय दृष्टांत बोलने चाहिए।

सगपय-अणुसारेणं, कण्णपिया पसंसणीया वदेज्ज।
बोहवड्ढगा लोगुत्ती णो णिंदणीया कया वि॥1049॥

अपने पद के अनुसार कर्णप्रिय, प्रशंसनीय व बोधवर्धक लोकोक्ति व मुहावरे ही बोलने चाहिए। कभी निंदनीय लोकोक्तियाँ नहीं बोलनी चाहिए।

सगहंतुं वि णो हणदि, सया धम्मवासो जस्स चित्तम्मि।
पावदूसिदं चित्तं, घादेदि य सगरक्खगं अवि॥1050॥

जिसके चित्त में सदैव धर्म का वास है तो वह अपने मारने वाले को भी नहीं मारता। जबकि पाप से दूषित चित्त अपनी रक्षा करने वाले का भी घात कर देता है।

सुद्धसमय-अणुभूदिं, कुव्वेदुं णिम्मलप्पा समत्थो।
कहं समलप्पा होदि, णिम्मलप्पा हि समयसारो॥1051॥

निर्मला आत्मा ही शुद्ध समय की अनुभूति करने में समर्थ है। मलिन आत्मा शुद्ध समय का अनुभव कैसे कर सकता है? निर्मल आत्मा ही समयसार है।

जाणेसि अहो सिस्सो, सगपण्णं विणा णिरत्थग-गंथो।
जह तह सक्को अंधो, ण स-मुहं दप्पणे पस्सिदुं ण॥1052॥

अहो शिष्य! जानते हो कि अपनी प्रज्ञा (बुद्धि) के बिना ग्रंथ उस प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार एक अंधा दर्पण में अपना मुख देखने में असमर्थ होता है।

गुरू दायदि सिस्साण, दिक्खं सुव्वदं गुणा सक्कारं।
णेव दायिदुं सक्को, किण्णु गुणट्ठाणं हु कयावि।।1053।।

गुरु, शिष्यों के लिए दीक्षा, सुव्रत, गुण व संस्कार प्रदान करते हैं किन्तु वे गुणस्थान देने में कभी समर्थ नहीं हैं।

दिक्खथीणं करेज्जा, परिक्खं सव्वपयारेण जम्हा।
ण होज्ज अप्पहावणा, वेरग्गस्स पाहण्णेणं।।1054।।

वैराग्य की प्रधानता से सर्व प्रकार से दीक्षार्थी की परीक्षा कर लेनी चाहिए जिससे कि धर्म की अप्रभावना न हो।

सुहसिक्खं सक्कारं, दाएज्ज तह संजम-थिरिमाए दु।
वच्छलजुदणुसासणं, कुलालोव्व घड-णिम्माणम्मि।।1055।।

संयम में स्थिरता के लिए शिष्यों के लिए सदैव शुभ शिक्षा और संस्कार देने चाहिए। वात्सल्य युक्त अनुशासन ऐसे ही रखना चाहिए जैसे एक कुंभकार घड़ा बनाते हुए अंदर में प्यार का हाथ लगाता है और बाहर से चोट मारता है।

जदा पदायिदं मज्झ, उवज्झाय-पदं मम गुरुणा।
तदा कहीअ वसेज्जा, जिणवयणंबसरणे सया हि।।1056।।

जब मुझे (आ. श्री वसुनंदी जी को) मेरे गुरुवर ने उपाध्याय पद प्रदान किया तब उन्होंने कहा अहो! सदैव जिनवाणी माँ की शरण में ही वास करना।

सत्थं वण्णवत्तिगा, लिवि-आसणं रत्तीइ वि स-णियडे।
होज्ज जं मादुं विणा, बालो दूहदि वीहदि रुददि।।1057।।

शास्त्र, पैन, डायरी रात्रि में भी अपने निकट ही रखना क्योंकि माँ के बिना बालक दुखी होता है, डरता है और रोता है।

जदि सोहजुदो कयाइ, तदो पढेज्ज लिहेज्ज विसुद्धीए।
सण्णाणं सज्झायं, सासय-णंदा-दीवोव्व खलु॥1058॥

यदि कभी चित्त क्षुभित हो तो विशुद्धिपूर्वक अध्ययन करना व लिखना। सम्यग्ज्ञान व स्वाध्याय शाश्वत नंदादीप के समान है।

हीणकुलसंबंधिदो, अंगुवंगणूणहियो अवराही।
अजोग्गो मुणि-दिक्खाइ, णिंदो तह लोयववहारे॥1059॥

जो हीन (नीच) कुल से संबंधित हो, अंगोपांग न्यूनाधिक हों, अपराधी हो और लोकव्यवहार में निंद्य हो वह मुनिदीक्षा के अयोग्य जानना चाहिए।

विरागी मोक्खकंखी, अप्पकल्लाण-भावजुदो जोग्गो।
दिक्खाए ववहारे, उइद-देह-जुदो कोलीणो॥1060॥

जो व्यवहार में उचित देह से युक्त, कुलीन, आत्मकल्याण की भावना से युक्त वैरागी, दीक्षा व मोक्ष का आकांक्षी हो वह दीक्षा के योग्य जानना चाहिए।

भो सिस्सो पालेज्जा, दिक्खाइ-सडकालं जहक्कमेण।
अंतम्मि समाहीए, साहणं करेज्ज विरत्तीइ॥1061॥

अहो शिष्य! दीक्षादि षट्काल का यथाक्रम से पालन करना चाहिए। अंत में समाधि के लिए विरक्तिपूर्वक साधना करनी चाहिए।

सव्वहिदं कंखदि जो, तस्स हिदं अवि हवेदि णियमादो।
चिंतदि दियंबर-मुणी, णेव पर-अहिदं सुमिणम्मि वि॥1062॥

जो सबका हित चाहता है उसका हित भी नियम से होता है। दिगंबर मुनिराज स्वप्न में भी कभी दूसरों का अहित नहीं सोचते।

संजमं तवं झाणं, कुव्विदुं सक्को तो करेज्ज सया।
ण सक्को तो भावेज्ज, तवं तवस्सिं णो णिंदेज्ज॥1063॥

आचार्यश्री कहते थे कि यदि संयम, तप व ध्यान करने में समर्थ हैं तो करना चाहिए और यदि समर्थ नहीं हैं तो भावना भानी चाहिए। किन्तु कभी भी तप और तपस्वी की निंदा व उपहास नहीं करना चाहिए।

पडिवेसिओव्व देहो, साहणं व मण्णेज्जा आइरियो।
कंखेदि अप्परक्खं, आरक्खगोव्व जागरिओ दु॥1064॥

आचार्यश्री कहते थे कि शरीर पड़ोसी की तरह या साधन के समान मानना चाहिए। जो आत्मा की रक्षा चाहता है उसे सिपाही के समान जागृत रहना चाहिए।

ववहार-रयणत्तयं, णिच्छय-धम्म-कारणं णियमेणं।
तं पावदि णिग्गंथो, भरह-खेत्ते दुस्समयाले॥1065॥

व्यवहार रत्नत्रय नियम से निश्चयधर्म वा रत्नत्रय का कारण है। इस भरतक्षेत्र में दुस्समकाल में निर्ग्रन्थदेव उस निश्चय रत्नत्रय को प्राप्त करते हैं।

उत्तम-खमाइ-धम्मं, चिंतेज्जा बारसाणुवेक्खं अवि।
अप्प-विसोहि-कारणं,सुह-सोलस-कारण-भावणा॥1066॥

उत्तम क्षमादि धर्म, द्वादश अनुप्रेक्षा और शुभ सोलहकारण-भावना आत्मविशुद्धि के कारण हैं। इनका सदैव चिंतन करना चाहिए।

पत्तेयं साहू णो, समत्थो सिस्सालोयणं सुणिदुं।
चित्त-सुद्धीए ताणं, पदायिदुं पायच्छित्तं च॥1067॥
पंचायार-परायण-सूरी-आयाराइ-वसुगुणजुदो।
संगहणुग्गहकुसलो, पायच्छित्त-गंथ सुपढिदो॥1068॥
गुरुमुहेण गंभीरो, दूरदिट्ठो वच्छलो सहिण्हू वि।
तच्चुवदेसगोअक्ख-जेदूयकामजयीसक्को॥1069॥(तिअं)

प्रत्येक साधु शिष्यों की आलोचना सुनने में, उनके चित्त की शुद्धि के लिए प्रायश्चित देने में समर्थ नहीं है। जो आचार्य भगवन् आचारादि आठ गुणों से युक्त हैं, पंचाचार परायण व शिष्यों के स्नेह व अनुग्रह

में कुशल हैं, जिन्होंने गुरुमुख से प्रायश्चित्त ग्रंथ भलीभाँति पढ़ा हो, जो गंभीर, दूरदृष्टा, वात्सल्य से युक्त, सहिष्णु, तत्त्वोपदेशक, इंद्रियविजेता और कामजयी हैं वे ही प्रायश्चित्त देने में समर्थ हैं।

एगुत्तर-बेसहस्स-वासे पढाविदा रहस्स-गंथा।
मज्झं तेण दायिदा, बेगंथा अवि भारदीए।।1070।।

आचार्यश्री ने सन् 2001 में कुंदकुंदभारती में मुझे रहस्य ग्रंथों का अध्ययन कराया और मुझे दो प्रायश्चित्त ग्रंथ भी प्रदान करे।

णाणज्झाण-तव-रदो, सयं कुव्वदि सिस्साणं वि तेसुं।
लोयववहार-णिउणो, अचंचलो अज्जाण-सूरी।।1071।।

जो स्वयं ज्ञान, ध्यान व तप में रत हैं और शिष्यों को भी उन्हीं में लगाते हैं, लोकव्यवहार में निपुण हैं, चंचल नहीं हैं, वे ही आर्यिकाओं के आचार्य होने में समर्थ हैं।

अज्जिगा अज्जिगा उवयारेण महव्वदी साविगा णो।
ता समूह-मज्झम्मि हि, वसेज्जा सव्वदा सव्वत्थ।।1072।।

आर्यिका आर्यिका ही हैं, वे उपचार से महाव्रती हैं, श्राविका नहीं। उन्हें सर्वदा और सर्वत्र समूह के मध्य ही रहना चाहिए।

जा का वि अज्जिगा चिय, एयला वियला अहवा विहरंति।
धम्मणिंदा-णिमित्तं, वदसंजमघादगा अवि ता।।1073।।

जो कोई भी आर्यिका अकेली या दुकेली विहार करती हैं, वे धर्म की निन्दा में निमित्त और व्रत संयम की घातक भी होती हैं।

जहण्णेण अज्जिगा दु, तिण्णि होज्ज तावइय-अहियाहिया।
जावइया सत्तीए, संभालिदुं समत्था गणी।।1074।।

आर्यिकायें कम से कम तीन होनी चाहिए। मुख्य आर्यिका शक्ति के अनुसार जितनी आर्यिकाओं को संभालने में समर्थ हो, उतनी होनी चाहिए।

गणि-अज्जाए णिद्देसेण धम्मसाहणं वदरक्खणं।
धम्मपहावणं सया, करेज्ज सव्वा समप्पणेण॥1075॥

सभी आर्यिकाओं को गणिनी आर्यिका के निर्देश से ही सदैव समर्पण के साथ धर्मसाधना, व्रत की रक्षा और धर्म प्रभावना करनी चाहिए।

जहवि आइरियो गुरू, जेट्ठो सेट्ठो लोयववहारादु।
तहविवीहदिणकयावि,अइच्छदिअइच्छावेदितं॥1076॥

यद्यपि आचार्य ज्येष्ठ व श्रेष्ठ गुरु हैं तथापि उन्हें लोकव्यवहार से डरना चाहिए। उन्हें कभी भी उस लोकव्यवहार का उल्लंघन न तो करना चाहिए और न कराना चाहिए।

परणिंदाए जीवो, विसट्टदि धम्मादु तं वच्छलेण।
पालंतो उवगूहण-मंगं धम्मे करेज्ज थिरं॥1077॥

परनिंदा से जीव धर्म से च्युत हो जाता है अतः उपगूहन अंग का पालन करते हुए वात्सल्यपूर्वक उन्हें धर्म में स्थिर करना चाहिए।

एलगो खुल्लयो वा, ण परमेट्ठी तहेव जहाजोग्गं।
ताणं करेज्ज भत्तिं, अदिरेगेण दूसदि धम्मो॥1078॥

ऐलक व क्षुल्लक परमेष्ठी नहीं हैं अतः उनकी यथायोग्य भक्ति करनी चाहिए, क्योंकि अतिरेक करने से धर्म दूषित होता है।

एलगं खुल्लयं वा, परमेट्ठिं मण्णिदूण जो करेदि।
भत्तिं तस्स जीवस्स, दूसिदं हवेदि सम्मत्तं॥1079॥

जो ऐलकजी व क्षुल्लकजी को परमेष्ठी मानकर उनकी भक्ति करता है उस जीव का सम्यक्त्व दूषित होता है।

सूदग-पादग-विहिं च, पालेज्ज करेज्ज धम्मि-सहजोगं।
करेज्ज पवित्तिं दाण-पूयासीलुववासेसुं च॥1080॥

श्रावकों को सदैव सूतक व पातक विधि का पालन करना चाहिए, साधर्मियों का सहयोग करना चाहिए एवं दान, पूजा, शील व उपवास में प्रवृत्ति करना चाहिए।

जेहिं धम्म-रक्खिदा, ते भट्टारया माणेज्ज जम्हा।
सज्जणा विम्हरंते, णेव किदमुवयारं कयावि॥1081॥

जिन्होंने धर्म की रक्षा की उन भट्टारकों का भी सम्मान करना चाहिए, क्योंकि सज्जन किसी के किये गए उपकार को कभी नहीं भूलते।

संघस्सं सहंताण, उवयारेण जिणसासणं अज्जं।
अवि जीवंतं दु सव्व-कल्लाण-कारगं सव्वदा॥1082॥

जिन्होंने अनेक संघर्षों को सहन किया उन भट्टारकों के उपकार से सदा सभी का कल्याण करने वाला जिनशासन आज भी जीवंत है।

जइणाण मूलभासं, पागदं सक्किदिं सया रक्खेज्ज।
मयूरपिच्छाइ-मण्ण-उवयरणं दियंबरमुद्दं॥1083॥

जैनों की मूलभाषा प्राकृत, जैन संस्कृति, मयूर पिच्छिका आदि अन्य उपकरण और दिगंबर मुद्रा की सदा रक्षा करनी चाहिए।

अंत-तित्थयरो महावीर-जम्मभूमी विहारपंते।
वइसाली विक्खादा, कुव्विदा खलु आइरियेणं॥1084॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने बिहार प्रान्त में अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीरस्वामी की जन्मभूमि वैशाली को ख्याति प्रदान की।

इदिवित्त-परिपेक्खम्मि, पमाणिगा तित्थयर-जम्मभूमी।
णो उविक्खेज्ज कयावि,
जिण-सासण-पहावणाए दु॥1085॥

इतिहास के परिपेक्ष में तीर्थंकरों की जन्मभूमि प्रमाणिक हैं। जिनशासन की प्रभावना के लिए उनकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

अजुज्झा-चंदपुरी य, कोसंबी भद्दलपुर-सीहपुरी।
चंपापुरो कंपिला, सावत्थी हत्थिणायपुरो॥1086॥
रयणपुरी सउरीपुर-रायग्गही वाराणसी णयरी।
तित्थ-जम्मभूमीणं, करावेज्जा समुद्धारं दु॥1087॥(जुम्मं)

अयोध्या, चन्द्रपुरी, कौशाम्बी, भद्दलपुल, सिंहपुरी, चंपापुर, कंपिला,

श्रावस्ती, हस्तिनापुर, रत्नपुरी, शौरीपुर, राजगृही तथा वाराणसी ये तीर्थंकरों की जन्मभूमि हैं। तीर्थंकरों की जन्मभूमियों का समुद्धार कराना चाहिए।

अट्ठापदो-सम्मेद-गिरी-उज्जंतगिरी पावापुरी।
मंदारगिरी कुंडलपुराहारो रेसिंदिगिरी॥1088॥
दोणगिरी सउरीपुर-मथुरा मंगीतुंगी गजपंथा।
चूलगिरि-मुत्तागिरी, पावागढ-तारंगा तहा॥1089॥
णेमावरो गुणावा, सिद्धवरकूडो तह सुवण्णगिरी।
पडणा य रायग्गही, इमाण बहु-सिद्ध-खेत्ताणं॥1090॥
वंदणाए पेरणं, दाएज्ज खेत्ताणि संरक्खिदुं वि।
ताणं रक्खाए जं, संरक्खिदं जिणसासणं दु॥1091॥ (चउक्कं)

अष्टापद, सम्मेदशिखर, ऊर्जयंतगिरी, पावापुरी, मंदारगिरी, कुण्डलपुर, रेसिंदीगिरी, द्रोणगिरी, शौरीपुर, मथुरा, मांगीतुंगी, गजपंथा, चूलगिरी, मुक्तागिरी, पावागढ़, तारंगाजी तथा नेमावर, गुणावा, सिद्धवरकूट, सोनागिरी, पटना और राजगृही इन बहुत से सिद्धक्षेत्रों की वंदना करनी चाहिए तथा उन क्षेत्रों के संरक्षण की भी प्रेरणा देनी चाहिए। क्योंकि उनकी रक्षा से ही जैनशासन सुरक्षित है।

णिब्भच्छेज्ज विदू णो, णवरि माणेज्ज सया वच्छलेणं।
जम्हा सण्णाणस्स दु, सुहुम-तच्चं सिक्खावेज्जा॥1092॥

आचार्यश्री कहा करते थे कि विद्वानों का कभी अपमान नहीं करना चाहिए अपितु वात्सल्यपूर्वक सदैव उनका सम्मान करना चाहिए क्योंकि वे सम्यग्ज्ञान के सूक्ष्मतत्त्वों का ज्ञान कराते हैं।

अस्सिं दुस्समयाले, धणी धम्मविमुहा कालदोसेण।
बहुहा तं धम्म-थिरं, कुणिय पोच्छाहणं दाएज्ज॥1093॥

इस दुषमाकाल में कालदोष से धनी लोग बहुधा धर्म से विमुख हैं अतः उन्हें धर्म में स्थिर करके प्रोत्साहन देना चाहिए।

सद्धम्मपहावणाइ, विदू सासगा पसासगा सेट्ठी।
सेट्ठकज्जकत्ता अवि, माणेज्जा दु याले याले॥1094॥

सद्धर्म की प्रभावना के लिए विद्वान, शासक, प्रशासक, श्रेष्ठी और श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं का भी समय-समय पर सम्मान करना चाहिए।

साहम्मिं साहुं पडि, णो करेज्जा विसंवादं कया वि।
सिआवायेण समेज्ज, विवायं कहित्तु कत्तव्वं॥1095॥

साधर्मी और साधुओं के प्रति कभी भी विसंवाद नहीं करना चाहिए। कर्त्तव्यों को कहकर स्याद्वाद के द्वारा विवाद का शमन करना चाहिए।

जावइयो सरलो जण-णिअर-जुज्जणं तावइय-दुद्धरं।
ताण सुमग्ग-दंसणं, तं सया सजगो होज्ज तुमं॥1096॥

लोगों की भीड़ को जोड़ना जितना सरल है, उतना ही मुश्किल उनको समीचीन मार्ग दिखाना है। इसीलिए आपको सदैव सजग रहना चाहिए।

मित्ति-पमोद-कारुण्ण-मज्झत्थ-भावणा वि भावेज्ज सय।
जं इमाहि विणा सवर-धम्म-रक्खा असंभवो इह॥1097॥

मैत्री, प्रमोद, कारुण्य एवं माध्यस्थ भावना भी सदा भानी चाहिए क्योंकि इनके बिना इस लोक में स्व-पर धर्म की रक्षा असंभव है।

धम्म-पेम्माणुरायं, अत्थिमज्जं भावाणुरायं तह।
जाणित्तु जहाजोग्गं, जिणधम्मं रक्खेज्ज हिदाय॥1098॥

धर्मानुराग, प्रेमानुराग, अस्थिमज्जानुराग और भावानुराग को यथायोग्य जानकर सर्वहित के लिए जिनधर्म की रक्षा करनी चाहिए।

मुणिव्वदं जाणित्ता, पढेज्जा आरोग्ग-सत्थं साहू।
मुणिदिक्खं गहेज्ज पुण, तच्चणाणेण फलदि दिक्खा॥1099॥

मुनियों के व्रतों को जानकर साधुओं को आरोग्य शास्त्र पढ़ना चाहिए, अनंतर मुनिदीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अहो! तत्वज्ञान से ही दीक्षा फलित होती है।

एयदा कहीअ गुरू, अच्चंत-सरलो तह सहजो तुमं।
ण अण्णहा मे सद्दा, किण्णु सरलत्तं दुल्लहं दु।।1100।।

एक बार आचार्य गुरुदेव ने मुझसे कहा कि महाराज जी! आप अत्यंत सरल व सहज हैं, मेरे शब्दों को अन्यथा नहीं लेना किन्तु आप जैसी सरलता बहुत दुर्लभ है।

अइसरल-जीवणे बहु-संघस्सो वंचिदुं खमो सरलं।
सरलत्तं णो सरलं, तं हिदयरं दु महामुणिस्स।।1101।।

अति सरल व्यक्ति के जीवन में बहुत संघर्ष होते हैं। सरल व्यक्ति को ठगने में व्यक्ति समर्थ हो जाता है किन्तु ये सरलता भी सरल नहीं है। महामुनिराज के लिए वह हितकर है।

समयाणुसारेण अणुसासणं च चउविहसंघम्मि तुज्झ।
सव्वदा संसणीयं, वर-हेदू सवर-उण्णदीइ।।1102।।

आचार्यश्री ने हमसे एक बार कहा—महाराज जी! समय के अनुसार चतुर्विध संघ पर आपका अनुशासन सदैव प्रशंसनीय है। यह अनुशासन स्व-पर उन्नति का उत्तम हेतु है।

पालेज्ज खमाभावं, धरिय चउविहसंघं णेउण्णेण।
चिंतामुत्तो णिच्चं, होज्ज तव कल्लाणं सिस्सो!।।1103।।

क्षमाभाव को धारण करके निपुणतापूर्वक चतुर्विध संघ का पालन करना चाहिए। अहो शिष्य! आप नित्य चिंतामुक्त रहें और आपका कल्याण हो।

पस्स णिण्णयसायरो, चदुत्थयालम्मि मुणि-पहावेणं।
वणे हिंसग-जंतू वि, णेही अम्हे समायेगो।।1104।।

देखो निर्णयसागर जी, चतुर्थकाल में मुनि के प्रभाव से वन में हिंसक जन्तु भी स्नेही हो जाते थे, (आज इस पंचमकाल में) हमारे द्वारा समाज तो एक हो ही जानी चाहिए।।

समयसाराइ-गंथा, पढिदा मइ अट्ठुत्तर-सयवारं।
तुमं वि पढेज्ज तावदु, जावदु होज्ज हिअयंगमो ण।।1105।।

मैंने (आ. श्री विद्यानंद जी ने) समयसार आदि ग्रन्थों को 108 बार पढ़ा। आपको भी यह ग्रंथ तब तक पढ़ना चाहिए जब तक वह हृदयंगम न हो जाये।

विम्हरेज्ज किदं सुहं, असुहं जणेहि जं को वि ण सक्को।
करिदुं सुहमसुहं सग-कम्मफलं भुंजंति जीवा॥1106॥

अहो! लोगों के द्वारा किए गए शुभ व अशुभ को भूल जाना चाहिए क्योंकि कोई भी किसी का शुभ या अशुभ करने में समर्थ नहीं है। जीव अपने कर्मों का फल स्वयं भोगते हैं।

सव्वजण-हिदकारगं, कज्जं महत्तं दाएज्ज करेज्ज।
सत्थभाव-मुज्झित्ता, भाव-विसुद्धीइ सज्झायं॥1107॥

जो कार्य सभी लोगों के लिए हितकारक है, निजी स्वार्थ भाव का त्याग कर उस कार्य को महत्व देना चाहिए और करना चाहिए। भावों की विशुद्धि के लिए स्वाध्याय करना चाहिए।

अट्ठमंगलदव्वाणि, पाडिहेराणि मंगलकारगाणि।
जावइय-जिणालयोदु,समिद्धोतावइयागिहावि॥1108॥

अष्ट मंगलद्रव्य, अष्ट प्रातिहार्य ये सभी मंगलकारक माने जाते हैं। जिनालय जितने समृद्ध होते हैं, वहाँ घर भी उतने समृद्ध होते हैं।

समयेगे उवओगो, एगो सिक्खावीअ दिट्ठंतेण।
दायिय छिद्दकागदं, गुरू विज्जाणंदाइरियो॥1109॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी गुरुदेव ने छिद्रयुक्त कागज देकर दृष्टांत के माध्यम से सिखाया कि जीव के एक समय में एक ही उपयोग होता है।

विशेषार्थ–आचार्यश्री विभिन्न दृष्टांतादि के माध्यम से जैनागम के गूढ़ रहस्यों को बड़ी सरलता से समझा देते थे। जीव का एक समय में उपयोग एक ही ओर रहता है। पापड़ खाता हुआ व्यक्ति उसकी आवाज भी सुन रहा है, स्वाद भी ले रहा है आदि ऐसा लगता है

जैसे सारे काम एक ही साथ-साथ हो रहे हैं किन्तु ऐसा नहीं है, एक समय में एक ही काम हो सकता है। तब आचार्यश्री ने practical के लिए एक कागज दिया जिसके दोनों छोर पर एक-एक छेद था और दोनों हाथों की तर्जनी अंगुली में डालने को दिया एवं कहा उसे ऐसे खींचो कि दोनों छेद एक साथ ही फटें। तब दोनों अंगुलियों पर बराबर force लगाने पर भी एक ही छेद कटता है। अतः सिद्ध होता है कि जीव का उपयोग एक समय में एक ही ओर होता है।

विंतर-बाहा-पीडिद-अज्जाए पीडा कोंडकुंडेण।
सिद्धचक्कविहाणेण, संतिमंतजवेणं हरिदा॥1110॥

आचार्यश्री बताते थे कि आचार्य भगवन् श्री कुंदकुंद स्वामी के संघ में एक आर्यिका व्यंतर बाधा से पीड़ित थी। आचार्यश्री ने सिद्धचक्र विधान और शांतिमंत्र की जाप से उनकी पीड़ा दूर की।

चिंतामुत्तीइ धम्म-विड्ढीइ संगीदं महाविज्जा।
पज्जावरण-सोहगं, करावेज्ज मंदिरे झुणिं तं॥1111॥

चिंतामुक्ति और धर्मवृद्धि के लिए संगीत महाविद्या है। यह संगीत पर्यावरण का शोधक भी है अतः मंदिर में संगीत-ध्वनि करनी चाहिए।

जइण-णायो जिणागमसिद्धंतो सव्वलोगोवयारी।
पक्खवायहीणो सच्चट्ठिदो णरत्त-रक्खगो तहा॥1112॥

जैन न्याय व जिनागम सिद्धांत सर्व लोकोपकारी, पक्षपात से रहित, सत्य पर स्थित और मानवता का रक्षक है।

दहविहं सम्मत्तं दु, धम्मज्झाणं तहा समणधम्मो।
दहदिसि-वत्थधारगा, सुपुज्जा भयवदोव्व लोए॥1113॥

सम्यक्त्व दस प्रकार का है, धर्मध्यान एवं श्रमणधर्म के भी दस भेद हैं। इस दस दिशा रूप वस्त्र के धारण करने वाले दिगंबर मुनिराज लोक में भगवान् के समान पूज्य हैं।

परमेट्ठीसुं गुणाणुरायो सगसरूवाणुसंधाणं।
भत्ती भयवद-हेदू, संभवो आसण्णभव्वेहि॥1114॥

परमेष्ठियों में, उनके गुणों में अनुराग भक्ति है अथवा अपने स्वरूप की खोज ही भक्ति है। भक्ति भगवत्ता का हेतु है। यह भक्ति आसन्न भव्यों के द्वारा ही संभव है।

अइक्कमादि-दोसाण, परिहारस्स गहदु पायच्छित्तं।
असमाहि-कारणं चिय, उज्झेज्ज परणिंदं णिच्चं॥1115॥

अतिक्रमादि दोषों के परिहार के लिए नित्य प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए। जो परनिंदा असमाधि का कारण है उसे छोड़ ही देना चाहिए।

कहं पि विहवं लहित्तु, जो णेव कया वि अहंकार-जुदो।
सो खलु महाणुभावो, कज्ज-साहगो तह विणीदो॥1116॥

जो किसी भी प्रकार के वैभव को प्राप्त कर अहंकार से युक्त नहीं होता वह कार्य का साधक और विनम्र ही निश्चय से महानुभाव है।

चिंतेज्ज मणथिरिमाइ, मग्गणा-गुणट्ठाण-परूवणं दु।
अण्णाणतमं खयिदुं, जिणसुत्तं सय चिंतणीयं॥1117॥

मन की स्थिरता के लिए मार्गणा व गुणस्थान की प्ररूपणा का चिंतन करना चाहिए। अज्ञान रूपी अंधकार के क्षय के लिए जिनसूत्र सदैव चिंतनीय हैं।

समाहाण-दायगा दु, अणेग-गंथीणं तच्च-वत्ता य।
अपुव्वविसोहि-हेदू, णिमित्तं विअप्पसंतीए॥1118॥

आचार्यश्री की तत्त्ववार्ता अनेक ग्रंथियों का समाधान देने वाली होती थी। वह तत्त्वचर्चा विकल्पशांति में निमित्त और अपूर्व विशुद्धि का हेतु रही।

वयणादीदा णियमा, अप्पविसोही चिय णिग्गंथाणं।
सा णो सक्का समये, विस्सस्स कस्सिं वि जीवम्मि॥1119॥

निर्ग्रन्थ गुरुओं की आत्मविशुद्धि नियम से वचनातीत है। वह विशुद्धि किसी भी समय विश्व में किसी भी जीव में शक्य नहीं है।

आइरियस्स दु पसंत-रूवो य पच्चक्खमोक्खमग्गोव्व।
तं कहं ण आगरिसदि, जं गुणं जाणदि कंखदि तं।।1120।।

आचार्यों का प्रशांत रूप प्रत्यक्ष मोक्षमार्ग के समान है। वह रूप भव्यों को कैसे आकर्षित नहीं करता? क्योंकि जो जिस गुण को जानता है उसकी आकांक्षा करता है।

सल्लेहणा

(सल्लेखना)

सगसुद्धप्प-मणुभविदु-मक्खमा जे के वि पमाद-लीणा।
ववहार-रयणत्तयं, लहित्ता णिच्छयं पणमामि॥1121॥

जो कोई भी प्रमाद लीन हैं वे अपनी शुद्धात्मा का अनुभव करने में अक्षम हैं। व्यवहार रत्नत्रय को प्राप्त कर मैं निश्चय रत्नत्रय को नमस्कार करता हूँ।

लहिदुं विमलसमाहिं, समिदीहि सह महव्वदं पालेज्ज।
सगसत्तिं अणुगूहिय, जदी भवतणभोयविरत्तो॥1122॥

संसार-शरीर-भोगों से विरक्त यति निर्मल समाधि प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति को न छिपाकर समितियों के साथ महाव्रतों का पालन करते हैं।

सावया साविया अवि, सल्लेहणा-वदं सया पालंति।
लहिदु-मुत्तमसमाहिं, सगसत्तीए सुभत्तीए॥1123॥

उत्तम समाधि को प्राप्त करने के लिए श्रावक-श्राविका भी अपनी शक्ति अनुसार भक्तिपूर्वक सदैव सल्लेखना व्रत का पालन करते हैं।

सल्लेहणा-यालो य, अट्ठवरिसूण-कोडिवासपुव्वं।
अंतोमुहुत्तं जहण्णेण मज्झम-असंखं भेया॥1124॥

सल्लेखना का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष कम कोटि वर्ष पूर्व है। जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है और मध्यम असंख्यात भेद हैं।

बारसाणुवेक्खा सय, सल्लेहणा-वद-रुक्खस्स जलं व।
अक्कपयासोव्व तवो, संजमो उव्वराभूमीव॥1125॥

सल्लेखनाव्रत रूपी वृक्ष के लिए द्वादश अनुप्रेक्षा जल के समान, तप सूर्य के प्रकाश के समान और संयम उर्वरा भूमि के समान है।

जह विज्जत्थी विज्जा-अज्झयणं कुणिय वस्सपज्जंतं।
अह दायदे परिक्खं, सम्म-जदणेण सजगत्तेण॥1126॥
तह संजमी साहगा, अक्खं कसायं जिणित्तु कुव्वंति।
साहणं सुजदणेणं, पावेदुं परमसमाहिं दु॥1127॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार विद्यार्थी वर्षपर्यंत यत्नपूर्वक विद्या-अध्ययन करके पुनः यत्नपूर्वक परीक्षा देता है उसी प्रकार संयमी परम समाधि को प्राप्त करने के लिए इंद्रिय व कषायों को जीतकर सम्यक् यत्नपूर्वक साधना करते हैं।

समाहीइ अप्पविहव-पगासणाए सल्लेहणाविही।
हेदू तिविहं कम्मं, खयिदुं पमाणिगा पहाणा॥1128॥

सल्लेखनाविधि समाधि का और आत्म वैभव के प्रकटीकरण का कारण है। तीन प्रकार के कर्म को क्षय करने के लिए यह सल्लेखनाविधि प्रधान व प्रमाणिक है।

कुव्विदुं किसं कायं, पज्जत्तो अप्पयालब्भासा वि।
किण्णु खयिदुं कसायं, आवसियो दु दिग्घयालस्स॥1129॥

काय को कृश करने के लिए अल्पकाल का अभ्यास भी पर्याप्त है किन्तु कषायों को कृश करने वा क्षय करने के लिए दीर्घकालीन अभ्यास की आवश्यकता है।

संजमो पालिदो मुणि-विज्जाणंदेण दीहयालंतं।
णियम-सल्लेहणा पुण, पालिदा जमसल्लेहणा दु॥1130॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने दीर्घकाल तक संयम का पालन किया। नियम-सल्लेखना और पुनः यम-सल्लेखना का पालन किया।

देहो य किसो करिदो, तेणं णियमसल्लेहणा-याले।
ममत्तं खयेदुं रस-अण्णाइ-चागो अवि कमसो॥1131॥

नियम सल्लेखना के समय उन्होंने अपनी देह को कृश किया। ममत्व भाव के क्षय के लिए क्रमशः रस, अन्नादि का त्याग भी किया।

बोहि-समाहि-णिहाणं, पढीअ जोगी पढमाणुजोगं पि।।
पव्वदिणेसुं करीअ, उववास-मूणोदर-मादिं।।1132।।

प्रथमानुयोग बोधि व समाधि का निधान है। वे योगी उस प्रथमानुयोग का भी अध्ययन किया करते थे। पर्व के दिनों में वे उपवास, ऊनोदर आदि किया करते थे।

पारंभे सो करेज्ज, जिणवंदणं झाणं चउसंझासु।
अणंतरं बहुवारं, तच्चचिंतण-मप्पझाणं पि।।1133।।

प्रारंभ में वे चारों संध्याकालों में जिनवंदना व ध्यान किया करते थे। अनंतर वे बहुत बार तत्त्वचिंतन व आत्मध्यान करने लगे।

बारस-घडि-पज्जंतं, समये सेट्ठ-सल्लेहणा-वदस्स।
करीअ सो सज्झाणं, सुहचिंतणं बहुयालंतं।।1134।।

श्रेष्ठ सल्लेखनाव्रत के समय वे बारह घड़ी पर्यंत ध्यान किया करते थे। बहुत समय तक स्वाध्याय व शुभचिंतन किया करते थे।

तच्चचिंतणम्मि रदो, विरत्तो अवि ववहार-किरियादो।
णिच्छयझाणे लीणो, णेव तदा ववहार-धम्मे।।1135।।

वे तत्त्वचिंतन में रत रहते थे। कभी व्यवहार क्रिया से विरक्त निश्चय ध्यान में भी लीन होते थे। जब वे निश्चय में लीन होते थे तब व्यवहार धर्म में रत नहीं होते थे।

पिंडत्थाइ-चउविहं, झाणं ओं आइ-बीयक्खराणं।
जलाइ-पणधारणाण, करीअ सो मज्झरत्तीए।।1136।।

वे मध्यरात्रि में पिंडस्थ आदि (पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत) चार प्रकार का ध्यान, ऊँ आदि बीजाक्षरों का ध्यान और जल आदि पाँच धारणाओं का ध्यान किया करते थे।

पंचपरमेट्ठि-झाणं, सासय-सिद्धखेत्तस्स अवि करीअ।
समवसरणस्स छाया-चित्तस्स पदीगुवासणं च।।1137।।

वे पंचपरमेष्ठी का ध्यान, शाश्वत सिद्धक्षेत्र शिखरजी, समवसरण व छायाचित्र का ध्यान भी किया करते थे। वे प्रतीकोपासना भी किया करते थे।

पुव्वणुपुव्विं पच्छाणुपुव्विं खलु जहातहाणुपुव्विं।
बइखरि-आइ-चउ-विविह-जावं विकरेज्ज पणिहीए॥1138॥

वे पूर्वानुपूर्वी, पश्चातानुपूर्वी और याथातथ्यानुपूर्वी जाप किया करते थे। एकाग्रतापूर्वक बैखरी आदि चार-विविध प्रकार की जाप एकाग्रतापूर्वक किया करते थे।

अणुवेक्खा-तव-पदत्थ-णवदेव-णामेणं करीअ जवं।
सोडसट्ठ-दल-पउमं,कमसो धरियणाहि-हिअयेसु॥1139॥
उण्हे वसदिगा-उवरि, कयाइ पाविडयाले रुक्खतले।
उज्जाणादिम्मि दु सो, सीदे करीअ सुहज्झाणं दु॥1140॥

वे अनुप्रेक्षा, तप, पदार्थ, नवदेवादि नाम से जाप किया करते थे। वे नाभि पर षोडशदल कमल व हृदय पर अष्टदल कमल धारण कर ध्यान किया करते थे। वे ऊष्णकाल में वसतिका के ऊपर, वर्षाकाल में कदाचित् वृक्ष के नीचे और शीतकाल में उद्यान में शुभ ध्यान किया करते थे।

देहादु णिप्पज्जीअ, सेदो कयाइ अग्गिधारणाए दु।
सो सुद्धप्पझाणेण, लहीअ सया परमाणंदं॥1141॥

अग्निधारणा रूप ध्यान से देह से कदाचित् पसीना भी निष्पन्न होता था। वे शुद्धात्म ध्यान से सदैव परमानंद प्राप्त करते थे।

मोण-साहणं जिणगुण-चिंतणं सुद्धप्पगुणचिंतणं च।
णरज्जियपज्जायेसु,सिद्धोव्वस-चिंतणं करीअ॥1142॥

वे मौन साधना, जिनेन्द्रदेव के गुणों का चिंतन और शुद्ध आत्मा के गुणों का चिंतन किया करते थे। वे पर्यायों में रंजायमान न होकर सिद्धों के समान अपनी आत्मा का चिंतन किया करते थे।

अरिहो वा सिद्धो हं, णिच्चणिरंजणो सुद्धगुणजुत्तो।
णो हं तिविहं कम्मं, सुद्धगुणजुद-असरीरी हं॥1143॥

वे चिंतन करते थे कि मैं अरिहंत अथवा सिद्धरूप हूँ। मैं नित्य हूँ, निरंजन हूँ, शुद्ध गुणों से युक्त हूँ। मैं तीन प्रकार के कर्म—भाव कर्म, द्रव्यकर्म व नोकर्म भी नहीं हूँ।

मोदगं खिल्लणं जह, लहिदुं तिव्वकंखा-जुदो बालो।
तह सिरी-आइरियो दु, लहिदुं परमसमाहिभावं॥1144॥

जिस प्रकार बालक लड्डू व खिलौने प्राप्त करने के लिए तीव्र आकांक्षा से युक्त होता है उसी प्रकार आचार्यश्री परम समाधिभाव को प्रकार करने में तीव्र आकांक्षा से युक्त थे।

णिरीह-वित्तीइ समिय, कोहाइ-सव्व-कसायं च जदिणा।
बीयं व खंति-भावो, पाविदो सगसिद्धिं लहिदुं॥1145॥

यतिराज ने निरीहवृत्ति से क्रोधादि सर्व कषायों का शमन कर निजात्म सिद्धि को प्राप्त करने के लिए बीज के समान क्षांति भाव को प्राप्त किया।

संकुचिय गमणागमण-मप्पसुद्धसहावम्मि रमंतस्स।
लहिदुं सुद्धसहावं, मग्गेगो समत्त-भावो दु॥1146॥

शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करने के लिए गमन-आगमन को संकुचित कर आत्मा के शुद्ध स्वभाव में रमण करते हुए मुनिराज के लिए समत्व भाव ही एक मार्ग है।

बहुजणसंपक्कं सो, हासिय चिंतीअ स-सुद्धसहावं।
लहिदुं स-सुद्धभावं, पहाण-हेदू विआणेज्जा॥1147॥

बहुत जनों के संपर्क को कम कर वे निज शुद्ध स्वभाव का चिंतन किया करते थे। अपने शुद्धभावों की प्राप्ति के लिए यह प्रधान हेतु जानना चाहिए।

झाण-झेय-झादु-आइ-विअप्प-मुज्झिय णिव्विअप्पझाणं।
लहिदुं सगप्पे थिरं, होच्च कुणदि णिज्जरं विउलं॥1148॥

निर्विकल्प ध्यान को प्राप्त करने के लिए ध्यान, ध्येय, ध्याता आदि के विकल्प का त्यागकर अपनी आत्मा में स्थिर होकर योगी विपुल कर्मों की निर्जरा करते हैं।

सुद्धप्प-णिस्सिद-सहज-णंदं अणुभवदि अप्पमत्तो जं।
सो असंभवो महिंद-णरिंद-खगिंदिंदादीणं॥1149॥

अहो! शुद्धात्मा से निःसृत जिस सहज आनंद का अनुभव अप्रमत्त मुनिराज करते हैं वह महेंद्र, नरेंद्र व खगेन्द्र आदि के भी असंभव है।

सुद्धप्पज्झाण-रदा, अप्प-मणुभवंति भासंति जे ते।
भवोइमोहु दुक्खदा, खारसलिलपूरिद-सरिदाव॥1150॥

जो शुद्धात्मध्यान में रत श्रमण आत्मा का अनुभव करते हैं उन्हें यह संसार खारे जल से भरी नदी के समान दुःखदायक प्रतीत होता है।

संपुण्ण-तव-सारो दु, वेरग्गजुद-संजमो णादव्वो।
सल्लेहणा जाणेज्ज, पाणोव्वसय उहयकिरियाण॥1151॥

संपूर्ण तप का सार वैराग्ययुक्त संयम जानना चाहिए। व्यवहार व निश्चय दोनों क्रियाओं के लिए सल्लेखना प्राण के समान है।

भारदिं च पहुच्चीअ, हं गुरुचरणेसुं याले याले।
विणयेण विसुद्धीए, अप्पसंबोहणं दाएज्ज॥1152॥

हम समय-समय पर कुंदकुंदभारती में आचार्य गुरुवर के चरणों में पहुँचते रहे एवं विनय से विशुद्धिपूर्वक आत्मसंबोधन भी देते रहे।

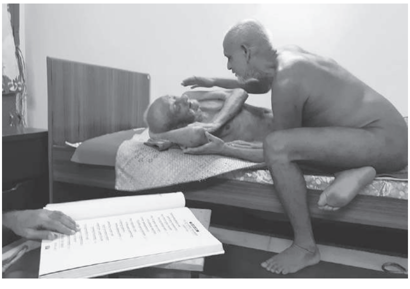

भद्दपद-पुण्णिमाए, लद्धो णिय-गुरु-समायारो मए।
सिमरदि गुरू आवेज्ज, किं वसुणंदी महारायो॥1153॥
गुरुवयण-मिदं सुणिय, असंभवो थंभणं सिस्सेगस्स।
पारणुवरंत-मज्झंदिणे बारसवादणम्मि तं॥1154॥
णोयडा-मंदिरादो, पहुच्चीअ हु आइरिय-सेवाए।
कुंदकुंदभारदिं च, चलिदूणं सत्तरसमीलं॥1155॥

सन् 2019 में भाद्रपद पूर्णिमा के दिन मुझे अपने गुरु का समाचार प्राप्त हुआ। (राजू भैया का फोन ब्र. प्रभाशीष भैया के पास आया और उन्होंने कहा कि) आचार्यश्री महाराज जी को याद कर रहे हैं और बार-बार पूछ रहे हैं कि वसुनंदी महाराज आ गए क्या? गुरु के इन वचनों को सुनकर एक शिष्य के लिए अब रुकना असंभव था इसीलिए पारणा के बाद दोपहर 12 बजे ही हम आचार्यश्री की सेवा के लिए नोएडा जिनमंदिर से 17 मील चलकर कुंदकुंद भारती पहुँचे।

आउअ-णाणं किच्चा, गहचाराइ-जोदिस-णिमित्तेणं।
संबोहिदा गुरू मइ, सल्लेहणाए थिरिमाए॥1156॥
जहवि पुण्णजागरिओ, स-परिणामं संभालिदुं करिदुं।
उत्तम-सल्लेहणंदु,तहविस-कत्तव्वपालणस्स॥1157॥(जुम्मं)

ज्योतिष ग्रहों के संचारादि के निमित्त से गुरु की आयु का परिज्ञान कर हमने सल्लेखना में स्थिरता हेतु गुरुवर को संबोधित किया। यद्यपि गुरुदेव अपने परिणामों को संभालने और उत्तम सल्लेखना करने के लिए पूर्ण जागरुक थे तथापि अपने कर्त्तव्यपालन के लिए संबोधन दिया।

अट्ठारस-सिदंबरं, सूरि-संतिसिंधुस्स वरसमाहिं।
सुमरित्तु होज्ज भावो, दुल्लह-जमसल्लेहणाए॥1158॥

18 सितंबर को चा.च. आचार्य श्री शांतिसागरजी की पुण्य तिथि पर आचार्यश्री की श्रेष्ठ समाधि का स्मरण कर उनके दुर्लभ यम-सल्लेखना के भाव हुए।

देहं सिहिलं पस्सिय, आउ-अवसाणं णियडं जाणित्तु।
सव्वविहावं मुंचिय,परिलीअ णिय-अप्पे जोगी॥1159॥

देह को शिथिल देखकर एवं आयु का अवसान निकट जानकर वे योगी सर्व विभाव को त्यागकर निजात्मा में लीन हुए।

सम्मत्ते संजमे य, पमाद-कसाय-अण्णाणादु जहवि।
जणिद-दोसाण गहंति, पायच्छित्तं सग-गुरुणा दु॥1160॥
तहवि समग्गजीवणे, दोसाण साहगो अंतसमयम्मि।
णिवत्तीए कुव्वंति, अउत्तमत्थिग-पडिक्कमणं॥1161॥(जुम्मं)

यद्यपि साधक समय-समय पर प्रमाद, कषाय व अज्ञान से सम्यक्त्व व संयम में जनित दोषों के लिए अपने गुरु से प्रायश्चित्त ग्रहण करते हैं। तथापि अपने समग्र जीवन में हुए दोषों की निवृत्ति के लिए वे अंत समय में औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण करते हैं।

उणवीस-सिदंबरम्मि, करीअ उत्तमट्ठिग-पडिक्कमणं।
बंभमुहुत्ते खमेज्ज, सव्वजीवाण विसुद्धीए॥1162॥

19 सितंबर को ब्रह्ममुहूर्त में आचार्य गुरुवर ने औत्तमार्थिक प्रतिक्रमण किया एवं विशुद्धिपूर्वक सभी जीवों को क्षमा किया।

जमसल्लेहणावयं, धरिदं तए सुणिम्मलचित्तेणं।
पुण्णजीवणयालस्स, उस्सिक्किदो सव्वाहारो॥1163॥

तत्पश्चात् आचार्यश्री ने श्रेष्ठ निर्मल चित्त से यम सल्लेखना व्रत को धारण किया। एवं जीवनभर के लिए सभी प्रकार के आहार का त्याग कर दिया।

सिद्धाइ-भत्तिं कडुअ, करीअ जिणिंद-वंदणं भावेहि।
माणत्थंभ-दंसणं, सूरी सगप्प-विसुद्धीए॥1164॥

पुनः आचार्यश्री ने सिद्धादि भक्ति करके अपनी आत्मविशुद्धि के लिए भावपूर्वक जिनेन्द्रप्रभु की वंदना की और मानस्तंभ के दर्शन किए।

सम्माइट्ठी सक्को, सल्लेहणाए कुव्विदुं मरणं।
परमसमाहिभावो दु, आहि-वाहि-उवाहि-रहिदस्स॥1165॥

सल्लेखनापूर्वक मरण करने के लिए सम्यग्दृष्टि शक्य है। जो आधि, व्याधि और उपाधि से रहित है उसके ही परमसमाधिभाव होता है।

गुणुत्तर-सेढीइ सग-विसुद्धिं वड्ढेज्ज उज्झिय धीए।
सयल-सग-पदोवाही, जिणस्सअप्पसक्खीएतह॥1166॥

आचार्यश्री ने श्री जिनदेव की आत्मसाक्षी में बुद्धिपूर्वक अपने पद व उपाधियों का त्यागकर गुणोत्तर श्रेणी से अपनी विशुद्धि बढ़ायी।

दायिदा तेण आसी, सिस्स-भत्तादीण सव्वसम्मुहे।
अइ-णिरीहभावेणं, उज्झेज्जा सगपद-मुवाहिं॥1167॥

उन्होंने अपने शिष्यों और भक्त आदिकों को आशीर्वाद दिया। पुनः निरीहभाव से सार्वजनिक रूप से सभी के सामने अपने पद व उपाधियों का भी त्याग कर दिया।

चिंतीअ खवगरायो, सगमूलोत्तर-गुणा ताण फलाणि।
सुप्पसंतभावेणं, ववहार-णिच्छय-धम्मं अवि॥1168॥

क्षपकराज ने अपने मूलगुण, उत्तरगुण और उनके फलों का चिंतन किया। उन्होंने सुप्रशांत भाव से व्यवहार व निश्चयधर्म का भी चिंतन किया।

दिवसे संझा-याले, झाणं कुव्वीअ परमसिद्धाणं।
णिरंतरं हि जवेज्जा, अरिहं अरिहं विसुद्धीए॥1169॥

वे दिन में, संध्याकाल में परमसिद्धों का ध्यान किया करते थे। उन्होंने निरंतर ही विशुद्धिपूर्वक अर्हं-अर्हं का जाप किया।

संझासु संतमणेण, सुणीअ पडिक्कमणं मुणिरायो दु।
दूरदंसणेण तदा, कुव्वीअ दंसणं सुभत्ता॥1170॥

मुनिराज ने संध्याकालों में शांतमन से प्रतिक्रमण किया। तब भक्तों ने दूरदर्शन से उनके दर्शन किए।

वीयराय-देवस्स दु, गुणा जम-सल्लेहणा-धारगेण।
चिंतिदा सुभावेहिं, मिच्चुमग्गे पवट्टंतेण॥1171॥

यम सल्लेखना के धारक, मृत्युमार्ग पर प्रवर्तन करते हुए आचार्यश्री ने शुभ भावों से श्री वीतरागी देव के गुणों का चिंतन किया।

मे अप्पा सिद्धोव्व हि, पुण पुण चिंतंतो अप्पलीणो दु।
अप्पलीणत्तं विणा, तिव्व-गदीए णिज्जरा णो॥1172॥

मेरी आत्मा सिद्धों के समान है। पुनः पुनः ऐसा चिंतन करते हुए वे आत्मलीन हुए। उचित ही है आत्मलीनता के बिना तीव्र गति से कर्मों की निर्जरा नहीं होती।।

सययं जवं कुणंतो, परमाणंदं चिय अणुभवीअ सो।
अइविसुद्धीए तहा, पढम-दिवसो गदो णंदेण।।1173।।

निरंतर जप करते हुए वे परमानंद का अनुभव कर रहे थे। अति-विशुद्धि और आनंद के साथ पहला दिन व्यतीत हुआ।

धम्मज्झाणेण णिसा, गदा चिय वीस-सिदंबरम्मि पुणो।
संबोहिदो कत्तव्व-पालणस्स मए विणयेणं।।1174।।

पूर्ण रात्रि भी धर्मध्यान के साथ व्यतीत हुई। 20 सितंबर को पुनः कर्त्तव्यपालन के लिए हमने विनयपूर्वक संबोधन दिया।

तुमं दीहयालंतं, णिद्दोस-संजम-साहणं करीअ।
होज्जसयअप्पमादी,अधुणादु परिक्खा-यालम्मि।।1175।।

आपने दीर्घकाल तक संयम की निर्दोष साधना की। आप सदैव अप्रमादी रहे और आज इस परीक्षाकाल में भी अप्रमादी रह रहे हैं।

जिण्णकुडीव सरीरं, वा इंदधणूव विणस्सदि णियमा।
णेव कया वि चिंतेज्ज, देह-सुहदुहाइं अप्पस्स॥1176॥

जीर्णकुटी और इंद्रधनुष के समान यह शरीर नियम से नष्ट हो जाता है। शरीर के सुख-दु:ख को कभी आत्मा का सुख-दु:ख नहीं सोचना चाहिए।

तुमं अप्प-परिणामं, समत्थो करिदुं णिम्मलं भयवो।
तुज्झ अप्पा सिद्धोव्व, किं ण जाणेसि महासत्तिं॥1177॥

हे भगवन्! आप आत्म-परिणामों को निर्मल करने में समर्थ हैं। आपकी आत्मा सिद्धों के समान है। क्या आप आत्मा की महाशक्ति को नहीं जानते? अर्थात् आत्मा महाशक्ति से युक्त है।

बावण्ण-पिच्छधारग-णिमित्तरूवा समाहिसाहणाइ।
वरं भावविसुद्धीइ, खमा तुज्झ उवादाणसत्ती॥1178॥

आपकी समाधि की साधना में 52 पिच्छीधारक साधु निमित्त रूप हैं। किन्तु आपकी भावों की विशुद्धि में आपकी उपादान शक्ति समर्थ है।

छुहाइ-परीसहा तव, णेव समत्था विणासिदुं अप्पं।
सरीरं ते खयंते, ण सरीरं तुज्झ सहावादु॥1179॥

क्षुधा आदि परीषह आपकी आत्मा का विनाश करने में समर्थ नहीं हैं। वे शरीर को ही नष्ट कर सकते हैं। स्वभाव से शरीर आपका नहीं है।

भो खवगरायो! तुमं, खमाइधम्म-अमियरसं पीएज्ज।
तेहि विणा णो समदे, अप्प-पिवासा आउलत्तं॥1180॥

हे क्षपकराज! आप क्षमादि धर्म रूप अमृत रस का पान करते हैं। उन धर्मों के बिना आत्मा की पिपासा व आकुलता शान्त नहीं होती।

अणुवेक्खा-चिंतणंदु,वरुव्वरग-मप्पविसुद्धिरुक्खस्स।
पुरिसट्ठ-मक्ककरोव्व,तच्चचिंतणंचसिंचणंव॥1181॥

आत्मविशुद्धि रूपी वृक्ष के लिए अनुप्रेक्षा का चिंतन श्रेष्ठ खाद के समान है, पुरुषार्थ सूर्य की किरणों के समान है और तत्त्वचिंतन जलसिंचन के समान है।

देस-विदेसेसुं तव, बहु-भत्ता दु णवरि णेव समत्था।
दायिदुं अप्पसंतिं, अहो भयवदो खवगरायो॥1182॥

अहो क्षपकराज भगवन्! देश-विदेश में आपके बहुत भक्त हैं किन्तु वे आपको आत्मशान्ति देने में समर्थ नहीं हैं।

जिणभत्ती गुरुसेवा, णिमित्तं जिणवयण-मप्पसुद्धीइ।
दिग्घयाल-अब्भासी, संभालिदु-मप्पपरिणामं॥1183॥

जिनभक्ति, गुरुसेवा व जिनवचन आत्मशुद्धि में निमित्त हैं। आत्म-परिण ामों को संभालने में आप दीर्घकाल से अभ्यासी हैं।

कसाय-पमाद-रहिदो, तप्परो पालिदुं मूलाइ-गुणा।
तवं तुमं वड्ढेज्जा, कंखं रोहंतो बुद्धीइ॥1184॥

हे स्वामी! कषाय व प्रमाद से रहित आप मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन करने में तत्पर हैं। बुद्धिपूर्वक आकांक्षाओं का निरोध करते हुए आपने तप को वृद्धिंगत किया है।

पसम-संवेग-अत्थिग-अणुकंवा-भावेहिं सम्मत्तं।
विमलं करंतो विसोहीइ मित्ति-आदिं चिंतीअ॥1185॥

आपने प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और अनुकंपा के भावों से सम्यक्त्व को निर्मल करते हुए विशुद्धिपूर्वक मैत्री आदि भावनाओं का चिंतन किया है।

उक्किट्ठ-सल्लेहणं, करेदुं धिदि-सुद-सत्त-तव-भावा।
एगत्तं च भावीअ, उज्झिय आसुरि-आइ-भावा॥1186॥

आपने उत्कृष्ट सल्लेखना करने के लिए आसुरी आदि भावों का त्यागकर धृति, श्रुत, सत्व, तप व एकत्व भावना को भाया है।

तव दंसणस्स बहुजण-णिअरो अत्थ किण्णु सगप्पगेहे।
तुमं णिवससि तं महा-सुभडो दु वियप्पणिरोहस्स॥1187॥

यहाँ आपके दर्शन के लिए बहुत लोगों का समूह है किन्तु आप अपने आत्मारूपी भवन में निवास कर रहे हो अतः विकल्पों के निरोध के लिए आप महायोद्धा हैं।

तव आणणस्स आभा, किलेसाइ-हारगा अइविसुद्धा।
देहस्सअमलकंती,सुविसुद्ध-परिणाम-पदीगा॥1188॥

आपके मुख की आभा अति विशुद्ध और सभी के क्लेशादि का हरण करने वाली है। आपकी देह की निर्मल कांति आपके विशुद्ध परिणामों का प्रतीक है।

भो खवगराओ तुमं, अप्पलीणो तुरिययाल-जोगीव।
जोगसाहणाए सग-सुद्धप्परदो अघं खयिदुं॥1189॥

हे क्षपकराज! आप चतुर्थकाल के योगी के समान आत्मलीन हैं। आप पाप-क्षय के लिए योग साधना के माध्यम से अपनी शुद्धात्मा में रत हैं।

तव पुण्णेण सहस्सा-जणा होंता परमाणुसासणं वि।
जंतवसल्लेहणादु,पुण्ण-कारणंबहु-जणाणं॥1190॥

आपके पुण्य से हजारों लोगों के होते हुए भी यहाँ परम अनुशासन है। क्योंकि आपकी सल्लेखना बहुत लोगों के लिए पुण्य का कारण है।

समाहि-आयंसविही, पावणिज्जरा-कारणं भव्वाण।
असुहसंवरस्स सुहासवस्स अइपुण्ण-हेदू य॥1191॥

समाधि की आदर्श विधि भव्यों के लिए पापनिर्जरा का कारण है, अशुभ के संवर, शुभ आस्रव और अति पुण्य का कारण है।

तव समाहिं पस्संति, दूरदंसण-पसारेणं कोडी।
जणाअज्जिदुंपुण्णं,सग-सुहसमाहि-भावणाए॥1192॥

पुण्यार्जन के निमित्त एवं अपनी शुभ समाधि की भावना से करोड़ों लोग दूरदर्शन प्रसारण से आपकी समाधि को देख रहे हैं।

आगच्छेज्ज बहु-विदू, तव चरण-वंदणाए भो सामी!।
णोउग्घाडेज्जतोवि,सगणेत्तंणियभाव-लीणो॥1193॥

हे स्वामी! आपकी चरणवंदना के लिए बहुत विद्वान् यहाँ आए हैं तो भी निजात्मभाव में लीन आप अपनी आँखों को नहीं खोलते।

सुविसुद्धि-बोहि-समाहि-मग्ग-पाथेयं तुमं जाणेज्जा।
पसंतभाव-मोणेहि, करीअ सिद्धट्ठ गुण-झाणं॥1194॥

अहो भगवन्! आप विशुद्धि, बोधि व समाधि के मार्ग को जानते हैं इसलिए आपने सदैव प्रशांतभाव व मौन से सिद्धों के आठ गुणों का ध्यान किया है।

समयसार-अट्ठ पाहुडाइ-गंथाण सुणिय बहुगाहाउ।
सग-चित्तं सुविसुद्धं, करीअ भयवो खवगरायो॥1195॥

समयसार, अष्टपाहुड़ आदि ग्रंथों की बहुत सी गाथाओं को सुनकर क्षपकराज भगवन् आचार्यश्री ने अपने चित्त को विशुद्ध किया।

बहु-अज्झप्प-गीदं दु, भावणं थुदि-मणुवेक्खं सुणित्ता।
सगपरिणामं करीअ, अइणिम्मल-मुज्जलं धवलं॥1196॥

बहुत से आध्यात्मिक भजन, भावना, स्तुति व अनुप्रेक्षा को सुनकर उन्होंने अपने परिणाम अति निर्मल, उज्ज्वल व धवल किए।

इगवीस-सिदंबरम्मि, उणवीसुत्तर-बेसहस्स-वस्से।
रोहिणी-णक्खत्तम्मि, चंदप्पह-वासुपुज्ज-गुणा॥1197॥
चिंतीअ विसुद्धीए, तं वंदेज्जा पुण पुण भावेहिं।
रोहिणीवद-मप्पगुण-विड्ढीए हेदू वत्तस्स॥1198॥ (जुम्मं)

21 सितंबर 2019 के दिन रोहिणी नक्षत्र में उन्होंने विशुद्धिपूर्वक श्री चंद्रप्रभ व श्री वासुपूज्य भगवान् के गुणों का चिंतन किया। पुनः पुनः भावों से उनकी वंदना की। रोहिणी व्रत आरोग्य और आत्मगुण की वृद्धि का हेतु है।

तस्स विमल-परिणामं समत्तभावं पस्सित्तु गुंजीअ।
जयकारं खवगराय-सिरोमणि-णामेण पसिद्धो॥1199॥

उनके विमल परिणाम और समत्वभाव को देखकर सारा वातावरण जयकारों से गुंजायमान हुआ एवं वे क्षपकराज शिरोमणि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

तस्स णिराउल-वदणं, समत्तं पस्सित्तु कहिदं मए दु।
सामी पुण्ण-पेरगो, संपेरगो विस्सधम्मस्स॥1200॥

उनके निराकुल चेहरे और समत्व परिणामों को देखकर हमने कहा हे स्वामी! आप भव्यों के लिए पुण्य के प्रेरक व विश्व धर्म संप्रेरक हैं।

तव संणासि-जीवणं, कल्लाण-पेरगं अणुकरणीयं।
आयंस-रूवं सया, अणुव्वदि-महव्वदीणं तह॥1201॥

आपका संन्यासी जीवन अनुकरण के योग्य और कल्याण की प्रेरणा देने वाला है और अणुव्रती व महाव्रतियों के लिए सदैव आदर्श रूप है।

भव्वा कल्लाणत्थं, सक्का बंधिदुं तित्थयर-पइडिं।
भव्वा सोलस-कारण-भावणा भाविदुं समत्था॥1202॥

स्वकल्याण के लिए भव्यजीव ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में समर्थ हैं। भव्य जीव ही सोलहकारण भावनाओं को भाने में समर्थ हैं।

तुमं दंसणविसुद्धिं, भावणं दु सम्मत्त-विसुद्धीए।
भावीअ दु तस्स दोस-चागस्स वर-पुरिसट्ठ-रदो॥1203॥

अहो! उत्तम मोक्ष पुरुषार्थ में रत गुरुवर! आपने सम्यक्त्व की विशुद्धि के लिए तथा उसके दोषों के त्याग के लिए दर्शनविशुद्धि भावना भायी।

तव चित्तम्मि उक्किट्ठ-दया-परिणामा सव्वजीवा पडि।
करेमु कहं हं सव्व-जीव-कल्लाणं भावो तव॥॥1204॥

आपके चित्त में सभी जीवों के प्रति उत्कृष्ट दया के परिणाम हैं। ''मैं सर्व जीवों का कल्याण कैसे करूँ'' ये भाव सदैव आपके रहे हैं।

सम्मत्तणाणचरियं, तवं इमाणं संधारगा पडि वि।
उक्किट्ठ-विणय-भावो, तवमणे उवयार-विणयो वि॥1205॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र व सम्यक् तप एवं इनके धारकों के प्रति भी आपके सदैव उत्कृष्ट विनयभाव रहे हैं। आपके चित्त में उपचारविनय भी दृष्टिगोचर होती है।

विणयसंपण्णभावं, भावीअ णिच्चं तुमं विसुद्धीइ।।
विणयभावो खलु मुत्ति-सुंदरीए परममित्तं व।।1206।।

आपने विशुद्धिपूर्वक नित्य ही विनयसंपन्नता भावना भायी। विनयभाव मुक्ति रूपी सुंदरी के परममित्र के समान है।

जं कं वि वदं गहिदं, विसुद्धीइ तए बालयालादो।
सया जदणं करेज्जा, पालिदुं णिद्दोस-वदं तं।।1207।।

आपने बाल्यकाल से जो कोई भी व्रत विशुद्धिपूर्वक ग्रहण किए उन व्रतों का निर्दोष पालन करने के लिए आपने सदैव यत्न किया।

मण्णेज्ज अदियारं पि, अणायार-कारणं तुमं णिच्चं।
अदियारं णो उज्झदि, जदि होज्ज दोससंजुदो तो।।1208।।

आप अतिचारों को भी नित्य ही अनाचार का कारण मानते हैं। यदि जीव अतिचार को नहीं छोड़ता तो वह दोषयुक्त हो जाता है।

चित्तं बंधिदुं महाथंभोव्व सोहिदुं जलं व णाणं।
बीअं व चिय रुक्खस्स, णंदस्स पहाणहेदू तं।।1209।।

सम्यग्ज्ञान चित्त को बांधने के लिए महास्तंभ के समान है, चित्त के शोधन के लिए जल के समान है एवं जैसे वृक्ष के लिए बीज है उसी प्रकार यह सम्यग्ज्ञान ही आनंद का प्रधान हेतु है।

तुमं चिंतसि उवदिससि, पढसि सुणसि सुमरसि जिणवयणाइं।
णाणुवओगो सययं, तव अभिक्खण-णाणुवजोगी।।1210।।

आप जिनवचनों का चिंतन करते हो, उपदेश देते हो, पढ़ते हो, उन्हें ही सुनते हो व याद करते हो। निरंतर आपका ज्ञानमय उपयोग रहता है, अतः आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं।

धम्मे धम्मफलम्मि य, हरिसो भावो हवेदि संवेगो।
परमवेरग्ग-जुत्तो, संवेगी तुमं सव्वदा हि।।1211।।

धर्म व धर्म के फल में हर्षभाव संवेग होता है। आप सदैव ही परम वैराग्य से युक्त संवेगी हैं।

खणलवपडिबोहणत्त-मणिच्चभावं दु भावंतो तुमं।
भावीअ तणुणासस्स, पुव्वे अप्पहिदं पययेज्ज॥1212॥

आपने अनित्य भावना को भाते हुए क्षणलवप्रतिबोधनता भावना को भाया है। अहो! धन्य हैं आप जो इस देह नाश के पूर्व ही आपने आत्महित का प्रयत्न किया है।

दाएज्ज संबोहणं पडि-खणे सगप्पस्स सुहभावाण।
उज्झेज्ज असुहभावं, ठविदुं वरसुहे सगचित्तं॥1213॥

आपने शुभ भावों के लिए अपनी आत्मा को प्रतिक्षण संबोधन दिया है। उत्तम सुख में चित्त को स्थापित करने के लिए सभी अशुभ भावों का परित्याग किया है।

सगसत्ति-अणुसारेण, मुंचेज्ज परत्था परभावणा वि।
सगप्पविसुद्धीए दु, तुमं चाग-भावणा-जुत्तो॥1214॥

स्वात्मा की विशुद्धि के लिए आपने अपनी शक्ति के अनुसार पर पदार्थों व परभावों का भी त्याग किया है। हे गुरुवर! आप त्याग भावना से युक्त हैं।

संसारवड्ढग-सव्व-कामणाणि णिरुंभिय सग-सत्तीइ।
सुतवभावंभावीअ,घादि-मघादि-कम्मंखयिदुं॥1215॥

घातिया व अघातिया कर्मों के क्षय के लिए आपने संसार की वृद्धि करने वाली सभी कामनाओं, इच्छाओं का शक्ति के अनुसार निरोध कर तप भावना भायी।

जीवविवागिं पोग्गल-विवागिं दु खेत्तं भवविवागिं च।
चउविहकम्मं खयिदुं, तवभावणं सया भावीअ॥1216॥

आपने जीवविपाकी, पुद्‌गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी इन चार प्रकार के कर्मों के क्षय के लिए सदैव तपभावना भायी।

णिच्चं तुमं सहायो, सव्व-साहगाण सल्लेहणाए।
बहु-आइरियुवज्झाय-साहूण सिस्साण विसामी॥1217॥

हे स्वामी! आप सदैव ही सभी साधकों की, बहुत से आचार्य, उपाध्याय व साधुओं की और शिष्यों की सल्लेखना में भी सहायक रहे हैं।

णिद्दिट्ठा वि तए बहु-साहूण-मज्जाणं समाहि-विही।
संबोहणं दायित्तु, तुमं दु णिरियावगाइरियो ॥1218॥

आपने बहुत से साधु व आर्यिकाओं को समाधि-विधि का निर्देश दिया। क्षपकों को संबोधन देकर आप निर्यापकाचार्य भी हुए हैं।

संजमं च पालंतो, संजद-जीवणे आगदं विग्घं।
विणस्सीअ तुमं हंदि, णाणाइबलेण वच्छलेण॥1219॥

आपने स्वयं संयम का पालन करते हुए संयमीजनों के जीवन में आये विघ्नों को वात्सल्य ज्ञानादि के बल से नष्ट किया है।

कयावि सग-देहेणं, साहूणं करीअ वेज्जावच्चं।
सुद्धोसहि-आदीहिं, बहुविहं अहो खवगरायो॥1220॥

अहो क्षपकराज! आपने कभी अपने शरीर से व कभी शुद्ध औषधि आदि के द्वारा साधुओं की बहुत प्रकार से वैय्यावृत्ति भी की है।

वेज्जावच्चं करिदुं, सया तप्परो सुद्धभावणाए।
सययं भावीअ तुमं, होज्ज सुद्ध-साहणा वदीण॥1221॥

अहो! आप सदैव शुद्ध भावना से वैय्यावृत्ति करने में तत्पर रहे हैं। आपने निरंतर भावना की कि सभी संयमी व्रतियों की साधना विशुद्ध होवे।

जिणदेवा तित्थयरा, पडि तुज्झं चित्तम्मि पराभत्ती।
गाएज्जा पाय तुमं, जिणथोत्तं अज्झप्पगीदं॥1222॥

तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव के प्रति आपके चित्त में उत्कृष्ट भक्ति विद्यमान है। आप प्रायः जिनस्तोत्र, आध्यात्मिक भजन गाया करते थे।

जिणवरगुणणुचिंतणं, पणकल्लाण-महुच्छव-चिंतणं च।
अणेगवारं जोगेहि, कुव्वीअ परमविसुद्धीए॥1223॥

आपने जिनेंद्र भगवान् के गुणों का चिंतवन और पंच-कल्याणक महोत्सव का चिंतन अनेक बार तीनों योगों से परम विशुद्धिपूर्वक किया है।

पणायारं पालिदुं, जे के वि रदा भयवद-आइरिया।
ताण वंदणं करीअ, सगायार-सुद्धीए तुमं॥1224॥

जो कोई भी आचार्य भगवन् पंचाचार के पालन में रत हैं आपने अपने आचार की शुद्धि के लिए उनकी वंदना की है।

आइरियाणं भत्तिं, कुव्वीअ सूरि-भत्ति-भावणाए।
ताण गुणाणं पि तुमं, आयार-देवो आइरियो॥1225॥

आचार्य भगवन् आचरण के देवता हैं। आचार्यभक्ति की भावना से आपने आचार्यों की एवं उनके गुणों की भक्ति की है।

एयारसंग-चउदस-पुव्व-अज्झयण-रद-उवज्झायाण।
भत्तिं सुहभावेहिं, करीअ परमदियंबराणं॥1226॥

उपाध्याय ग्यारह अंग व चौदह पूर्व के अध्ययन में रत रहते हैं। आपने शुभभावों से परम दिगंबर उपाध्यायों की भक्ति की है।

पाढगो सुददेवदा, सुदणाण-खओवसम-विड्ढीए दु।
सासय-णाण-पत्तीइ, णिमित्तं उवज्झाय-भत्ती॥1227॥

उपाध्याय श्रुतदेवता हैं। उपाध्याय की भक्ति श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की वृद्धि और शाश्वत ज्ञान की प्राप्ति में निमित्त है।

उवएसो जिणवयणं, साहू अवि पवयण-सद्देण जाण।
कुव्वीअ साहुभत्तिं, णियसव्वकम्मक्खयस्स खलु॥1228॥

प्रवचन शब्द से उपदेश, जिनवचन और साधु भी जानना चाहिए। आपने अपने सर्व कर्मों के क्षय के लिए साधुभक्ति की है।

सव्वसाहूणं देज्ज, परमवच्छलेण धम्मविड्ढीए।
जिणसासणपहावणा, असक्का विणा वच्छलेणं॥1229॥

आपने सभी साधुओं को सदैव धर्म की वृद्धि के लिए परमवात्सल्य दिया है। वात्सल्य के बिना जिनशासन की प्रभावना अशक्य है।

सगावसिय-कत्तव्वं, पालीअ सावग-समणवत्थाए।
तुमं असुह-णिरोहस्स, सुहपवित्तीए सक्कं तं॥1230॥

श्रावक व श्रमण की अवस्था में आपने षडावश्यक कर्त्तव्यों का पालन किया। वे आवश्यक कर्त्तव्य अशुभ के निरोध व शुभ में प्रवृत्ति के लिए शक्य हैं।

कत्तव्वं पालेदुं, तुमं तप्परो णिरुंभिदुं चित्तं।
जह कुणदि तह लहदि जं, करीअ कस्स वि उवेक्खं णो॥1231॥

आप सदैव कर्त्तव्यों के पालन और चित्त का निरोध करने में तत्पर रहे। आपने कभी किसी की उपेक्षा नहीं की क्योंकि आप सदैव कहते हैं कि जो जैसा करता है वैसा ही फल प्राप्त करता है।

जिणसासणपहावणा, संजदाणं पाणोव्व पियधम्मो।
तुमं णिच्चं तप्परो, जिणधम्मपहावणं करिदुं॥1232॥

जिनशासन की प्रभावना संयतों के लिए प्राण के समान है, उनका प्रिय धर्म है। आप जिनधर्म की प्रभावना करने में नित्य ही तत्पर रहे हैं।

को वि समणो सावगो, विणा जिणसासणपहावणाए दु।
णेव समत्थो कया वि, कुव्विदुं सगवर-कल्लाणं॥1233॥

जिनशासन की प्रभावना के बिना कोई भी श्रमण व श्रावक स्वपर कल्याण करने में कदापि समर्थ नहीं है।

साहम्मी वच्छल्लं, गोवच्छोव्व कुणदि विणा सत्थेण।
थणादु दुद्धं व सहज-वच्छलं णिस्सरदि धम्मीसु॥1234॥

साधर्मीजन गाय और बछड़े के समान स्वार्थ के बिना परस्पर में वात्सल्य करते हैं। धर्मीजनों में वात्सल्य सहजरूप से वैसे ही निःसृत होता है जैसे गाय के थनों से दुग्ध।

सव्वधम्मिणो पडि सय, तुमं वच्छल-भावणं दु भावीअ।
जं तुमं उप्पालेसि, धम्मीहि विणा णेव धम्मो॥1235॥

आपने सभी धर्मियों के प्रति सदैव वात्सल्य भावना भायी है। क्योंकि आप हमेशा कहते हैं कि धर्मियों के बिना धर्म नहीं होता है।

तुमं सया हि पस्सेसि, भावि-परमप्पं सव्व-धम्मीसुं।
तव चित्ते पज्झरदे, णिज्झरोव्व वच्छलणीरं दु॥1236॥

आप सदैव ही सभी धर्मियों में भावी परमात्मा को देखते हैं। आपके चित्त में झरने के समान वात्सल्य का नीर झरता है।

इमा सोडसभावणा, भावीअ सुणावीअ पढीअ तुमं।
उवदिसीअ भवी जेण, तित्थयरो होदुं सक्केज्ज॥1237॥

आपने ये सोलहकारण भावना पढ़ीं, भायीं, सुनायीं और भव्यों के लिए उपदेश भी दिया जिससे वे तीर्थंकर होने में समर्थ हो सकें।

गुरु-चरणंबुज-जुगले, सिद्ध-सुद-सूरि-भत्तीइ वंदामि।
णमंसामि अच्चेमि य, पुज्जेमि दु पावक्खयेदुं॥1238॥

गुरुवर के चरण-कमल-युगल की मैं सिद्ध, श्रुत व आचार्य भक्ति से वंदना करता हूँ, पाप-क्षय के लिए नमन करता हूँ, अर्चना करता हूँ और पूजा करता हूँ।

भाव-मोक्ख-परिणामं चिंतीअ पुण-पुण परम-सामइगे।
तेण विसोहि-भावेण, उवदिसीअ भवीण मउणेण॥1239॥

आपने परमसामायिक में द्रव्य व भाव मोक्ष के परिणामों का पुनः पुनः चिंतन किया। उस विशुद्धिभाव से मौनपूर्वक भव्यों को उपदेश दिया।

आसव-संवर-णिज्जर-तच्चं णादि ताण कारणेहि सह।
कारणं णिरुंभिय तं, लहदे णाणी परमसोक्खं॥1240॥

अहो! जो आस्रव, संवर व निर्जरा तत्त्व को उनके कारणों के साथ जानता है वह ज्ञानी उनके कारणों का निरोध कर परमसुख को प्राप्त करता है।

एयत्त-विहत्तप्पे, परम-सामाइगे जो सो लीणो।
लहदि चेयण्ण-रयणं, अणुभवेदि सगप्पणंदं हु॥1241॥

जो परम सामायिक में, एकत्व-विभक्त आत्मा में लीन होता है वह चैतन्य रत्न को प्राप्त करता है और स्वात्मा के आनंद का अनुभव करता है।

अप्प-विहवो दु परमो, जस्स समो णो सक्काइ-विहवो वि।
लहेज्ज णणंतभवेसु, तए अणुभविदो इह भवम्मि॥1242॥

आत्मा का वैभव सर्वोत्कृष्ट, सर्वाधिक है, जिसके समान इंद्र आदि का वैभव भी नहीं है। जो आत्मसुख अनंतभवों में प्राप्त नहीं हुआ, इस भव में आपने उस सुख का अनुभव किया है।

तमाणंद-मणुभवेमि, जो णंदो हासदि रायद्दोसं।
अण्णविसोहिकारणं, विसोही साहणाए तुज्झ॥1243॥

मैं भी उस आनंद का अनुभव करता हूँ जो आनंद अपने राग-द्वेष की हानि करता है। आपकी साधना की विशुद्धि अन्यों की भी विशुद्धि का कारण है।

अज्झप्प-गीदं थुदिं, भत्तिं सुणावीअ मंगलपाढं।
तहवि खवगराय-सिरोमणी सया अरिह-जवलीणो॥1244॥

उन्हें आध्यात्मिक भजन, स्तुति, भक्ति व मंगलपाठ सुनाए तथापि वे क्षपकराज शिरोमणि अर्हं जप में लीन थे।

सहसा घुरुक्कंतेहि, अच्छादिदो किण्हघणेहिं णहो।
तिव्व-विट्ठीए ताव-संतो पुढवीए जीवाण॥1245॥

अचानक शाम को संपूर्ण आकाश गरजते काले मेघों से आच्छादित हो गया। उस समय तीव्र बारिश से पृथ्वी पर जीवों का संताप शांत हुआ।

पुढवी अवि णंदेज्जा, विप्पसीएज्जा अणुमण्णेज्जा य।
तव सल्लेहणाविही, देवेहिं सय वंदणीया॥1246॥

हमने कहा–हे स्वामी! पृथ्वी भी अति आनंदित है, प्रसन्न है और अनुमोदना कर रही है। आपकी सल्लेखना विधि सदैव देवों के द्वारा वंदनीय है।

रत्तीइ पढम-पहरे, णिराउल-चित्तेण कुव्वीअ वरं।
सामाइयं च सुहदं, परमसमरसी-भावेणं दु॥1247॥

उन्होंने रात्रि के प्रथम प्रहर में निराकुल चित्त से परमसमरसी भाव से सुखद उत्तम सामायिक की।

चित्ते किंचि चिंतित्तु, बेकरा धरीअ सिरोवरि मज्झं।
णेहेण अंतासीव, पुण थंगेज्ज सगकरा णेव॥1248॥

उन्होंने मन में कुछ विचारकर अपने दोनों हाथ हमारे सिर पर रखे मानो स्नेहपूर्वक अंतिम आशीष ही दिया हो। उसके बाद उन्होंने अपने हाथ ऊपर नहीं उठाए।

सव्वं पडिविअक्खीअ, सो चिय अंतिम-पयाण-इंगिदोव्व।
उस्सासगदिं तस्स दु, इच्छणुसारेण आयरेण॥1249॥
भूमीए विराजित्तु, साहूहिं पढिदो महामंतो दु।
उच्चसरे भत्तीए, खवगरायसिरोमणिं तं च॥1250॥(जुम्मं)

अनंतर उन्होंने सबकी ओर देखा मानो अंतिम प्रयाण का संकेत ही कर रहे हों पुनः उनकी श्वासों की गति को देखकर उन क्षपकराज शिरोमणि को आदरपूर्वक उनकी इच्छा के अनुसार भूमि पर विराजमान कर साधुओं ने उच्चस्वर में भक्तिपूर्वक महामंत्र पढ़ा।

तदा सिरि-खवगरायो, सज्झाण-लीणो मज्झरत्तीए।
उज्झीअ सगसरीरं, जिण्णवत्थं व समत्तेणं॥1251॥

तब श्री क्षपकराज सद्ध्यान में लीन हुए और समत्वभाव से जीर्णवस्त्र के समान अपने शरीर का परित्याग कर दिया।

बंभमुहुत्ते सासण-पसासण-अहियारी आगच्छीअ।
सहस्सजणेहि सह चउविह-संघो उवट्ठिदो तत्थ॥1252॥

22 सितंबर ब्रह्म मुहूर्त में शासन-प्रशासन अधिकारी कुंदकुंद भारती आए। हजारों लोगों के साथ चतुर्विध संघ भी वहाँ उपस्थित था।

इंदपत्थस्स णिवोव्व, मुक्खमंती आवीअ वंदणाइ।
अण्ण-मंतीअवितत्थ,पत्थिव-सरीरस्सजोगिस्स॥1253॥

दिल्ली के राजा के समान मुख्यमंत्री और अन्य मंत्री भी महायोगी के पार्थिव शरीर की वंदना के लिए आए।

रट्ठ-संतस्स समाहि-महुच्छवे पहाणमंति-आदीहि।
अणुमण्णिदं अप्पिदा, सद्धंजली धम्मभावेण॥1254॥

इन राष्ट्रसंत के समाधि महोत्सव पर प्रधानमंत्री आदि ने भी अनुमोदना की। धर्मभाव से श्रद्धांजलि अर्पित की।

सव्वजणा संतुट्ठा, पस्सित्तु उक्किट्ठ-समाहिं तस्स।
सव्वमणंदुहीतदा,विओगजण्ण-विअप्पेणंदु।॥1255॥

उनकी उत्कृष्ट समाधि को देखकर सभी लोग संतुष्ट थे। किंतु उन सभी का मन वियोगजन्य विकल्प से दुखी था।

अंतिमकिरियावसरे, सहस्सजणा संकप्पीअ भयवो।
लहमो समाहिमरणं, आइरियो विज्जाणंदोव्व॥1256॥

उनकी अंतिम क्रिया के अवसर पर हजारों लोगों ने संकल्प किया कि हम भी आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के समान समाधिमरण प्राप्त करें।

तस्स विमाण-जत्ता दु, भारदीइ मुक्खपहं गच्छंता।
आगदा तत्थ जयजयकारं करंता भत्तीए॥1257॥

उनकी विमानयात्रा कुंदकुंदभारती के मुख्यपथ से जाती हुई पुनः जयजयकार करती हुई भक्तिपूर्वक वहाँ कुंदकुंद भारती ही आयी।

मंगल्लवज्जेहिं सह, सहस्सा जणा सेट्ठी विदुवग्गा।
समायस्स सीसत्था, उवट्ठिदा णिगामभत्तीइ॥1258॥

उनकी विमानयात्रा में मंगलकारक वाद्यों के साथ हजारों लोग, श्रेष्ठी, विद्वत्वर्ग, समाज के शीर्षस्थ लोग अत्यंत भक्ति के साथ उपस्थित थे।

आगमविहीए तत्थ, करिदो अंतिम-सक्कारो साहूण।
अपार-जणसमूहस्स, भट्टारय-उवट्ठिदीए दु॥1259॥

अपार जनसमूह के मध्य बहुत से साधुओं और भट्टारकों की उपस्थिति में वहाँ आगमविधि से पुनः उनका अंतिमसंस्कार किया गया।

पुज्जगुरुवरचरणेसु, सिद्ध-सुद-आइरिय-भत्तीए तह।
अणंतवारं णमामि, समाहिमरण-संपत्तीए॥1260॥

सिद्ध, श्रुत व आचार्य भक्ति से गुरुदेव के चरणों में समाधिमरण की प्राप्ति के लिए मैं अनंतबार नमस्कार करता हूँ।

किण्हाइ-असुह-लेस्सा,तस्समणेण णिप्पज्जेज्ज कयावि।
दुद्दिणे अक्कुदयोव्व, अमारत्तीए मिअंगोव्व॥1261॥

कृष्ण आदि अशुभ लेश्या उनके मन में कदापि उसी प्रकार उत्पन्न नहीं होती थी जिस प्रकार दुर्दिन में सूर्य का उदय और अमावस रात्रि में चंद्रमा।

पीद-पउम-सुक्क-लेस्स-संजुद-उक्किट्ठ-परिणामासया।
सुह-सुहदर-सुहदम-परिणामा तस्स पाहण्णेणं॥1262॥

उनके पीत, पद्म व शुक्ल लेश्या से युक्त सदैव उत्कृष्ट परिणाम रहते थे। उनके प्रधानता से शुभ, शुभतर व शुभतम परिणाम ही रहते थे।

जण-भावा वि विसुद्धा, महादुल्लह-समाहीए दु तस्स।
समाहि-भावा फुडिदा,अणेग-भव्वाण चित्तेसुं॥1263॥

उनकी इस महादुर्लभ समाधि से लोगों के भाव भी विशुद्ध हुए। अनेक भव्यों के मन में समाधि के भाव प्रस्फुटित हुए।

संपइयाले सूरी, णरदेहरहिदो ण विज्जदे अत्थ।
तस्स विसिट्ठ-कज्जाणि,सहस्स-वस्सं तं पुढवीइ॥1264॥

वर्तमानकाल में आचार्यश्री मानव देह से रहित हैं। वे हमारे मध्य यहाँ विराजमान नहीं हैं किन्तु उनके विशिष्ट कार्य हजारों वर्षों तक पृथ्वी पर रहेंगे।

जइणेदरेहि ठविदं, हियेसु तस्स पूद-जीवण-चरियं।
सुमरंति पुज्जंति ते, वंदंति णमंति सुभावेहि॥1265॥

जैन वा इतर सभी ने उनके पावन जीवन चरित्र को अपने हृदयों में स्थापित किया है। वे सभी शुभभावपूर्वक उनका स्मरण करते हैं, उनकी पूजा करते हैं, वंदन करते हैं और नमन करते हैं।

तस्स कदीओ कयावि, ण सक्को कालो कवलिदं करिदुं।
आदरणीयं विदूहि, पहाणवत्तित्तं चिय तस्स॥1266॥

उनकी कृतियों को कभी भी काल कवलित करने में समर्थ नहीं है। उनका प्रधान व्यक्तित्व विद्वानों के द्वारा आदरणीय है।

गंथपसत्थी

(ग्रंथ प्रशस्ति)

जस्सिं मग्गे सीहो, गच्छदि तस्सिं अण्णलहुजंतू वि।
पुज्ज-सूरि-पसादेण,सिसूव्व भणिदा पुण्णदगुणा॥1267॥

जिस मार्ग पर सिंह चलता है उसी पर अन्य छोटे पशु आदि भी गमन करते हैं। अतः पूज्य आचार्य भगवन् के प्रसाद से बालक के समान मैंने उनके पुण्य देने वाले गुणों को कहा।

तरंगिणीए चलिदुं, समत्थ-कट्ठणिम्मिद-लहुदोणीव।
गुरुकिवाए गुरुगुणा, उप्पालेदुं तप्परो हं॥1268॥

जिस प्रकार लकड़ी से बनी छोटी नाव भी नदी पार कराने में समर्थ होती है उसी प्रकार (यद्यपि मैं बहुत छोटा हूँ तथापि) गुरुकृपा से गुरुगुणों को कहने में तत्पर हो सका।

जम्मि खे रायहंसो, उड्डेदि तत्थ तस्स संताणो वि।
गंथ-लेहण-कज्जं दु, महासूरीण पययेज्ज हं॥1269॥

जिस आकाश में बड़े राजहंस पक्षी उड़ते हैं उसी आकाश में उनकी छोटी-छोटी संतान भी उड़ती हैं उसी प्रकार ग्रंथ लेखन का यह महान् कार्य महान् आचार्यों का ही है तथापि (उसी कुल का छोटे बालक के समान) मैंने भी ग्रंथ लेखन का प्रयत्न किया है।

जिणमग्गरयणायरे, इह महारयणं गुरु-आइरियोव्व
तत्थपहाणोव्वहं वि,तहवि गुरुकिवा-फलं गंथो॥1270॥

इस जिनमार्ग रूपी रत्नाकर में आचार्य गुरुदेव के समान महारत्न भी हैं तो वहाँ मेरे समान पाषाण भी हैं, तथापि यह ग्रंथ गुरुकृपा का फल ही समझना चाहिए।

कणगकणं अवि कणगं, मंदागिणीए अवि एग-बिंदू।
गंगाणीरं तहेव तित्थ-कुलस्स लहूमुणी हं॥1271॥

जिस प्रकार सोने का टुकड़ा सोना ही होता है, गंगा की एक बूंद भी गंगाजल ही है उसी प्रकार तीर्थंकरों के कुल का मैं भी छोटा मुनि हूँ।

जो रयणत्तयजुत्तो, कुणदि गुरुभत्तिं परमविणयेणं।
सो भवसायरतीरं, लहदि सव्वकम्मं खयित्ता॥1272॥

जो रत्नत्रय से युक्त जीव परमविनय से गुरुभक्ति करता है वह सर्व कर्मों का क्षयकर भव सागर के तट को प्राप्त कर लेता है।

भवदुक्खणासगा गुरु-भत्ती दुग्गदि-णासगा चक्कं व।
भवभमणं खयिदुं कम्मं जयेदुं महासेण्णं व॥1273॥

गुरुभक्ति भवदु:खों का नाश करने वाली और दुर्गति की नाशक है। यह गुरुभक्ति संसार परिभ्रमण का क्षय करने के लिए चक्र के समान और कर्मों को जीतने के लिए विशाल सेना के समान है।

सण्णाणवड्ढगा पुण्णकारगा सम्मत्तविसोहिगा य।
गुरुभत्ती तव-जणणी, वेरग्ग-चरियुप्पायगा दु॥1274॥

गुरुभक्ति सम्यग्ज्ञान का वर्धन करने वाली, पुण्यकारका, सम्यक्त्व को विशुद्ध बनाने वाली, तप की जननी और वैराग्य व चरित्र को उत्पन्न करने वाली है।

अप्पम्मि सव्वसुगुणा, उप्पज्जिदुं गुरुभत्ती णिमित्तं।
जह खेत्तम्मि सस्सस्स, कुणदि किसीवलो किसिकम्मं॥1275॥

जिस प्रकार खेत में फसल के लिए कृषक कृषिकर्म करता है उसी प्रकार आत्मा में सभी शुद्धगुणों को उत्पन्न करने के लिए गुरुभक्ति निमित्त है।

गुरुगुणं भासिदुं हं, पययेज्ज सम्मत्ताइ-विसुद्धीइ।
सासयपदं पाविदुं, परमविणयेण समप्पणेण॥1276॥

सम्यक्त्वादि की विशुद्धि और शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए मैंने परम विनय से समर्पण के साथ गुरु के गुणों को कहने का प्रयत्न किया है।

णीरं धोवदि पंकं, रत्तकलंकं मालिण्णं अहवा।
रयणत्तय-संजुद-गुरु-भत्ती खयदि तिविहकम्माणि॥1277॥

जिस प्रकार जल कीचड़, रक्त का दाग वा मलिनता को साफ करता है उसी प्रकार रत्नत्रय से युक्त गुरुभक्ति तीन प्रकार के कर्मों (द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्म) को नष्ट करती है।

जयिदु-मक्खमणिंदियं,गुरुभत्तिधम्मचक्केण सक्केदि।
तह जह चक्कवट्टी हु, जयदि छक्खंडं चक्केणं॥1278॥

जिस प्रकार चक्रवर्ती चक्र के माध्यम से षट्खंड पर विजय प्राप्त करता है उसी प्रकार भव्यजीव गुरुभक्ति रूप धर्मचक्र के माध्यम से इंद्रिय व मन को जीतने में समर्थ होता है।

अणाइयालादो गुरु-भत्तीइ लहीअ भेदविण्णाणं।
पुणो परमतवं कडुअ,होज्ज कम्मविहीणा सिद्धा॥1279॥

अनादिकाल से भव्यजीवों ने गुरुभक्ति के माध्यम से भेद विज्ञान को प्राप्त किया है पुनः परमतप करके वे कर्मों से रहित सिद्ध हुए।

जहवि परमेट्ठि-सुगुणा,भासिदुं असक्को तह वि पययेमि।
गुरुपदपसादेण हं, णियगुरुचरियं चिय लिहेदुं॥1280॥

यद्यपि परमेष्ठी के गुणों को कहने में मैं अशक्य हूँ तथापि गुरुपद के प्रसाद से अपने गुरु का चरित्र लिखने का मैंने प्रयत्न किया।

सादिरिक्खम्मि पदिदो, जलबिंदू सिप्पीइ होदि मुत्ता।
भविचित्ते गुरुभत्ती, कुव्वेदि अप्पं परमप्पा॥1281॥

जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरी जल की बूंद मोती हो जाती है उसी प्रकार भव्य के चित्त में विद्यमान गुरुभक्ति आत्मा को परमात्मा बना देती है।

उच्छाहेण बालोव्व, कुव्विदुं गुरुभत्तिं तप्परो हं।
जहविउवहास-पत्तो,अभेयरयणत्तय-जोगीहि॥1282॥

यद्यपि गुरुभक्ति में तत्पर अभेद रत्नत्रयधारी योगियों के द्वारा मैं उपहास का पात्र हूँ तथापि बालक के समान उत्साहपूर्वक गुरुभक्ति करने में मैं तत्पर हुआ।

चित्ते मज्झ विज्जंत-सुगुरुभत्तिभावं असमत्थो हं।
संकोइदुं कूकंत-कोइलोव्व मंजरिं पस्सिय॥1283॥

जिस प्रकार आम्र के बौर को देखकर कोयल सहज ही कूकने लगती है उसी प्रकार मेरे चित्त में विद्यमान गुरुभक्ति के भावों को संकुचित करने में मैं असमर्थ हूँ।

गुडस्स महुरिमा इक्खु-दंडस्स जह तह विसेसत्तं।
वयणेसुं सेट्ठत्तं, मे चित्ते विज्जंत-गुरुणा॥1284

जैसे गुड़ की मिठास गन्ने की विशेषता है उसी प्रकार मेरे वचनों में जो भी श्रेष्ठता है वह मेरे चित्त में विराजमान गुरु से है।

णीरबिंदु-पडणेणं, खंडदि अविरलं पासाणखंडं।
पावगिरी परोक्खम्मि, वज्जोव्व दु सुगुरुभत्तीए॥1285॥

जैसे जल की बूंद लगातार गिरने से पाषाण खंड खंडित हो जाता है उसी प्रकार परोक्ष में वज्र के समान गुरु की भक्ति से पाप रूपी पर्वत खंड-खंड हो जाता है।

कच्चं वज्जकंतीव, दीवेदि अक्ककिरण-माहप्पेण।
दिस्सदि सिस्स-जीवणे,गुणकंती गुरुमाहप्पेण॥1286॥

जिस प्रकार सूर्य की किरण के माहात्म्य से काँच भी हीरे की चमक के समान चमकने लगता है उसी प्रकार गुरु के माहात्म्य से शिष्य के जीवन में गुणों की कांति दिखाई देने लगती है।

सयलसंजमं जीवण-पज्जंतं च विज्जाणंद-सूरी।
पालीअ विसुद्धीए, सयलसंजम-सव्वुक्किट्ठो॥1287॥

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज ने जीवन पर्यंत विशुद्धिपूर्वक सर्वोत्कृष्ट सकलसंयम का पालन किया।

वरणंदं गहिदुं हं, विज्जाणंदस्स सुणंदो सूरी।
वसुकम्मं खयित्तु वसु-गुणं लहिदुं णंदमि णाणे॥1288॥

उत्कृष्ट आनंद को प्राप्त करने के लिए अष्टकर्मों का क्षयकर अष्टगुणों की प्राप्ति के लिए आचार्य विद्यानंद का नंद मैं (आचार्य वसुनंदी) ज्ञान में आनंदित होता हूँ।

अस्सिं भरहे तित्था, पच्छा अणुबद्धकेवली णमामि।
सुदकेवली गणहरा, सुधम्मसंवाहगा सूरी॥1289॥

इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकरप्रभु, पश्चात् अनुबद्ध केवली, श्रुतकेवली, गणधर व धर्मसंवाहक आचार्यों को नमस्कार करता हूँ।

उसहपहुडि-वीरंतं, णमंसामि णिव्वाणगदा-सिद्धा॥
किट्टिमाकिट्टिमाइं, जिणचेइय-चेइयालयाणि॥1290॥

श्री आदिनाथ भगवान् से लेकर महावीर भगवान तक सभी तीर्थंकरों को, जिन्होंने मोक्ष को प्राप्त किया उन सभी सिद्धों को एवं कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य व चैत्यालयों को नमस्कार करता हूँ।

विण्हुं णंदिमित्त-मवराजिदं गोवड्ढण-भद्दबाहू।
पंचसुदकेवलिणो य, विसाहं-पोट्ठिलं खत्तियं॥1291॥
जयणायधिदिसेणा य, सिद्धत्थं विजयं गंगदेवं पि।
धम्मसेण-णक्खत्ता जयपालं पंडु-धुवसेणा॥1292॥
कंससूरिं सुभद्दं जसोभद्द-गुणहरा चंदणंदिं।
बलदेवं जिणणंदिं पणमामि सुहभत्तिरायेण॥1293॥ (तिअं)

श्रीविष्णु, श्री नंदिमित्र, श्री अपराजित, श्री गोवर्धन व श्री भद्रबाहु स्वामी इन पाँचश्रुतकेवलियों को एवं श्री विशाखाचार्य, श्री प्रोष्ठिल, श्री क्षत्रिय, श्री जयसेन, श्री नागसेन, श्री धृतिसेण, श्री सिद्धार्थ, श्री विजय, श्री गंगदेव, श्री धर्मसेन, श्री नक्षत्र, श्री जयपाल, श्री पांडु, श्री ध्रुवसेन, श्री कंसाचार्य, श्री सुभद्र, श्री यशोभद्र, श्री गुणधराचार्य,

श्री चंद्रनंदि, श्री बलदेव एवं श्री जिननंदि आचार्य को शुभ भक्ति के राग से मैं नमस्कार करता हूँ।

अज्झसव्वगुत्तं तह, मित्तणंदिं सिवकोडि-विणयहरा।
गुत्तिसुदि-गुत्तिइड्ढी सिवगुत्तं रयणसुहणंदी॥1294॥
बप्पदेवं च कुमार-णंदि अरिहबलिं अरिहदत्तं च।
सिव-विणय-सिरि-दत्ता दु माघणंदिं सिरिधरसेणं॥1295॥
पुप्फदंत-भूदबली मंदज्जं मित्तवीर-माइरियं।
दिवायरसेणं अज्जमंखु णमामि सुविसुद्धीए॥1296॥ (तिअं)

आचार्यश्री आर्यसर्वगुप्त, श्री मित्रनंदि, श्री शिवकोटि, श्री विनयधर, श्री गुप्तिश्रुति, श्री गुप्तिऋद्धि, श्री शिवगुप्त, श्री रत्ननंदि, श्री शुभनंदि, श्री बप्पदेव, श्री कुमारनंदि, श्री अर्हद्बलि, श्री अर्हदत्त, श्री शिवदत्त, श्री विनयदत्त, श्रीदत्त, श्री माघनंदि, श्री धरसेनाचार्य, श्री पुष्पदंत, श्री भूतबलि, श्री मंदार्य, श्री मित्रवीर, श्री दिवाकरसेन, श्री आर्यमंक्षु आचार्य को मैं विशुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

सूरि-जसोबाहु-णायहत्थी जदि उसहं तह जिणचंदं।
कोंडकुंडं चिअ उमासामिं समंतभद्द-सूरिं॥1297॥
अरिहसेण-सीहणंदि-कुमारसामिणो बलागपिच्छं च।
जसकित्तिं जसणंदिं, सामकुंडारिइयं विजयं॥1298॥
देवणंदि-सिरिदत्ता पुज्जपाद-मल्लवादि-जयणंदी।
गुणणंदि-वज्जणंदी, परियंदामि सव्वाइरिया॥1299॥ (तिअं)

आचार्यश्री यशोबाहु, श्री नागहस्ति, श्री यतिवृषभ, श्री जिनचंद्र, श्री कुंदकुंद स्वामी, श्री उमास्वामि, श्री समंतभद्र स्वामी, श्री अर्हसेन, श्री सिंहनंदि, श्री कुमारस्वामी, श्री बलाकपिच्छाचार्य, श्री यशःकीर्ति, श्री यशोनंदि, श्री शामकुंडाचार्य, श्री विजय, श्री देवनंदि, श्रीदत्त, श्री पूज्यपाद, श्री मल्लवादि, श्री जयनंदि, श्री गुणनंदि, श्री वज्रनंदि सभी आचार्यों की मैं स्तुति करता हूँ।

सव्वणंदिं सिरिलोयचंदं पहाचंदं च जोगिंदुं।
णेमिचंद-भाणुणंदि-सिद्धसेण-पत्तकेसरी य।।1300।।
वसुणंदि-मरिहसेणं वीरणंदि-माणतुंग-अकलंका।
कुमुदचंदं च लखमण-सेणं कणगसेणं सूरिं।।1301।।
माणिक्कणंदिं धम्म-रवि-जिण-सेणा मेहबालचंदं।
सुमदिं तह जडासीह-णंदिं काणभिच्छुं वंदे।।1302।। (तिअं)

श्री सर्वनंदि, श्री लोकचंद्र, श्री प्रभाचंद्र, श्री योगेंदुदेव, श्री नेमिचंद, श्री भानुनंदि, श्री सिद्धसेन, श्री पात्रकेसरी, श्री वसुनंदि, श्री वीरनंदि, श्री मानतुंग, श्री अकलंकदेव, श्री कुमुदचंद, श्री लक्ष्मणसेन, श्री कनकसेन, आचार्यश्री माणिकनंदि, श्री धर्मसेन, श्री रविषेण, श्री जिनसेन, श्री मेघचंद, श्री बालचंद, श्री सुमतिदेव, श्री जयसिंहनंदि, श्री काणभिक्षु आचार्य की मैं वंदना करता हूँ।

चरित्तभूसणं सेट्ठ-विज्जाणंदि-मज्जणंदिं सूरिं।
वादीभसीहं वादिरायं तहा एलाइरियं।।1303।।
वीरसेणं सिरिधरं महावीरं च वीर-पउमसेणा।
उग्गदित्ताइरियं च देवसेणं वामदेवं पि।।1304।।
गुणभद्द-ममियचंदं गोलाइरियं कलधोदणंदिं च।
णयणंदिं णयसेणं सुह-सिरि-चंदाहु णमंसामि।।1305।। (तिअं)

श्री चारित्रभूषण, श्रेष्ठ श्री विद्यानंद, श्री आर्यनंदि, आचार्यश्री वादीभसिंह, श्री वादिराज, श्री एलाचार्य, श्री वीरसेन, श्री श्रीधर, श्री महावीर, श्री वीरसेन, श्री पद्मसेन, श्री उग्रदित्याचार्य, श्री देवसेन, श्री वामदेव, श्री गुणभद्र, श्री गोलाचार्य, श्री कलधौतनंदि, श्री नयनंदि, श्री नयसेन, श्री शुभचंद्र, श्री श्रीचंद्र आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ।

बालणंदिं तह मल्लि-राम-णाय-णरिंद-हरिसेणा चिअ।
देवचंद-रविचंदा कुलभद्दं तह इंदणंदिं।।1306।।
पारसदेवं कणगामरं दामणंदिं माधवचंदं।
अमिदगदि-मभयणंदिं पउमणंदिं अमोघवस्सं।।1307।।
चामुंडरायं सयलकित्ति-मजिदसेणं सव्वाइरिया।
जिणसासणुण्णदियरा, पणमामि सगप्पसिद्धीए।।1308।। (तिअं)

आचार्यश्री बालनंदि, श्री मल्लिषेण, श्री रामसेन, श्री नागसेन, श्री नरेन्द्रसेन, श्री हरिषेण, श्री देवचंद्र, श्री रविचंद्र, श्री कुलभद्र, श्री इंद्रनंदि, श्री पारसदेव, श्री दामनंदि, श्री माधवचंद, श्री अमितगति, श्री अमोघवर्ष, श्री सकलकीर्ति, श्री अजितसेनादि जिनशासन की उन्नति करने वाले सभी आचार्यों को मैं स्वात्मसिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।

परोक्ख-परमुवयारिं, पढमं चरिय-चक्कि-संतिसिंधुं।
महातवसि-पाय-सिंधु-सूरिं पुण अज्झप्पजोगिं॥1309॥
जयकित्ति-सूरिं सिरी-देसभूसणं भारदगोरवं च।
वंदेमि जाण किवाइ, लिहिदं सत्थं विसुद्धीए॥1310॥ (जुम्मं)

परोक्ष रूप से परमोपकारी, प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागरजी मुनिराज, महातपस्वी आचार्यश्री पायसागरजी मुनिराज, अध्यात्म योगी आचार्यश्री जयकीर्तिजी मुनिराज, भारत गौरव आचार्यश्री देशभूषणजी मुनिराज की मैं वंदना करता हूँ, जिनकी कृपा से विशुद्धिपूर्वक ये शास्त्र लिखा गया।

मम पच्चक्ख-गुरु-सिरी-विज्जाणंद सूरिं परियंदामि।
जस्स पसादेण विणा, ण गंथं लिहिदुं सक्को हं॥1311॥

मेरे प्रत्यक्ष गुरु आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज को नमस्कार करता हूँ जिनके प्रसाद के बिना मैं ग्रंथ लिखने में समर्थ नहीं हूँ।

जुगसेट्ठं जुगजेट्ठं, आयंसेसु महायंसं सूरिं।
अस्सिं जुगे सुपुज्जं, पाविदूणं धण्णा पुढवी॥1312॥

युगश्रेष्ठ, युगज्येष्ठ, आदर्शों में महादर्श, इस युग में सुपूज्य आचार्यश्री विद्यानंद जी मुनिराज को प्राप्तकर यह पृथ्वी धन्य हुई।

जिणसासणपहावगं, तित्थयरोव्व अप्पाणुसासगं च।
विज्जाणंदं सूरिं, परियंदामि भावसुद्धीइ॥1313॥

तीर्थंकर के समान जिनशासन प्रभावक, आत्मानुशासक आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज को मैं भावों की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

बहु-तुडीअविसंभवा,इह चरिय-थुदि-गंथो लिहिदो मए।
सुद्धरयणत्तयी णं, जाणिय खमंतु मे बालोव्व1314॥

इस चरित्र स्तुति ग्रंथ 'क्षपकराज शिरोमणि' में कई त्रुटियाँ भी मेरे द्वारा संभव हैं। शुद्ध रत्नत्रय को धारण करने वाले मुनि मुझे बालक के समान जानकर क्षमा करें।

णह-परमेट्ठि-सण्णाण-चेयणा-वीरणिव्वाणद्धम्मि य।
पुण्णो गंथो इणमो, गुरु-समाहि-दिवस-अवसरम्मि॥1315॥
भारद-रायहाणीइ, परिसद-रत्तमंदिरे कालगाइ।
विज्जाणंद-णिलयम्मि, पुण्णाहे अप्पबुद्धीए॥1316॥ (जुम्मं)

नभ (0) परमेष्ठी (5) सम्यग्ज्ञान (3) चेतना (2) किन्तु 'अंकानां वामतो गतिः' के अनुसार वीर निर्वाण संवत् 2550 में गुरुवर आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज के समाधि दिवस के अवसर पर भारत की राजधानी दिल्ली में कालकाजी परिषद के लालजिनालय के विद्यानंद निलय में यह ग्रंथ मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा पूर्ण हुआ।

जावदु चंदो अक्को, चरंते गगणम्मि वहंति सरिदा।
धम्मो देदि सुहं मे, मणे तावदु गुरुभत्ती सय॥1317॥

जब तक सूर्य व चंद्र आकाश में गमन कर रहे हैं, नदियाँ प्रवाहमान हैं और धर्म सुख देता है तब तक मेरे मन में सदैव गुरुभक्ति विद्यमान रहे।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

(प्राकृत साहित्य)			
क्र.सं.	नाम	क्र.सं.	नाम
1.	प्राकृत वाणी भाग-1	2.	प्राकृत वाणी भाग-2
3.	प्राकृत वाणी भाग-3	4.	प्राकृत वाणी भाग-4
5.	प्राकृत वाणी भाग-5	6.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
7.	अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)	8.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
9.	जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)	10.	जदि-किदि-कम्मं(यति कृतिकर्म)
11.	णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)	12.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
13.	तच्चसारो (तत्त्व सार)	14.	धम्म सुत्तं (धर्म सूत्र)
15.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)	16.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
17.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)	18.	विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)
19.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)	20.	अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
21.	णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)	22.	मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
23.	मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)	24.	विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
25.	विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)	26.	समवसरण सोहा (समवसरण शोभा)
27.	वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)	28.	अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
29.	कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)	30.	को विवेगी (विवेकी कौन)
31.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)	32.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
33.	रयणकंडो (सूक्ति कोश)	34.	धम्मस्स सुत्ति संगहो
35.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)	36.	खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
37.	सिरि सीयलणाह-चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)	38.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
39.	समणायारो (श्रमणाचार)	40.	असोग-रोहिणी-चरियं (अशोक रोहिणी चरित्र) (महाकाव्य)
41.	लोगुत्तरविट्टी (लोकोत्तर वृत्ति)	42.	समणभावो (श्रमण भाव)
43.	झाणसारो (ध्यानसार)	44.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)
45.	जिणवयणसारो (जिनवचनसार)	46.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)
47.	पसमभावो (प्रशम भाव)	48.	सम्मेदसिहर महप्पुरो (सम्मेदशिखर महात्म्य)

49.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त्त)	50.	विणयसारो (विनय सार)
51.	तव–सारो (तप सार)	52.	भाव–सारो (भाव सार)
53.	दाण–सारो (दान सार)	54.	लेस्सा–सारो (लेश्या सार)
55.	वेरग्ग–सारो (वैराग्य सार)	56.	णाण–सारो (ज्ञान सार)
57.	णीदि–सारो (नीति सार)	58.	आयंस–सिक्खाविही (आदर्श शिक्षाविधि)
59.	दंसण–परिक्खा (दर्शन परीक्षा)	60.	महाणुभावो (महानुभाव)
61.	उववासो (उपवास)	62.	संजम–सारो (संयमसार)
63.	सम्मत्त–सारो (सम्यक्त्व सार)	64.	सज्जण–वयण–विलासो (सज्जन वचन विलास)
65.	विदु–वाणी	66.	सूदग–पादग–णिण्णय–विही (सूतक–पातक निर्णय विधि)
67.	सगसरूवावलोयणं (स्वस्वरूपावलोकन)	68.	सुद्धप्प–थुदी–(शुद्धात्म स्तुति)

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका–रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका–द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी–आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका–सिद्धिप्रिय स्तोत्र (संस्कृत)

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales Part& 1&2	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	इष्टोपदेश (मुक्ति का वाग्दान)	2.	प्रश्नोत्तर रत्नमालिका (बोधि वृक्ष)
3.	सामायिक पाठ (शिवपथ का रथ)	4.	समाधि तंत्र (स्वात्मोपलब्धि)
5.	रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्रावकधर्म–संहिता)	6.	ज्ञानांकुश (तत्त्व चिंतन के सूत्र)

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दुःखदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दुःख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू

13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17
31.	गुरुत्तं भाग 18	32.	चूको मत
33.	जय बजरंगबली	34.	जीवन का सहारा
35.	ठहरो! ऐसे चलो	36.	तैयारी जीत की
37.	दशामृत	38.	धर्म की महिमा
39.	ना मिटना बुरा है न पिटना	40.	नारी का धवल पक्ष
41.	शायद यही सच है	42.	श्रुत निर्झरी
43.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा	44.	सीप का मोती (महावीर जयंती)
45.	स्वाती की बूँद		

हिंदी गद्य रचना			
1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म

31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	श्री समवशरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान
11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
27.	अभिनव सिद्धचक्र मंत्रार्चना		

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि

13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी जी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)
27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

प्रथमानुयोग साहित्य

1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)

7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र
31.	रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बरैया)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)

2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु संबुध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		